प्रकाशक :
अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ
जोधपुर

शाखा कार्यालय
नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)
✆: (01462) 251216, 257699, 250328

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
भाग २

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य
विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का ११७ वाँ रत्न

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

भाग २

(अध्ययन ६ से १६ एवं द्वितीय श्रुतस्कन्ध)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

अनुवादक

प्रो० डॉ० छगनलाल शास्त्री

एम. ए. (त्रय), पी. एच.डी., काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि

महेन्द्रकुमार रांकावत

बी.एस.सी. एम. ए., रिसर्च स्कॉलर

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५९०१

☎ : (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९, फेक्स २५०३२८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☏ 2626145

२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☏ 251216

३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**

४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**

५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☏ 252097

६. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☏ 23233521

७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☏ 5461234

८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**

९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा** ☏ 236108

१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☏ 25357775

१३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शॉपिंग सेन्टर, **कोटा** ☏ 2360950

मूल्य : ४०-००

तृतीय आवृत्ति

१०००

वीर संवत् २५३३

विक्रम संवत् २०६३

दिसम्बर २००६

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☏ 2423295

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है, जिसके आइने पर उस समाज की समस्त गति विधियों का प्रतिबिम्ब दृष्टि गोचर होता है। साहित्य के बल पर ही सम्बन्धित समाज के ज्ञान-विज्ञान, न्याय-नीति, आचार-विचार, धर्म, दर्शन, संस्कृति, खान-पान, रीति-रिवाज आदि की जानकारी होती है। भारतीय साहित्य का यदि सिंहावलोकन किया जाय तो जैन साहित्य का अपना विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान है। इसका कारण अन्य दर्शनों के साहित्य को हलका बताना नहीं बल्कि वास्तविकता है। क्योंकि अन्य सभी दर्शनों के साहित्य छद्मस्थ कथित अनेक ऋषियों के विचारों का संकलन है जो विभिन्नताएं लिए हुए होने के कारण पूर्वापर विरोधी एवं ज्ञान की अल्पता के कारण अपूर्ण होते हैं, जबकि जैन आगम साहित्य राग द्वेष के विजेता तीर्थंकर प्रभु द्वारा कथित है, जिसमें वक्ता के साक्षात् दर्शन और वीतरागता के कारण दोष की किंचित् मात्र भी संभावना नहीं रहती, न ही उनमें पूर्वापर विरोध मिलता है।

जैन आगम साहित्य की जो प्रामाणिकता है, उसका कारण मात्र गणधर कृत होने से नहीं बल्कि इसके अर्थ के मूल प्ररूपक तीर्थंकर भगवान् की वीतरागता और सर्वज्ञता है। जो आगम साहित्य तीर्थंकर कथित एवं गणधर रचित होता है, उसे जैन दर्शन में द्वादशांगी रूप अंग प्रविष्ट साहित्य कहा जाता है। इसके अलावा कुछ ऐसे साहित्य को भी जैन दर्शन मान्यता प्रधान करता है जो श्रुतकेवली (दस से चौदह पूर्व के ज्ञाता) द्वारा रचित होता है। इस साहित्य को आगम शैली में अंग बाह्य कहा जाता है। श्रुत केवली द्वारा रचित आगम साहित्य को भी आगम मनीषि उतना ही प्रमाणित मानते हैं जितना अंग प्रविष्ट साहित्य को। इसका कारण रचयिता की श्रुतज्ञान की विशुद्धता है। जो बात तीर्थंकर प्रभु कह सकते हैं, उस को श्रुत केवली अपने ज्ञान बल से उसी रूप में कह सकते हैं। दोनों में इतना ही अन्तर है कि केवलज्ञानी सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप में जानते देखते हैं, जबकि श्रुत केवली श्रुत ज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप से जानते हैं। साथ ही उनकी रचनाएं इसलिए भी प्रमाणित मानी जाती है क्योंकि वे नियमतः सम्यग् दृष्टि ही होते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन [illegible] के रूप में सर्वज्ञ कथित एवं गणधर [illegible] श्रुतकेवली द्वारा रचित को मान्यता प्रदान करता है।

वर्तमान में जो आगम साहित्य उपलब्ध है, उसका समय-समय पर आगम मनीषियों ने विभिन्न रूपों में वर्गीकरण किया है। नंदी सूत्र के रचयिता आचार्य श्री देववाचक ने अंग-प्रविष्ट और अंग बाह्य दो भागों में विभक्त कर पुनः अंग बाह्य को आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त में विभक्त किया। इसके अलावा कालिक और उत्कालिक के रूप में भी इनकी प्रतिष्ठित किया है। पश्चात्वर्ती आचार्यों ने अंग, उपांग, मूल, छेद और आवश्यक सूत्र के रूप में इनका वर्गीकरण किया। इसके अलावा विषय सामग्री के संकलन के आधार पर द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग और चरणकरणानुयोग के आधार से इसे चार भागों में भी वर्गीकृत किया गया है। इस प्रकार अनेक प्रकार का वर्गीकरण होने पर भी सभी आगम साहित्य के मूल रचयिता तो दो ही हैं या तो गणधर भगवन् अथवा स्थविर श्रुत-केवली भगवन्। प्रस्तुत ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अंग प्रविष्ट द्वादशांगी का छठा अंग सूत्र है। विषय सामग्री की अपेक्षा कथा प्रधान होने से यह धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत आता है। समवायांग सूत्र के बारहवें समवाय में ज्ञानाधर्मकथांग की विषय सामग्री के बारे में निम्न पाठ है।

शिष्य प्रश्न करता है कि अहो भगवन्! ज्ञाताधर्मकथा में क्या भाव फरमाये गये हैं? भगवान् फरमाते हैं कि ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञात अर्थात् प्रथम श्रुतस्कन्ध में उदाहरण रूप से दिये गये मेघकुमार आदि के नगर, उद्यान, चैत्य-यक्ष का मन्दिर, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि, भोगों का त्याग, प्रव्रज्या, श्रुत (सूत्र) परिग्रह-सूत्रों का ज्ञान, उपधान आदि तप, पर्याय-दीक्षा काल, संलेखना, भक्त प्रत्याख्यान-आहार आदि का त्याग, पादपोपगमन संथारा, देवलोकगमन-देवलोकों में उत्पन्न होना। देवलोकों से चव कर उत्तम कुल में जन्म लेना, फिर बोधिलाभ सम्यक्त्व की प्राप्ति होना और अन्त क्रिया आदि का वर्णन किया गया है।

तीर्थंकर भगवान् के विनय मूलक धर्म में दीक्षित होने वाले, संयम की प्रतिज्ञा को पालने में दुर्बल बने हुए, तप नियम तथा उपधान तप रूपी रण में संयम के भार से भग्न चित्त बने हुए घोर परीषहों से पराजित बने हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग से पराङ्मुख बने हुए, तुच्छ विषय सुखों की आशा के वशीभूत एवं मूर्च्छित बने हुए साधु के विविध प्रकार के आचार से शून्य और ज्ञान, दर्शन, चारित्र की विराधना करने वाले व्यक्तियों का ज्ञाताधर्मकथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र में वर्णन किया गया है और यह बतलाया गया है कि वे इस अपार संसार में नाना दुर्गतियों में अनेक प्रकार का दुःख भोगते हुए बहुत काल तक भव भ्रमण करते रहेंगे।

परीषह और कषाय की सेना को जीतने वाले, धैर्यशाली तथा उत्साह पूर्वक संयम का पालन करने वाले, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सम्यक् आराधना करने वाले, मिथ्यादर्शन आदि शल्यों से रहित, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने वाले, धैर्यवान् पुरुषों को अनुपम स्वर्ग, सुखों की प्राप्ति होती है। यह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में बतलाया गया है। वहाँ देवलोकों में उन मनोज्ञ दिव्य भोगों को बहुत काल तक भोग कर इसके पश्चात् आयु क्षय होने पर कालक्रम से वहाँ से चव कर उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न होते हैं फिर ज्ञान, दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का सम्यक् पालन कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में बतलाया गया है। यदि कर्मवश कोई मुनि संयम मार्ग से चलित हो जाय तो उसे संयम में स्थिर करने के लिए बोधप्रद-शिक्षा देने वाले संयम के गुण और असंयम के दोष बतलाने वाले देव और मनुष्यों के दृष्टान्त दिये गये हैं और प्रतिबोध के कारणभूत ऐसे वाक्य कहे गये हैं। जिन्हें सुन कर लोक में मुनि शब्द से कहे जाने वाले शुक परिव्राजक आदि जन्म जरा मृत्यु का नाश करने वाले इस जिनशासन में स्थित हो गये और संयम का आराधन करके देवलोक में उत्पन्न हुए और देवलोक से चव कर मनुष्य भव में आकर सब दुःखों से रहित होकर शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करेंगे। ये भाव और इसी प्रकार के दूसरे बहुत से भाव बहुत विस्तार के साथ और कहीं-कहीं कोई भाव संक्षेप से कहे गये हैं।

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में परित्ता वाचना है, संख्याता अनुयोगद्वार हैं यावत् संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। अंगों की अपेक्षा यह छठा अंग है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, उन्नीस अध्ययन हैं, वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - चारित्र रूप और कल्पित। धर्मकथा नामक दूसरे श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं। प्रत्येक धर्मकथा में पांच सौ पांच सौ आख्यायिका हैं। प्रत्येक आख्यायिका में पांच सौ पांच सौ उपाख्यायिका हैं। प्रत्येक उपाख्यायिका में पांच सौ पांच सौ आख्यायिका उपाख्यायिका हैं। इस प्रकार इन सब को मिला कर परस्पर गुणन करने से साढे तीन करोड़ आख्यायिका-कथाएं होती हैं ऐसा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में २९ उद्देशे हैं, २९ समुद्देशे हैं, संख्याता हजार यानी ५७६००० पद कहे गये हैं। संख्याता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अक्षर हैं यावत् चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा से कथन किया गया है। यह ज्ञाताधर्मकथासूत्र का संक्षिप्त विषय वर्णन है।

विवेचन - ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र में दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन् हैं। उनको ज्ञात अध्ययन कहते हैं। इनमें से दस अध्ययन ज्ञात (उदाहरण) रूप हैं। अतः इनमें आख्याइका (कथा के अन्तर्गत कथा) संभव नहीं है। बाकी के नौ अध्ययनों में से प्रत्येक में ५४०-५४० आख्याइकाएं हैं। इनमें भी एक-एक आख्याइका में ५००-५०० उपाख्याइकाएं हैं। इन उपाख्याइकाओं में भी एक एक उपाख्याइका में ५००-५०० आख्याइका-उपाख्याइका हैं। इस प्रकार इनकी कुल संख्या एक अरब इक्कीस करोड़ और पचास लाख (१२१५००००००) इतनी हो जाती है। जैसा कि गाथा में कहा है -

एगवीसंकोडिसयं, लक्खापण्णासमेव बोद्धव्वा।

एवं ठिए समाणे, अहिगयसुत्तस्स पत्थारा॥

एकविंशं कोटिशतं लक्षाः पञ्चाशदेव बोद्धव्याः।

एवं स्थिते सति अधिकृत सूत्रस्य प्रस्तारः॥

इस प्रकार नौ अध्ययनों का विस्तार कहे जाने पर अधिकृत इस सूत्र का विस्तार वर्णित हो जाता है। यद्यपि 'ज्ञात' इस स्वरूप वाले नौ अध्ययनों की आख्याइका आदि की संख्या मूल में उपलब्ध नहीं है तो भी वृद्ध परम्परा में यह प्रचलित है। इसलिए यहाँ लिख दी गयी हैं। इससे जिज्ञासुओं के ज्ञान में वृद्धि होने की संभावना है।

दूसरे श्रुतस्कन्ध में जो अहिंसादि रूप धर्म कथाओं के दस वर्ग (समूह) हैं। उनमें एक-एक धर्मकथा में ५००-५०० आख्याइकाएँ हैं। एक-एक आख्याइका में ५००-५०० उपाख्याइकाएं हैं। एक-एक उपाख्याइका में ५००-५०० आख्याइकाउपाख्याइकाएं हैं। इस प्रकार पूर्वापर की संयोजना करने पर तीन करोड़ पचास लाख (३५००००००) आख्याइकाओं की संख्या हो जाती है।

शंका - धर्म कथाओं में इन आख्याइका, उपाख्याइका, आख्याइकाउपाख्याइका इन तीनों की संख्या एक अरब पच्चीस करोड़ पचास लाख (१२५५००००००) होती है तो फिर यहाँ सूत्रकार ने इनकी संख्या तीन करोड़ पचास लाख ही क्यों कही है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - नौ ज्ञातों (उदाहरण) की जो आख्याइका आदि की संख्या बतलाई गयी है। ऐसी ही आख्याइकाएं आदि दस धर्मकथाओं में भी हैं। इसलिए दस धर्म कथाओं में कही हुई आख्याइका आदि की संख्या में से नव ज्ञात में कही हुई आख्याइका आदि की संख्या को कम करके अपुनरुक्त आख्याइका आदि बचती हैं उनकी संख्या साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) ही होती है। इस प्रकार पुनरुक्ति दोष से वर्जित आख्याइका आदि की संख्या का कथन मूल में - **"एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खाओ"** - साढ़े तीन करोड़ किया गया है।

वर्तमान में जो दूसरा श्रुतस्कन्ध उपलब्ध होता है उसमें धर्मकथाओं के द्वारा धर्म का स्वरूप बतलाया गया है। इसमें दस वर्ग हैं। तेईसवें तीर्थंकर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के पास दीक्षा ली हुई २०६ आर्यिकाओं (साध्वियों) का वर्णन है। वे सब चारित्र की विराधक बन गयी थी। अन्तिम समय में उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल धर्म प्राप्त हो गयी। भवनपतियों के उत्तर और दक्षिण के बीस इन्द्रों के तथा वाणव्यंतर देवों के दक्षिण और उत्तर दिशा के बत्तीस इन्द्रों की एवं चन्द्र, सूर्य, प्रथम देवलोक के इन्द्र सौधर्मेन्द (शक्रेन्द्र) तथा दूसरे देवलोक के इन्द्र ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियाँ हुई हैं। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जायेंगी।

आगम साहित्य में यद्यपि अंतगडदसा, अनुत्तरोववाइय सूत्र तथा विपाक सूत्र आदि अंग भी कथात्मक है तथापि इन सब अंगों की अपेक्षा ज्ञातधर्म कथांग सूत्र का अपना विशिष्ट स्थान है। इसका अनुभव पाठक वर्ग स्वयं इसके पारायण से कर सकेंगे। इसके दो श्रुत स्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में उन्नीस अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं जिस में तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथ के पास दीक्षित २०६ साध्वियों का वर्णन है जो चारित्र विराधक होने से विभिन्न देवलोक में देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

जीव के आध्यात्मिक उत्थान में धर्म तत्त्व के गंभीर रहस्यों को समझने के लिए कथा साहित्य बहुत ही उपयोगी है। कथानकों के माध्यम से दुरुह से दुरुह विषय भी आसानी से समझ में आ जाता है। जैन आगम साहित्य में जितना महत्त्व द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग का है उतना ही महत्त्व धर्मकथानुयोग साहित्य का भी है। प्रस्तुत आगम में जिन मूल एवं अवान्तर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं का उल्लेख हुआ है, वे सभी कथाएं जीव का आध्यात्मिक समुत्कर्ष करने वाली है। आत्मभाव अनात्मभाव का स्वरूप, साधक के लिए आहार का उद्देश्य, संयमी जीवन की कठोर साधना, शुभ परिणाम, अनासक्ति, श्रद्धा का महत्त्व आदि विषयों पर बड़ा ही मार्मिक प्रकाश कथाओं के माध्यम से इस आगम में डाला गया है। एक-एक अध्ययन की कथा एवं उसमें आई अवान्तर कथाओं का सावधानी से पारायण किया जाय तो जीवन उत्थान में बहुत ही सहयोगी बन सकती है। संक्षिप्त में इसकी मुख्य उन्नीस कथाएं यहाँ दी जा रही है।

प्रथम अध्ययन :- यह अध्ययन मगध अधिपति महाराज श्रेणिक के सुपुत्र मेघकुमार का है। मेघकुमार ने बड़े ही उत्कृष्ट भावों से संयम ग्रहण किया। दीक्षा की प्रथम रात्रि को ज्येष्ठानुक्रम के अनुसार उनका संस्तारक (बिछौना) सभी मुनियों के अन्त में लगा, जिससे रात्रि में संतों के आने-जाने से उनके पैरों की टक्कर धूली आदि से मेघमुनि को रात्रि भर नींद नहीं आई, संयम में घोर कष्टों का अनुभव होने लगा। अतएव उन्होंने प्रातः होते ही भगवान् से पूछ कर घर लौटने का निश्चय किया। प्रातःकाल जब वे प्रभु के समक्ष उपस्थित हुए तो प्रभु ने उनके मनोगत भावों को प्रकट किया और उनके पूर्व हाथी के भवों में सहन किए गए घोरातिघोर कष्टों का विस्तृत वर्णन किया। कहा–हे मेघमुनि! इतने घोर कष्टों को तो सहन कर लिए और रात्रि के मामूली कष्ट से घबरा कर घर जाने का विचार कैसे कर लिया? मेघमुनि का इस पर चिंतन चला जिससे उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिसके बल से उन्होंने प्रत्यक्ष भगवान् द्वारा फरमाये गए पूर्वभवों को देखा। फलस्वरूप अपनी स्खलना के लिए पश्चाताप करने लगे बोले–भगवन् आज से दो नेत्रों को छोड़कर समग्र शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों की सेवा में समर्पित है।

इस कथानक से मेघमुनि के संयम की पहली रात्रि अनात्मभाव का बोध कराती है। जबकि भगवान् के उपदेश के बाद संयम स्थिर होना आत्मभाव का संकेत करता है। जीव अनात्मभाव में होता है, तब उसे सामान्य कष्ट भी उद्धेलित कर डालता है, वही जीव जब आत्मभाव में स्थित होता है तो बड़े से बड़ा कष्ट भी निर्जरा का हेतु नजर आने लगता है।

दूसरा अध्ययन :- इस अध्ययन में बतलाया गया है कि संयमी साधक को संयम के साधनभूत शरीर को टिकाये रखने के लिए इसे आहार देना पड़ता है। पर साधक को आहार ग्रहण में न तो आसक्ति रखनी चाहिए न ही शरीर की पुष्टता का लक्ष्य रखना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन्य सार्थवाह और उसकी पत्नी भद्रा के बड़ी मनोती के बाद एक पुत्र की प्राप्ति हुई। एक दिन भद्रा ने अपने पुत्र को नहला-धुलाकर अनेक आभूषणों से सुसज्जित कर अपने पंथक नामक दास चेटक को खिलाने के लिए दिया। पंथक उसे एक स्थान पर बिठा कर स्वयं खेलने लग गया। उधर विजय चोर गुजरा उसने उस बालक को आभूषणों से लदा देख उठा कर ले गया और गहने उतार कर बालक को अंध कूप में डाल दिया। नगर रक्षकों ने विजय चोर को पकड़ा और कारागार में डाल दिया। इधर कुछ समय बाद किसी के चुगली खाने पर एक साधारण अपराध में धन्य सार्थवाह को भी कारागार में डाल दिया। विजय चोर और धन्य सार्थवाह दोनों एक ही बेड़ी में डाल दिए गए।

धन्यसार्थवाह की पत्नी भद्रा सेठ के लिए विविध प्रकार का भोजन तैयार करके अपने नौकर के साथ कारागार में भेजती। उस भोजन में से विजय चोर ने सेठ से कुछ हिस्सा मांगा तो सेठ ने अपने पुत्र का हत्यारा होने के कारण भोजन देने से इन्कार कर दिया। थोड़ी देर बाद सेठ को मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उत्पन्न हुई। तो विजय चोर सेठ के साथ जाने को तैयार नहीं हुआ। वह बोला-तुमने भोजन किया है, तुम्ही जाओ, मैं भूखा प्यासा मर रहा हूँ। मुझे कोई बाधा नहीं है इसलिए मैं नहीं चलता। धन्य विवश होकर बाधा निवृत्ति के लिए दूसरे दिन से अपने भोजन का कुछ हिस्सा विजय चोर को देना चालू कर दिया। दास चेटक ने यह बात घर जाकर सेठ की पत्नी भद्रा को कही, तो वह बहुत नाराज हुई।

कुछ दिन पश्चात् सेठ कारागार से छूट कर घर गया तो बाकी सभी लोगों ने तो उसका स्वागत किया, किन्तु पत्नी भद्रा पीठ फेर कर नाराज होकर बैठ गई। धन्य सार्थवाह के नाराजी का कारण पूछने पर भद्रा ने कहा कि मेरे लाडले पुत्र के हत्यारे वैरी विजय चोर को आप आहार-पानी में से हिस्सा देते थे, इससे मैं नाराज कैसे न होऊं? धन्य सार्थवाह ने सेठानी भद्रा की नाराजी का कारण जानकर उसे समझाते हुए कहा कि मैंने उस वैरी को भोजन का हिस्सा तो दिया पर धर्म समझ कर, कर्त्तव्य समझ कर नहीं दिया, प्रत्युत मेरे मल-मूत्र की बाधा निवृत्ति में वह सहायक बना रहे इस उद्देश्य से मैंने उसे हिस्सा दिया। इस स्पष्टीकरण से भद्रा को संतोष हुआ। वह प्रसन्न हुई।

इस कथानक के माध्यम से प्रभु संयमी साधक को संकेत करते हैं कि जैसे धन्य सार्थवाह ने ममता प्रीति के कारण विजय चोर को आहार नहीं दिया, मात्र अपने शरीर की बाधा निवृत्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में सहयोगी बना रहे, इसीलिए मामूली भोजन का हिस्सा दिया। उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनि को भी अनासक्ति भाव से अपने शरीर को आहार-पानी देना चाहिए जिससे इसके द्वारा सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का समुचित पालन हो सके।

तीसरा अध्ययन :- इस अध्ययन के कथानक का सम्बन्ध जिन प्रक्चन पर शंका, कांक्षा या विचिकित्सा न करने से सम्बन्धित है। जो साधक **''तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं''** आगम वचनों पर श्रद्धा रख कर तदनुसार आचरण करता है, वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत वीतराग वचनों में शंका, कांक्षा रखने वाला भटक जाता है।

जिनदत्त पुत्र और सागरदत्त पुत्र दोनों मित्र थे, वे एक समय अमोद-प्रमोद हेतु उद्यान में गए। वहाँ उन्होंने मयूरी के दो अंडों को देखा। उन्होंने दोनों अंडों को उठाया और अपने-अपने घर लेकर आ गए। सागरदत्त पुत्र शंकाशील था कि इसमें से मयूर निकलेगा अथवा नहीं, अतएव वह बार-बार अंडे को उठाता, उलट-पलट कर कानों के पास ले जाकर बजाता इससे वह अंडा निर्जीव हो गया, उसमे से बच्चा नहीं निकला। इसके विपरीत जिनदत्त पुत्र श्रद्धा सम्पन्न था, अतएव उसने उसे मयूर पालकों को सौंप दिया, मयूरी के द्वारा उस अंडे को सेवने के कारण कुछ दिनों बाद उसमें से एक सुन्दर मयूर का बच्चा निकला, जिसे जिनदत्त पुत्र ने बाद में नाचने आदि की कला में पारंगत किया। फलस्वरूप उसने खूब अर्थोपार्जन एवं मनोरंजन किया। कथानक सार है - वीतराग वचन में शंका रखना अनर्थ एवं भवभ्रमण का कारण है। जबकि शंका रहित होकर इसकी साधना आराधना करना मुक्ति के अनन्त सुखों का हेतु है।

चतुर्थ अध्ययन :- इस अध्ययन का कथानक इन्द्रिय निग्रह से सम्बन्धित है। आत्म साधना के पथिकों के लिए इन्द्रिय गोपन करना आवश्यक है। जो संयमी साधक संयम ग्रहण करने के बाद इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता है, वह संयम च्यूत होकर अपना संसार बढ़ा लेता है। इसके विपरीत जो संयमी साधक संयम ग्रहण करके इन्द्रियों का निग्रह कर लेते हैं, वे इस भव में भी वंदनीय पूज्यनीय होते हैं और भवान्तर में मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त कर लेते हैं।

इस अध्ययन में दो कूर्म (कच्छप) का उदाहरण देकर बतलाया गया कि एक कूर्म ने इन्द्रियों का गोपन किया वह सियार के शिकार से बच गया। दूसरे कूर्म जो चंचल प्रवृत्ति था उसने ज्यों ही अपनी एक-एक करके इन्द्रियों को बाहर निकाला, सियार ने उन्हें खा कर उसे प्राणहीन कर दिया। अतएव संयमी साधक को अपनी इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचम अध्ययन - इस अध्ययन में बतलाया गया है कि यदि कोई संयमी साधक संयम की साधना आराधना करते हुए शिथिल हो जाता है एवं बाद में किसी निमित्त को पाकर वह पुनः जागृत हो संयम में पूर्ण पुरुषार्थ करने लग जाता है तो शैलक राजर्षिमुनि की भांति वह आराधक हो कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

इस अध्ययन में मूल कथानक के साथ दो-तीन अवान्तर कथानक भी है। शैलकपुर नगर के राजा शैलक ने अपने पांच सौ मत्रियों के साथ अपने पुत्र मंडुक को राजगद्दी पर बिठा कर दीक्षा अंगीकार की। साधु-जीवन की कठोर साधना के कारण उनका शरीर पित्तज्वर आदि रोग से ग्रसित हो गया। एक बार विचरण करते हुए शैलक मुनि अपने पांच सौ शिष्यों के साथ शैलक नगर में पधारे, उनके पुत्र मण्डुक राजा ने अपने पिता श्री मुनि को यथा योग्य चिकित्सा कराने का निवेदन किया, शैलक मुनि ने स्वीकृति प्रदान कर दी। नशीली औषधियों एवं सरस भोजन के उपयोग में शैलक मुनि इतने मस्त हो गए कि विहार करने तक का नाम ही नहीं लेते। ऐसे स्थिति में उनके मुख्य मंत्री पंथक मुनि को उनकी सेवा में रख कर शेष ४९९ शिष्यों ने अन्यत्र विहार कर दिया।

कार्तिक चौमासी का दिन था। शैलक मुनि आहार पानी एवं नशीली औषधि का सेवन कर सुख पूर्वक सोये हुए थे। उनका शिष्य पंथक मुनि ने सर्व प्रथम दैवसिक प्रतिक्रमण किया। इसके पश्चात् उन्होंने चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की आज्ञा के लिए अपना मस्तक अपने गुरु शैलक मुनि के चरणों में रखा। शैलक मुनि गहरी निद्रा में सोये हुए थे ज्यों ही उनके मस्तक का स्पर्श शैलकमुनि के चरणों को हुआ तो वे एक दम क्रुद्ध हुए और बोले अरे कौन है, मौत की इच्छा करने वाला, दुष्ट जिसने मेरे पैरों को छू कर मेरी निद्रा भंग कर दी। इस पर पंथक मुनि ने दोनों हाथ जोड़कर निवेदन किया भगवन्! मैं आपका शिष्य पंथक हूँ। मैंने दैवसिक प्रतिक्रमण कर लिया है और चौमासी प्रतिक्रमण करने के लिए उद्यत हुआ हूँ, इसलिए मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों को स्पर्श किया है, सो देवानुप्रिय! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। पंथकमुनि के इस प्रकार कहने पर शैलक राजर्षि की आत्मा एक दम जागृत हुई, अहो मैंने राज्य रिद्धि का त्याग कर संयम अंगीकार किया और संयम में इतना शिथिलाचारी एवं आलसी बन गया कि चार माह गुजर जाने का भी मुझे भान नहीं रहा। इस प्रकार विचार कर दूसरे ही दिन पंथक अनगार के साथ शैलक राजर्षि ने विहार कर दिया और ग्रामानुग्राम विचरने लगे। जब अन्य ४९९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिष्यों को इस बात की जानकारी हुई तो वे सभी शिष्य राजर्षि शैलक के पास आए और सभी आकर साथ विचरने लगे। इस प्रकार शैलक मुनि ने अपने पांच सौ शिष्यों के साथ वर्षों तक संयम का पालन कर सिद्धि गति को प्राप्त किया।

इस अध्ययन में चौमासी को दो प्रतिक्रमण करने का स्पष्ट पाठ है, कई भद्रिक महानुभाव कह देते हैं कि यह तो भगवान् अरिष्टनेमि प्रभु के शासन की बात है, उन महानुभावों को जानना चाहिये कि जब भगवान् अरिष्टनेमि प्रभु के शासनवर्ती सयमी साधको के लिए कालोकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक भी नहीं था, उस समय भी उन्होंने दो प्रतिक्रमण किए, तो जहाँ वीर प्रभु के शासन में कालोकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, वहाँ तो दो प्रतिक्रमण आवश्यक हीं नहीं अपितु अनिवार्य मानना चाहिये।

छठा अध्ययन - इस अध्ययन में जीव की गुरुता और लघुता का विचार किया गया है। उदाहरण देकर समझाया गया है कि जिस प्रकार तूंबे पर मिट्टी के आठ लेप कर उसे यदि जलाशय में डाला जाय तो वह जलाशय के पैंदे में चला जाता है और ज्यों-ज्यों उसके लेप उतरते जाते हैं। त्यों-त्यों तूंबा हलका होकर ऊपर उठता है एवं आठों लेप हटने पर तूंबा जलाशय पर तैरने लग जाता है। इसी प्रकार जीव आठ कर्मों से युक्त होने पर चतुर्गति में परिभ्रमण करता है और ज्यों ही आठ कर्मों से रहित हो जाता है तब लोक के अग्रभाग (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है।

सातवां अध्ययन - इस अध्ययन में धन्य सार्थवाह और उसकी चार पुत्र वधुओं का दृष्टान्त जिसमें पांच-पांच शालिकणों के माध्यम से उनकी योग्यता का अंकन किया गया। उसी प्रकार आगमकार पांच महाव्रतधारी संयमी साधकों को शिक्षा देते हैं -

१. जो संयमी साधक संघ के समक्ष पांच महाव्रतों को अंगीकार कर उनको या तो त्याग देता है अथवा उनका उपेक्षा पूर्ण पालन करता है। वह पहली पुत्र वधु के समान इस भव में तिरस्कार का पात्र बनता है और परभव में दुःखी होता है।

२. जो संयमी साधक पांच महाव्रत को ग्रहण करके उसे अपनी जीविका का साधक मान कर खान-पान आदि में आसक्त होता है वह दूसरी बहू के समान दासी के तुल्य साधु लिंग धारी मात्र रह जाता है। विद्वानों की दृष्टि में वह उपेक्षणीय होता है।

३. जो संयमी साधक पांच महाव्रत ग्रहण कर उनका यथावत् पालन करता है, वह तीसरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहू के समान इस भव में सभी लोगों का वंदनीय पूज्यनीय होता है और पर भव में देवलोक अथवा मोक्ष के सुखों को प्राप्त करता है।

४. जो संयमी साधक पांच महाव्रत ग्रहण कर उनका निरतिचार पालन ही नहीं करता बल्कि रात दिन संयम के पर्यायों को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहता है वह साधक इस भव में तीर्थ का समुदाय करने वाला, कुतीर्थिका का निराकरण करने वाला और सर्वत्र वंदनीय पूज्यनीय होकर क्रमशः सिद्धि गति को प्राप्त करता है।

आठवां अध्ययन - इस अध्ययन में मुख्य कथानक तो वर्तमान चौबीसी के उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिभगवान् का है, अवान्तर कथानक अर्हन्नक श्रावक का है। दोनों ही कथानक आत्मार्थी जीवों के लिए प्रेरणास्पद है। भगवान् मल्लिनाथ प्रभु का कथानक इस आगमिक रहस्य को प्रकट करता है कि कोई राजा हो या रंक, महामुनि हो या सामान्य गृहस्थ, कर्म किसी का लिहाज नहीं करते। कपट सेवन के फलस्वरूप मल्ली भगवान् के जीव ने महाबल मुनि के भव में स्त्री नाम कर्म का बंध कर लिया। वहाँ काल के समय काल करके जयन्त विमान में उत्पन्न हुए। जयन्त विमान से चव कर भरत क्षेत्र में मिथिला-नरेश कुंभ की महारानी प्रभावती के उदर से उन्हें कन्या के रूप में जन्म लेना पड़ा, जिनका नाम "**मल्ली**" रखा गया, जिन्होंने दीक्षा लेकर तीर्थ की स्थापना की। यद्यपि आप तीन लोक के नाथ के रूप में अवतरित हुए पर मामूली तपस्या में माया करने के कारण स्त्री वेद रूप में जन्म लेना पड़ा। इसी मूल कथानक में अवान्तर कथानक प्रियधर्मी दृढ़धर्मी अर्हन्नक श्रावक का है, जिसकी धार्मिक दृढ़ता के सामने पिशाच रूप देव को झुकना ही नहीं पड़ा बल्कि श्रावक के पांवों में गिर कर उनसे क्षमायाचना मांगनी पड़ी।

नववाँ अध्ययन - इस अध्ययन में इन्द्रियों और मन पर नियंत्रण न होने से उसका कितना अनिष्टकारी परिणाम होता है, इसका हूबहू चित्रण किया गया है। साथ ही माता पिता की आज्ञा की अवहेलना का कितना दुःखद फल होता है इसका भी निरूपण किया गया है।

माकन्दी सार्थवाह के दो पुत्र जिन पालित और जिन रक्षित थे, वे व्यापार के निमित्त से ग्यारह बार समुद्री यात्रा कर चुके। बारहवीं बार समुद्री यात्रा करने के लिए माता-पिता ने उन्हें बहुत मना किया पर वे नहीं माने। यात्रा आरम्भ कर दी पर समुद्र के बीच में उफान आने से उनकी जहाज डूब गई। एक पटिये के सहारे वे एक द्वीप पर पहुँचे। उस द्वीप की अधिपति रत्नादेवी थी, उसने उन दोनों को अपने साथ भोग-भोगते हुए उसके साथ रहने का कहा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक बार वह देवी इन्द्र के आदेशानुसार लवण समुद्र की सफाई के लिए गई। दोनों भाई उसकी अनुपस्थिति में दक्षिण दिशा की ओर गए वहाँ उन्होंने एक पुरुष को शूली पर चढ़े हुए देखा। पूछने पर पता चला वह भी उन्हीं की तरह देवी में चक्कर में फंस गया। उससे छुटकारा पाने का उपाय पूछने पर उसने बताया कि पूर्व के वनखण्ड में एक शैलक नामक यक्ष रहता है, वह निश्चित समय पर "किसे तारूँ किसे पालूं?" की घोषणा करता है, उस समय आप उसे तारने की याचना करना ताकि वह आपको बचा सकेगा। दोनों भाईयों ने वैसा ही किया। शैलक यक्ष ने उन दोनों भाइयों को इस शर्त पर तारना पालना स्वीकार किया कि रत्नादेवी उन्हें अनेक तरह से ललचाएगी, मीठी-मीठी बातों में अपनी ओर विषय भोगों के लिए आकर्षित करेगी, तुम उस प्रलोभन में न आओ तो मैं तार सकता हूँ। दोनों भाइयों ने यक्ष की बात को स्वीकार की। यक्ष ने दोनों को अपनी पीठ पर बैठा कर समुद्र मार्ग से ले गया। इस बात की रत्नादेवी को जानकारी हुई तो वह तुरन्त समुद्र में तीव्र गति से गई और दोनों भाइयों को अपनी ओर इन्द्रिय सुखों की ओर ललचाने का प्रयास एवं विलाप किया। जिनपालित तो उसकी बातों से विचलित नहीं हुआ। किन्तु जिनरक्षित का मन विचलित हो गया। यक्ष ने उसके मनोमन भावों को जानकर उसे गिरा दिया। निर्दया हृदया रत्नादेवी ने उसे तलवार पर झेल कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जिनपालित ने अपने मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण रखा तो सकुशल चम्पानगरी पहुँच गया। इन्द्रियों और मन पर काबू न रखने वाला जिनरक्षित रत्ना देवी द्वारा मार डाला गया। आगमकार यह दृष्टान्त देकर इन्द्रियों एवं मन पर काबू रखने का संकेत करते हैं।

दसवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में चन्द्रमा की कला के घटने-बढ़ने का कथानक है। आगमकार संयमी साधक को विकास और ह्रास को इस कथानक के द्वारा घटित कर संकेत करते हैं कि जो संयमी साधक साधु के क्षमा आदि दस श्रमण धर्म का यथाविध पालन करता है उसका विकास शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह होता है। इसके विपरीत जो संयमी साधक संयम ग्रहण करके श्रमण धर्म के गुणों का यथाविध पालन नहीं करता है, अथवा उपेक्षा करता है, उसका संयमी जीवन कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की भांति दिन-प्रतिदिन ह्रास की ओर गिरता हुआ एक दिन अमावस्या के चन्द्रमा के समान पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।

ग्यारहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में संयमी जीवन की सहनशीलता-सहिष्णुता की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। संयमी साधक को अपने संयमी जीवन के दौरान यदि कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्हें जाति कुल आदि को ही बताकर अपमानित करे अथवा अन्य प्रकार से कटु अयोग्य या असभ्य वचनों का प्रयोग कर उसकी हिलना निंदा करे तो साधक को उस पर लेशमात्र भी द्वेष नहीं करना चाहिये, बल्कि उसके प्रति करूणा भाव उत्पन्न होना चाहिये। इसके लिए समुद्र के किनारे स्थित दावद्रव वृक्षों के दृष्टान्त देकर साधक की सहनशीलता को चार विकल्प क्रमशः देश विराधक, सर्व विराधक, देशाराधक और सर्वाराधक में निरूपित किया है।

बारहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन का मुख्य विषय पुद्‌गल एवं उनके परिणमन से सम्बन्धित है। जो पुद्‌गल आज शुभ नजर आते हैं, वह संयोग पाकर कालान्तर में अशुभ में परिणत हो जाते हैं, इसी प्रकार जो पुद्‌गल वर्तमान में अशुभ दृष्टिगोचर होते हैं वे संयोग पाकर कालान्तर में शुभ में परिणत हो जाते हैं। इस गूढ़ तत्त्व को बाहिरात्मा तो समझ नहीं सकती है। इस रहस्य को तो जैन दर्शन के तत्त्वेत्ता ही समझ सकते हैं।

प्रस्तुत कथानक में जितशत्रु राजा और उसके प्रधान सुबुद्धि का संवाद है। सुबुद्धि प्रधान जीवाजीव रहस्यों को जानने वाला तत्त्वज्ञ श्रमणोपासक था जबकि उसका राजा जितशत्रु जिनधर्म से अनभिज्ञ मिथ्यादृष्टि था। सुबुद्धि प्रधान ने खाई के गंदे दुर्गन्ध युक्त पानी को प्रयोग द्वारा शुद्ध स्वादिष्ट में परिणत कर राजा को यथार्थ तत्त्व से अवगत कराया। इस पर राजा ने जिज्ञासा प्रकट की हे मंत्रीवर! यह बताओं कि आपने यह सत्य तथ्य कैसे जाना? सुबुद्धि ने उत्तर दिया स्वामी! इस सत्य तथ्य का परिज्ञान मुझे जिनवाणी से हुआ। इस पर राजा ने उनसे जिनवाणी श्रवण की अभिलाषा प्रकट की। सुबुद्धि प्रधान में राजा को जिनवाणी का स्वरूप समझाया। इसके पश्चात् जितशत्रु राजा एवं सुबुद्धि प्रधान ने स्थविर भगवन्तों के पास दीक्षा अंगीकार की और मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त किया।

तेरहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है -

१. सद्‌गुरुओं के समागम से आत्मिक गुणों का विकास होता है।

२. लम्बे काल तक सद्‌गुरुओं का समागम न होने से तथा मिथ्यादृष्टियों के परिचय में रहने से जीव के आत्मिक गुणों का ह्रास होता है यावत् वह मिथ्यात्व में पहुँच जाता है।

३. आसक्ति पतन का कारण है।

नंदमणिकार श्रमणोपासक था, कालान्तर में लम्बे समय तक साधु का समागम न होने से वह विचारों से च्यूत हो गया। अर्थात् पौषध अवस्था में बावड़ी बगीचा आदि के निर्माण का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकरणीय कार्य करने का उसने संकल्प कर लिया और तदनुसार उनका निर्माण करवाया। निर्माण ही नहीं करवाया बल्कि वह उसमें इतना आसक्त हुआ कि मर कर उसी बावड़ी में मेढ़क के रूप में उत्पन्न हुआ। बाद में मेढ़क के भव में परिणामों की विशुद्धि से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिसके बल पर उसने अपने पूर्व भवों को देखा। अपनी आत्म-साक्षी से उसने दोषों का पश्चात्ताप कर पुनः श्रावक के व्रतों को स्वीकार किया। फलस्वरूप देवगति में उत्पन्न हुआ। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य भव प्राप्त कर चारित्र अंगीकार करके मोक्ष को प्राप्त करेगा।

चौदहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में पाठकों के बोध के लिए दो बातों का प्रकाश डाला गया है। एक तो कर्मों के विचित्र स्वरूप को बतलाया गया है कि एक समय वह था जब तेतली-पुत्र प्रधान ने स्वर्णकार की लड़की (पोटिला) के रूप सौन्दर्य पर आसक्त होकर पत्नी के रूप में मांगनी कर उसके साथ शादी की। कालान्तर में उसके साथ स्नेह सूत्र ऐसा टूटा कि तेतली-पुत्र प्रधान पोटिला को देखना तो दूर उसके नाम सुनने मात्र से ही उसे घृणा हो गई। दूसरा उसी पोट्टिला के उपदेश से प्रतिबोध पाकर तेतली-पुत्र प्रधान ने संयम अंगीकार कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। विस्तृत जानकारी के पारायण कथानक से ज्ञात होगा।

पन्द्रहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में मन को लुभाने वाले इन्द्रिय-विषयों से सावधान रहने की सूचना दी गई है। धन्य सार्थवाह अपने सार्थ के साथ चम्पानगरी से अहिच्छत्रा नगरी की ओर प्रस्थान करता है, रास्ते में भयकर अटवी आती है, उस अटवी के मध्य भाग में एक जाति के विषैले वृक्ष का बगीचा था। उसके फलों का नाम नंदीफल था, जो दिखने में सुन्दर, सुगन्धित एवं चखने पर मधुर लगते थे। पर उनका आस्वादन (चखने) मात्र प्राण हरण करने वाला था। धन्य सार्थवाह इस तथ्य का जानकार था, अतएव उसने सभी सार्थ के सदस्यों को सूचित किया कि इन नंदीफलों को खाना तो दूर बिल्कि इसके वृक्षों की छाया के निकट भी न फटके। जिस-जिस ने उसकी बात मानी वें सकुशल अहिच्छत्र नगरी पहुँचे। जिन्होंने इसकी बात नहीं मान कर उन फलों को चक्खा वे मृत्यु को प्राप्त हो गए।

तीर्थंकर भगवान् सार्थवाह के समान हैं, वे संसारी प्राणियों को नंदीफल के समान इन्द्रिय विषय सुखों से बचने का संकेत करते हैं, जो उनकी बात मान कर इनको त्याग करता है वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त कर लेते हैं, जो उनकी बात नहीं मान कर इन्द्रिय विषय सेवन में अनुरक्त रहते हैं वे संसार में जन्म मरण करते रहते हैं।

सोलहवां अध्ययन - इस अध्ययन में द्रोपदी के जीव की कथा उसके नागश्री ब्राह्मणी के भव से चालू होती है। नागश्री के भव में उसने मासखमण के पारणे के दिन धर्मरुचि मुनिराज को कड़वे विषाक्त तूम्बे का शाक बहराया जिसके कारण उसका कितना भव भ्रमण बढ़ा इसका विस्तृत खुलासा इस अध्ययन में किया है। लम्बे काल तक जन्म मरण के पश्चात् उसे मनुष्य भव की प्राप्ति हुई तो उसके शरीर का स्पर्श इतना तीक्ष्ण और अग्नि जैसा उष्ण था कि उसके साथ जिसने भी शादी की वे उसके साथ रहने को तैयार नहीं हुए, अंततोगत्वा उसने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण के बाद भी वह शरीर बकुश, शिथिलाचारिणी, स्वच्छन्द होकर साध्वी समुदाय को छोड़कर एकाकिनी रहने लगी। एकाकिनी विचरण के दौरान उसने एक वैश्या को पांच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा। उसे देखकर उसने निदान कर लिया कि मेरे तप संयम का फल हो तो मैं भी इसी प्रकार के सुख को प्राप्त करूँ, फलस्वरूप देव गणिका के बाद द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई। इस अध्ययन में सुपात्र को अमनोज्ञ आहार बहराने का दुष्परिणाम एवं साधना जीवन जो अक्षय सुखों का दिलाने वाला है, उसे संसारी तुच्छ सुखों के लिए निदान करना कितना हानि कारक है, यह बतलाया गया है।

सत्तरहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में अश्वों का उदाहरण देकर यह प्रतिपादित किया गया है कि जो साधक साधना जीवन में प्रवेश करने के बाद इन्द्रियों के वशीभूत होकर अनुकूल इन्द्रिय विषयों में आसक्त होता है वह घोर कर्म बंधन को प्राप्त करती है, जिस प्रकार इन्द्रियों में अनुरक्त अश्व बंधन-बद्ध हुए। इसके विपरीत जो साधक इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में आसक्त नहीं होता वह कर्मों से बद्ध नहीं होता और जन्म मरण रहित आनंदमय निर्वाण को प्राप्त करता है जैसे इन्द्रियों के विषयों के प्रलोभन में न फंसने वाले अश्व स्वच्छन्द स्वाधीन विचरण करने में समर्थ हुए।

अठारहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में संयमी साधकों को आहार के प्रति कितन अनासक्त भाव रखना चाहिए इसका चित्रण किया गया है। धन्य सार्थवाह की पुत्री सुंसुमा क 'चिलात' चोर ने अपहरण कर उसे अपने कंधे पर डाल कर राजगृह नगर से बहुत दूर भागत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ ले गया उसका पीछा धन्य सार्थवाह और उसके पुत्रों ने लगातार किया, यह देखकर चिलात चोर अन्य कोई उपाय न देख कर सुंसमा का गला काट डाला और धड़ को वही छोड़कर मस्तक लेकर अटवी में कहीं भाग गया। सार्थवाह एवं उसके पुत्रों ने जब अपनी पुत्री का मस्तक विहीन निर्जीव शरीर देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। अब उन्होंने चोर का पीछा करना छोड़ कर पुनः राजगृह नगर जाने का सोचा। पर वे राजगृह से इतना दूर आ गए कि बिना भोजन पान के उनका वापिस राजगृह पहुँचना सम्भव नहीं था, अतएव राजगृह पहुँचने के लिए मृत ''सुंसुमा'' के मांस रुधिर का उपयोग कर वे राजगृह पहुँचे। इसी तरह साधक मुनि को चाहिये कि वह इस अशुचि युक्त शरीर के पोषण के लिए आहार-पानी का उपयोग न करे प्रत्युत मोक्ष धाम पहुँचने के लिए अनासक्त भाव से आहार करे। जिस प्रकार धन्य सार्थवाह और उसके पुत्रों ने अनासक्त भाव से राजगृह पहुँचने के लिए मृत कलेवर का आहार किया।

उन्नीसवां अध्ययन - इस अध्ययन में मानव जीवन के उत्थान और पतन का सजीव चित्रण किया गया है। जो संयमी साधक हजारों वर्षों तक संयम का पालन करे और अन्त समय में इन्द्रियों और मन के वशीभूत होकर यदि संसार के भोगोपभोग के साधनों में आसक्त हो जाता है, तो उन साधनों का अल्प समय का उपभोग उसको नरक का मेहमान बना देता है। इसके विपरीत जो साधक उत्कृष्ट तप संयम की साधना करता है वह अल्प समय में ही सर्वार्थसिद्ध देवों के सुख को प्राप्त कर लेता है।

महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी राजधानी थी। वहाँ राजा महापद्म के दो पुत्र थे पुण्डरीक और कण्डरीक। राजा महापद्म ने स्थविर भगवन्तों के पास दीक्षा अंगीकार की और शुद्ध संयम की आराधना कर यथासमय सिद्धि गति को प्राप्त किया। इसके पश्चात् किसी समय दूसरी बार स्थविर भगवन्त पधारे तो राजकुमार कण्डरीक ने उनके पास दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के दौरान कण्डरीक अनगार के शरीर में अन्त प्रान्त अर्थात् रूखे सूखे आहार के कारण शैलक मुनि के समान दाहज्वर उत्पन्न हो गया। पुंडरीक राजा ने स्थविर भगवन्तों से निवेदन कर कण्डरीक मुनि का अपनी यानशाला में उपचार कराया। चिकित्सा के पश्चात् कण्डरीक मुनि स्वस्थ हो गए पर मनोज्ञ अशन पान खादिम और स्वादिम आहार में मुर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन होने से वे शिथिलाचारी बन गए। कुछ समय स्थविर भगवन्तों के साथ विहार कर वापिस पुंडरीकिणी नगर में लौटे। पुंडरीक राजा उनकी भावना को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझ कर उनसे पूछा - भगवन्! क्या आपका भोगों के भोगने का प्रयोजन है? तब कंडरीक मुनि ने हाँ भर दी। तुरन्त राजा पुंडरीक ने कण्डरीक का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं उनका वेष उपकरण आदि धारण कर चातुर्याम धर्म अंगीकार किया और इस अभिग्रह के साथ विहार कर दिया कि जब तक मैं स्थविर गुरु भगवन्तों के दर्शन कर उनके पास से चातुर्याम धर्म अंगीकार न कर लूं तब तक मुझे आहार पानी करना नहीं कल्पता है।

इधर कण्डरीक द्वारा राजा बनने के पश्चात् अत्यधिक सरस पौष्टिक आहार करने से उसका पाचन ठीक प्रकार न होने से उसके शरीर में प्रचुर प्रचण्ड वेदना उत्पन्न हुई। उसका शरीर पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया, वह राज्य अन्तःपुर में भी अतीव आसक्त बन गया। कहा जाता है कि तीन दिन इनका उपभोग कर काल के समय काल करके वह कण्डरीक राजा सातवीं नरक में उत्कृष्ट तेतीस सागर की स्थिति में उत्पन्न हुआ। इधर पुण्डरीक अनगार स्थविर भगवन्तों की सेवा में पहुँचा वंदन नमस्कार कर दूसरी बार चातुर्याम धर्म अंगीकार किया। फिर बेले के पारणे के दिन होने से प्रथम पहर में स्वाध्याय दूसरे पहर में ध्यान और तीसरे पहर में गौचरी पधारे, ठंडा रूखा-सुखा भोजन पान ग्रहण किया, उस आहार से पुण्डरीक मुनि के शरीर में विपुल कर्कश वेदना हुई, उन्होंने उसी समय पापों की आलोचना की, संलेखना संथारा ग्रहण किया और उच्च भावों से काल के समय काल करके सर्वाथसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में तेतीस सागर की स्थिति में उत्पन्न हुए। तीन दिन का राजसी सुख कण्डरीक को सातवीं नरक का मेहमान बना दिया जबकि तीन दिन का निर्दोष उत्कृष्ट संयम पुण्डरीक मुनि को छोटी मोक्ष अर्थात् सर्वार्थसिद्ध का अधिकारी बना दिया।

अति संक्षेप में ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के उन्नीस अध्ययनों की भूमिका हमने यहाँ दी विस्तृत जानकारी तो इन अध्ययनों के गहन पारायण से ही मिल सकेगी। वस्तुतः ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के सभी उन्नीस ही अध्ययन मानव जीवन के आध्यात्मिक विकास के लिए बड़े ही उपयोगी, प्रेरणास्पद एवं महत्त्व पूर्ण हैं। इस आगम का अनुवाद जैन दर्शन के जाने-माने विद्वान् डॉ० छगनलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ एम. ए., पी. एच. डी. विद्यामनोदधि ने किया है। आपने अपने जीवन काल में अनेक आगमों का अनुवाद किया है। अतएव इस क्षेत्र में आपका गहन अनुभव है। प्रस्तुत आगम के अनुवाद में भी संघ द्वारा प्रकाशित अन्य आगमों की शैली का ही अनुसरण आदरणीय शास्त्री जी ने किया है यानी मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन आदि आदरणीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रीजी के अनुवाद की शैली सरलता के साथ पाडित्य एवं विद्वता लिए हुए है। जो पाठकों के इसके पठन अनुशीलन से अनुभव होगी। आदरणीय शास्त्रीजी के अनुवाद में उनके शिष्य श्री महेन्द्रकुमारजी का भी सहयोग प्रशसनीय रहा। आप भी संस्कृत एवं प्राकृत के अच्छे जानकार है। आपके सहयोग से ही शास्त्री जी इस विशाल काया शास्त्र का अल्प समय ही अनुवाद कर पाये। अतः संघ दोनों आगम मनीषियों का आभारी है।

इस अनुवादित आगम को परम श्रद्धेय श्रुतधर पण्डित रत्न श्री प्रकाशचन्दजी म. सा. की आज्ञा से पण्डित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. ने गत जोधपुर चातुर्मास में सुनने की कृपा की। सेवाभावी सुश्रावक श्री हीराचन्दजी सा. पींचा ने इसे सुनाया। पूज्य श्री जी ने आगम धारणा सम्बन्धित जहाँ भी उचित लगा संशोधन का संकेत किया। तदनुसार यथास्थान पर संशोधन किया गया। तत्पश्चात् मैंने एवं श्रीमान् पारसमल जी चण्डालिया ने पुनः सम्पादन की दृष्टि से इसका पूरी तरह अवलोकन किया। इस प्रकार प्रस्तुत आगम को प्रकाशन में देने से पूर्व सूक्ष्मता से पारायण किया गया है। बावजूद इसके हमारी अल्पज्ञता की वजह से कहीं पर भी त्रुटिं रह सकती है। अतएव समाज के विद्वान् मनीषियों की सेवा में हमारा नम्र निवेदन है कि इस आगम के मूल पाठ, अर्थ, अनुवाद आदि में कहीं पर भी कोई अशुद्धि, गलती आदि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करने की कृपा करावें। हम उनके आभारी होंगे।

प्रस्तुत आगम की अनुवादित सामग्री लगभग आठ सौ पचास पृष्ठों की हो गई। अतएव सम्पूर्ण सामग्री को एक ही भाग में प्रकाशित करना संभव नहीं होने से इसे दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम भाग में पृष्ठ संख्या ४३६+२८=४६४ तक एक से आठ अध्ययन लिए गए हैं। शेष अध्ययन दूसरे भाग में लिए गए हैं।

संघ का आगम प्रकाशन का कार्य पूर्ण हो चुका है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम **प्रकाशन हों वे अर्द्ध मूल्य** में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने **सम्पूर्ण आर्थिक** सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को **उपलब्ध** कराया जा रहा है संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिह्नों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत इस सूत्र का प्रथम बार नवम्बर २००३ में प्रकाशन हुआ। इसकी १००० प्रतियों अल्प समय में ही समाप्त हो गई। प्रथम आवृत्ति का **तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्रीमान् रानीदानजी सा. भंसाली, राजनांदगांव निवासी** ने आद्योपरांत दोनों भागों का अवलोकन कर आवश्यक संशोधन किया अतः संघ आपका आभारी है। इसकी द्वितीय संशोधित आवृत्ति का जून २००५ में प्रकाशन किया गया था, अब इसकी यह तृतीय आवृत्ति **श्रीमान् जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी के अर्थ सहयोग से ही प्रकाशित हो रही है। इसके प्रकाशन में जो कागज काम में लिया गया है वह उच्च कोटि का मेफलिथो साथ ही पक्की सेक्शन बाईडिंग है बावजूद आदरणीय शाह साहब के आर्थिक सहयोग दोनों भागों का **मूल्य मात्र ४०)+४०) रुपये** ही रखा गया है। जो अन्य संस्थानों के प्रकाशनों की अपेक्षा अल्प है। पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि वे इस तृतीय आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें।

ब्यावर (राज.)
दिनांकः २५-१२-२००६

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह ✲	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे,
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

✲ आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्धि न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

भाग २

विषयानुक्रमणिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	माकंदी नामक नववां अध्ययन	
१.	दो सार्थवाह पुत्रों द्वारा समुद्री यात्रा	२
२.	विकराल तूफान	४
३.	काष्ठफलक के सहारे माकंदी पुत्र बचे	७
४.	माकंदी पुत्रों द्वारा रत्नद्वीप में प्रवेश	६
५.	भयभीत माकंदी-पुत्र भोग विवश	१०
६.	देवी के वासना पूर्ण आदेश का स्वीकार	११
७.	देवी का माकंदी पुत्रों को आदेश	१२
८.	माकंदी पुत्रों द्वारा तीन वन खंडों में मनोरंजन	१७
६.	दक्षिणी वनखंड का रहस्योद्घाटन	१६
१०.	छुटकारे का उपाय	२१
११.	उद्धार की अभ्यर्थना और शर्त	२३
१२.	देवी के चंगुल से मुक्ति का प्रयास	२४
१३.	देवी का दुष्प्रयास	२५
१४.	देवी का दूसरा दुष्प्रयास	३३
	चन्द्रमा नामक दसवां अध्ययन	
१५.	स्वरूप हानि का क्रम	३६
१६.	वृद्धि का विकास क्रम	४०
	दावद्रव नामक ग्यारहवां अध्ययन	
१७.	देशाराधक का विवेचन	४५
१८.	सर्व विराधक का लक्षण	४६
१६.	सर्वाराधक की भूमिका	४६
	उदकज्ञात नामक बारहवां अध्ययन	
२०.	अतिमलिन, जलयुक्त परिखा	४६
२१.	मनोज्ञ आहार की प्रशंसा	५०
२२.	पुद्गलों की परिणमनशीलता	५२
२३.	मलिन जल का सुपेय जल-में रूपांतरण	५६
२४.	प्रयोगजनित पुद्गल परिणमन	५६
	मण्डुकज्ञात नामक तेरहवां अध्ययन	
२५.	गौतम का प्रश्न : भगवान् द्वारा-समाधान	७१
२६.	नन्द मणिकार	७२
२७.	नन्द का सम्यक्त्व से वैमुख्य	७३
२८.	नंद द्वारा पुष्करिणी का निर्माण	७३
२६.	नंदा पुष्करिणी की सौंदर्य वृद्धि	७५
३०.	चित्रशाला	७६
३१.	पाकशाला	७७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
३२.	सर्व सुविधासंपन्न चिकित्सालय	७८
३३.	प्रसाधन कक्ष	७८
३४.	नन्द श्रेष्ठी की प्रशंसा	८०
३५.	नंद व्याधिग्रस्त	८१
३६.	देहावसान : मेंढक के रूप में पुनर्जन्म	८४
३७.	जाति स्मरण ज्ञान की उत्पत्ति	८५
३८.	श्रावक धर्म का अंतःस्वीकार	८६
३९.	दर्दुर द्वारा तपश्चरण	८७
४०.	भगवान् का समवसरण	८८
४१.	भगवान् की वंदना हेतु दर्दुर-का प्रस्थान	८८
४२.	मारणांतिक प्रत्यवाय	८९
४३.	संलेखना पूर्वक देहत्याग	८९
४४.	देव के रूप में उत्पत्ति	९१
४५.	भविष्य-कथन	९१

तेतली पुत्र नामक चौदहवां अध्ययन

क्रं.	विषय	पृष्ठ
४६.	अमात्य तेतली-पुत्र	९३
४७.	स्वर्णकार मूषिकादारक एवं पोट्टिला	९४
४८.	तेतली-पुत्र पोट्टिला पर मुग्ध	९४
४९.	पाणिग्रहण का प्रस्ताव	९६
५०.	भार्या-प्राप्ति	९८
५१.	सत्तालोलुप राजा कनकरथ	९९
५२.	रानी की बुद्धिमत्ता	१००
५३.	सन्तति परिवर्तन की आयोजना	१०१
५४.	अमात्य द्वारा पुत्र जन्मोत्सव	१०४
५५.	पोट्टिला से विरक्ति	१०४
५६.	आर्या सुव्रता का पदार्पण	१०६
५७.	पोट्टिला द्वारा श्राविकाव्रत स्वीकार	१०९
५८.	अमात्य द्वारा सशर्त प्रव्रज्या-की अनुज्ञा	११०
५९.	पोट्टिला प्रव्रजित	१११
६०.	कनकरथ की मृत्यु : उत्तराधिकारी-की गवेषणा	११२
६१.	कनकध्वज का चयन : राज्याभिषेक	११४
६२.	प्रतिबोध का युक्तियुक्त प्रयास	११६
६३.	तेतली पुत्र का घोर तिरस्कार	११७
६४.	आत्म हत्या का असफल प्रयास	११९
६५.	पोटिल देव द्वारा प्रतिबोधित	१२१
६६.	तेतली पुत्र को जाति स्मरण ज्ञान	१२२
६७.	तेतली पुत्र को केवलज्ञान	१२३
६८.	कनकध्वज द्वारा क्षमायाचना	१२४

नंदीफल नामक पन्द्रहवां अध्ययन

क्रं.	विषय	पृष्ठ
६९.	धन्य सार्थवाह की व्यापारार्थ यात्रा	१२७
७०.	सह यात्रियों को चेतावनी	१३०
७१.	धन्य का अहिच्छत्रा आगमन, क्रय-विक्रय	१३३

अपरकंका नामक सोलहवां अध्ययन

क्रं.	विषय	पृष्ठ
७२.	तीन धनी, विद्वान् ब्राह्मण	१३६
७३.	एक साथ भोजन का निर्णय	१३७
७४.	खारे, कडुवे तूंबे का शाक	१३८
७५.	स्थविर धर्मघोष का आगमन	१३९
७६.	नागश्री का दूषित दान	१४०
७७.	विषाक्त तूंबे को परठने का आदेश	१४१
७८.	हिंसा-भय से स्वदेह में परिष्ठापन	१४२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
७९.	संलेखना पूर्वक समाधि मरण	१४४
८०.	नागश्री की भर्त्सना	१४७
८१.	नागश्री का गृह से निष्कासन, घोर दुर्गति	१४९
८२.	उत्तरवर्ती भवों में भीषण वेदना	१५१
८३.	सार्थवाह कन्या के रूप में जन्म	१५३
८४.	सार्थवाह जिनदत्त	१५४
८५.	सुकुमालिका के विवाह का प्रस्ताव	१५५
८६.	विवाह की शर्त	१५६
८७.	सुकुमालिका एवं सागर का पाणिग्रहण	१५८
८८.	सुकुमालिका की देह का अग्नि कणोपम स्पर्श	१५९
८९.	सुकुमालिका का परित्याग	१६०
९०.	द्रमक द्वारा भी परित्याग	१६७
९१.	सुकुमालिका द्वारा दान-धर्म का आश्रय	१६८
९२.	प्रव्रज्या ग्रहण	१६९
९३.	विपुल भोगाकांक्षामय निदान	१७१
९४.	सुकुमालिका की देह - संस्कारपरायणता	१७२
९५.	श्रमणी संघ का परित्याग	१७४
९६.	द्रौपदी वृत्तांत	१७५
९७.	स्वयंवर की घोषणा	१७८
९८.	कृष्ण का पांचाल की ओर प्रस्थान	१८२
९९.	हस्तिनापुर : आमंत्रण	१८३
१००.	अन्यान्य राजाओं को आमंत्रण	१८३
१०१.	आमंत्रित राजन्यगण रवाना	१८६
१०२.	स्वयंवर विषयक निर्देश	१८६
१०३.	द्रुपद द्वारा घोषणा	१८९
१०४.	स्वयंवर का शुभारंभ	१९०
१०५.	पंच पांडव वरण	१९७
१०६.	पाणिग्रहण संस्कार	१९८
१०७.	राजा पाण्डु द्वारा हस्तिनापुर का निमंत्रण	१९९
१०८.	हस्तिनापुर से मंगल-महोत्सव	२०२
१०९.	नारद का पदार्पण	२०३
११०.	द्रौपदी पर कुपित	२०७
१११.	नारद का षड्यंत्र	२०८
११२.	देव द्वारा द्रौपदी का अपहरण	२११
११३.	पद्मनाभ द्वारा काम-भोग का आह्वान	२१२
११४.	शील रक्षण की युक्ति	२१३
११५.	द्रौपदी की खोज	२१४
११६.	कुंती द्वारा सहायता हेतु-श्रीकृष्ण से अनुरोध	२१६
११७.	द्रौपदी के छुटकारे का सफल प्रयास	२२०
११८.	देव सहायता से समुद्र पार	२२२
११९.	राजा पद्मनाभ को चुनौती	२२४
१२०.	पद्मनाभ का युद्धार्थ प्रयाण	२२६
१२१.	पद्मनाभ-पांडव संग्राम	२२७
१२२.	पांडवों की हार	२२७
१२३.	कृष्ण द्वारा मान-मर्दन	२२९
१२४.	पद्मनाभ का आत्म-समर्पण	२३०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१२५.	द्रौपदी कृष्ण वासुदेव को सुपुर्द	२३१
१२६.	शंख ध्वनि द्वारा दो वासुदेवों का सम्मिलन	२३३
१२७.	पांडवों द्वारा अशिष्टता	२३७
१२८.	वासुदेवों का कोप : पांडवों - का निर्वासन	२४०
१२९.	पाण्डु मथुरा का निर्माण	२४३
१३०.	पांडवों को पुत्र-प्राप्ति	२४४
१३१.	पांडवों की सपत्नीक प्रव्रज्या	२४६
१३२.	पाण्डव मुनियों की भगवान् - अरिष्टनेमि के दर्शन की अभीप्सा	२४७
१३३.	गिरनार पर भगवान् अरिष्टनेमि- का निर्वाण	२४९
१३४.	पांडवों की सिद्धि गति	२५०
१३५.	आर्या द्रौपदी का देवलोकगमन	२५१
	आकीर्ण नामक सतरहवां अध्ययन	
१३६.	समुद्री यात्रा में उत्पात	२५३
१३७.	अकस्मात् कालिक द्वीप में - पहुँचने का संयोग	२५५
	सुंसुमा नामक अठारहवां अध्ययन	
१३८.	दास पुत्र का उद्दण्ड स्वभाव	२७४
१३९.	धन्य सार्थवाह को उपालंभ	२७५
१४०.	निष्कासित दासपुत्र का- कुसंगति में पड़ना	२७६
१४१.	चोराधिपति विजय तथा उसका- दुर्जेय अड्डा	२७७
१४२.	चिलात का चोरपल्ली में आश्रय- प्राधान्य	२७९
१४३.	विजय की मृत्यु : चिलात- उत्तराधिकारी	२८०
१४४.	धन्य सार्थवाह को लूटने की योजना	२८२
१४५.	धन्य सार्थवाह के घर पर धावा	२८४
१४६.	धन दौलत के साथ सुंसुमा- का अपहरण	२८५
१४७.	आरक्षीजनों से शिकायत	२८५
१४८.	चिलात का पराभव	२८६
१४९.	पुत्रों सहित धन्य सार्थवाह द्वारा पीछा	२८७
१५०.	चिलात द्वारा सुंसुमा का शिरच्छेद	२८८
१५१.	धन्य शोक-निमग्न	२८९
१५२.	आहार-पानी के अभाव में प्राण - त्याग का विचार	२९०
१५३.	पांचों पुत्रों द्वारा क्रमशः प्राणांत- का प्रस्ताव	२९१
१५४.	पुत्र की मृत देह से क्षुधा- तृषा की शांति	२९२
१५५.	राजगृह आगमन	२९३
	पुण्डरीक नामक उन्नीसवां अध्ययन	
१५६.	राजा महापद्म : दीक्षा, सिद्धि	२९८
१५७.	राजा पुंडरीक द्वारा श्रावक धर्म स्वीकार	२९९
१५८.	युवराज कंडरीक प्रव्रजित	२९९
१५९.	अनगार कंडरीक रोगाक्रांत	३०१
१६०.	राजा पुंडरीक द्वारा चिकित्सा	३०२
१६१.	कंडरीक का शैथिल्य	३०२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं. विषय	पृष्ठ
१६२.पुंडरीक द्वारा व्याज-स्तुति	३०२
१६३.तात्कालिक प्रभाव, पुनः पूर्ववत्	३०३
१६४.श्रामण्य से वैमुख्य, राज्याभिषेक	३०५
१६५.पुंडरीक प्रव्रजित	३०६
१६६.कंडरीक पुनः रोगाक्रांत, कालगत	३०७
१६७.पुंडरीक आत्म साधना में अग्रसर	३०८
१६८. जीवन यात्रा का साफल्य	३०९

द्वितीय श्रुतस्कन्ध-धर्मकथा

प्रथम वर्ग

१६९.काली नामक-प्रथम अध्ययन	३१३
१७०.कालीदेवी का ऐश्वर्य	३१६
१७१.काली देवी का पूर्वभव वृत्तांत	३१९
१७२.भ० पार्श्व का पदार्पण	३२०
१७३.काली द्वारा दर्शन, वंदन	३२०
१७४.काली द्वारा श्रामण्य स्वीकार	३२५
१७५.आर्या काली की देहासक्ति	३२६
१७६.देवी के रूप में उत्पत्ति	३२८
१७७.राई नामक द्वितीय अध्ययन	३३१
१७८.भ० की सेवा में राई देवी का आगमन	३३१
१७९.रजनी नामक तृतीय अध्ययन	३३३
१८०.विज्जू नामक चतुर्थ अध्ययन	३३३
१८१.मेहा नामक पंचम अध्ययन	३३४

द्वितीय वर्ग

१८२.प्रथम अध्ययन	३३५
१८३.द्वितीय से पंचम अध्ययन	३३७

तृतीय वर्ग

१८४.प्रथम अध्ययन	३३८
१८५.इलादेवी का भगवान् की सेवा में आगमन	३३८
१८६.अध्ययन दो से छह	३३९
१८७.अध्ययन सात से चौपन	३४०

चतुर्थ वर्ग

१८८.प्रथम अध्ययन	३४१
१८९.रूपादेवी	३४१
१९०.अध्ययन २-५४	३४२

पंचम वर्ग

१९१.प्रथम अध्ययन	३४४
१९२.कमलादेवी	३४४
१९३.शेष अध्ययन	३४४

छठा वर्ग

१९४. अध्ययन १-३२	३४६

सप्तम वर्ग

१९५.प्रथम अध्ययन	३४७
१९६.शेष अध्ययन	३४८

आठवां वर्ग

१९७.प्रथम अध्ययन	३४९
१९८.शेष अध्ययन	३५०

नवम वर्ग

१९९.प्रथम अध्ययन	३५१
२००.शेष अध्ययन	३५२

दशम वर्ग

२०१.प्रथम अध्ययन	३५३
२०२.शेष अध्ययन	३५४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ णमो सिद्धाणं॥

णायाधम्मकहाओ

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

भाग २

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

मायंदी णामं णवमं अज्झयणं

माकन्दी नामक नववाँ अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते णवमस्स णं भंते! णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा - भगवन्! यदि श्रमण यावत् निर्वाण प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें ज्ञाताध्ययन का पूर्वोक्त रूप में प्रतिपादन किया है तो कृपया बतलाएँ, उन्होंने नवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी। पुण्णभद्दे चेइए।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले - जंबू! उस काल, उस समय चंपा नामक नगरी थी, जो राजा कोणिक द्वारा शासित थी। चंपा नगरी के उत्तर पूर्वी दिशा भाग में पूर्णभद्र नामक चैत्य था।

(३)

तत्थ णं माकंदी णामं सत्थवाहे परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं भद्दा णामं भारिया होत्था। तीसे णं भद्दाए अत्तया दुवे सत्थवाहदारया होत्था तंजहा - जिणपालिए य जिणरक्खिए य। तए णं तेसिं मागंदियदारगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था-

भावार्थ - वहाँ (चंपा नगरी में) माकंदी नामक सार्थवाह निवास करता था। वह धन-वैभवशाली यावत् सर्वत्र सम्माननीय था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। उस सार्थवाह के भद्रा की कोख से उत्पन्न जिनपालित और जिनरक्षित नामक दो पुत्र थे। वे माकंदी पुत्र एक दिन जब मिले तो उनमें परस्पर इस तरह वार्तालाप हुआ।

दो सार्थवाह पुत्रों द्वारा समुद्री यात्रा

(४)

एवं खलु अम्हे लवणसमुद्दं पोयवहणेणं एक्कारसवारा ओगाढा सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि णिययघरं हव्वमागया। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! दुवालसमंपि लवण समुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए - त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी।

शब्दार्थ - अणह-समग्गा - सर्वथा निर्विघ्न।

भावार्थ - हम लोगों ने जहाज द्वारा लवण समुद्र पर से ग्यारह बार यात्राएँ की हैं। सभी यात्राओं में हमने अपने लक्ष्य को साधा-धन की प्राप्ति की, करने योग्य कार्य संपादित किए और फिर सर्वथा निर्विघ्न रूप में अपने घर यथा शीघ्र ही लौट आए। कितना अच्छा हो हम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फिर बारहवीं बार लवणसमुद्र पर से पुनः यात्रा करें। यों वार्तालाप कर उन्होंने परस्पर इस बात को स्वीकार किया। अपने माता-पिता के पास आए और उनसे बोले।

(५)

एवं खलु अम्हे अम्मयाओ! एक्कारस वारा तं चेव जाव णिययं घरं हव्वमागया, तं इच्छामो णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा दुवालसमं लवण समुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए। तए णं ते मागंदियदारए अम्मापियरो एवं वयासी - इमे ते जाया! अज्जग जाव परिभाएत्तए, तं अणुहोह ताव जाया! विउले माणुस्सए इड्ढीसक्कार समुदए, किं भे सपच्चवाएणं णिरालंबणेणं लवण समुद्दोत्तारेणं? एवं खलु पुत्ता! दुवालसमी जत्ता सोवसग्गा यावि भवइ, तं मा णं तुब्भे, दुवे पुत्ता! दुवालसमंपि लवण जाव ओगाहेह, मा हु तुब्भं सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ।

शब्दार्थ - **अज्जग** - आर्यक-पिता, **सपच्चवाएणं** - सप्रत्यवाय-विघ्न युक्त, **सोवसग्गा**- उपसर्ग-उपद्रवयुक्त, **वावत्ती** - व्यापत्तिः-विनाश।

भावार्थ - माता-पिता! हम ग्यारह बार निर्विघ्न समुद्र की यात्रा कर यावत् अपने घर यथाशीघ्र आते रहे हैं। अब हम आपसे आज्ञा प्राप्त कर हम बारहवीं बार जहाज द्वारा लवण समुद्र पर से यात्रा करना चाहते हैं।

माकंदी पुत्रों के माता-पिता ने उनसे इस प्रकार कहा - पुत्रो! पिता, पितामह एवं प्रपितामह से तुम्हें विपुल संपत्ति प्राप्त है। तुम सांसारिक ऋद्धि, सत्कार और सम्मान का भोग करो। लवण समुद्र को पार करने से तुम्हें क्या प्रयोजन है, जिसमें विघ्न ही विघ्न हैं, कोई आलंबन नहीं है।

पुत्रो! यह तुम्हारी बारहवीं यात्रा उपद्रव सहित हो सकती है, ऐसी आशंका है। इसलिए तुम बारहवीं बार लवण समुद्र पर से यावत् जहाज द्वारा व्यापारार्थ यात्रा न करो, जिससे तुम्हारे शरीर को कोई कष्ट न हो।

(६)

तए णं (ते) मागंदियदारगा अम्मापियरो दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-एवं खलु अम्हे अम्मयाओ! एक्कारस वारा लवण जाव ओगाहित्तए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यह सुनकर माकंदी पुत्रों ने माता-पिता को दूसरी बार एवं तीसरी बार भी यही कहा-हमने ग्यारह बार निर्विघ्न लवण समुद्र से यात्रा की। हमारी उत्कृष्ट इच्छा है, बारहवीं बार भी यात्रा करें।

(७)

तए णं ते मागंदियदारए अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा ताहे अकामा चेव एयमट्ठं अणुजाणित्था।

शब्दार्थ - **आघवणाहि** - आख्यापन-सामान्य रूप से कथन द्वारा, **पण्णवणाहि** - प्रज्ञापन-विशेष रूप से प्रतिपादन द्वारा, **अणुजाणित्था** - अनुज्ञा दी।

भावार्थ - माता-पिता जब माकंदी पुत्रों को बहुत प्रकार से समझाने बुझाने के बावजूद अपने कथन के साथ सहमत नहीं कर पाए, तब न चाहते हुए भी उन्होंने समुद्री यात्रा हेतु उन्हें आज्ञा दे दी।

(८)

तए णं ते मागंदियदारगा अम्मापिऊहिं अब्भणुण्णाया समाणा गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च जहा अरहण्णगस्स जाव लवण समुद्दं बहूइं जोयण सयाइं ओगाढा। तए णं तेसिं मागंदियदारगाणं अणेगाइं जोयण सयाइं ओगढाणं समाणाणं अणेगाइं उप्पाइय सयाइं पाउब्भूयाइं।

भावार्थ - माता-पिता से अनुमति प्राप्त कर माकंदी पुत्र गणिम, धरिम, मेय एवं परिच्छेद्य रूप चार प्रकार का माल-असबाव जहाज में भरकर अर्हन्नक की तरह लवण समुद्र में सैकड़ों मील आगे बढ़ते रहे। यों उनके अनेक सैकड़ों योजन पार कर लेने पर उत्पाद प्रादुर्भूत हुए।

विकराल तूफान

(९)

तंजहा-अकाले गज्जियं जाव थणियसद्दे कालियवाए तत्थ समुट्ठिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - अकाले गज्जियं - असमय में उठे हुए तूफान-गर्जना।

भावार्थ - अकाल में गर्जना, बिजली चमकना, बादलों की गड़गड़ाहट आदि के रूप में वे उत्पाद उठते गए।

(१०)

तए णं सा णावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी २ संचालिज्जमाणी २ संखोभिज्जमाणी २ सलिलतिक्खवेगेहिं आयट्टिज्जमाणी २ कोट्टिमंसि करतलाहए विव तिंदूसए तत्थेव २ ओवयमाणी य उप्पयमाणी य उप्पयमाणी-विव धरणीयलाओ सिद्धविज्जा विज्जाहरकण्णगा ओवयमाणी विव गगणतलाओ भट्ठविज्जा विज्जाहरकण्णगा विपलायमाणी विव महागरुलवेग वित्तासिया भुयगवरकण्णगा धावमाणी विव महाजणरसियसद्दवित्तत्था ठाणभट्ठा आसकिसोरी णिगुंजमाणी विवगुरुजणदिट्ठावराहा सुयणकुल कण्णगा घुम्ममाणी विव वीचीपहार सयतालिया गलियलंबणा विव गगणतलाओ रोयमाणी विव सलिलगंठिविप्पइरमाण घोरं सुवाएहिं णववहू उवरयभत्तुया विलवमाणी विव पर चक्करायाभिरोहिया परममहब्भयाभिद्दुया महापुरवरी झायमाणी विव कवडच्छोम(ण)पओगजुत्ता जोगपरिव्वाइया णिसासमाणी विव महाकंतार विणिग्गयपरिस्संता परिणयवया अम्मया सोयमाणी विव तवचरण खीणपरिभोगा चयणकाले देववर वहू, संचुण्णिय कट्ठकूवरा भग्गमेढिमोडियसहस्समाला सूलाइयवंक परिमासा फलहंतरतडतडेंतफुट्टंत संधि वियलंतलोहकीलिया सव्वंग-वियंभिया परिसडिय रज्जु विसरंत सव्वगत्ता आमगमल्लगभूया अकयपुण्ण-जणमणोरहो विव चिंतिज्जमाणगुरुई हाहाकयकण्णधारणा वियवाणियगजण कम्मगार विलविया णाणाविहरयण पणिय संपुण्णा बहूहिं पुरिस सएहिं रोयमाणेहिं कंदमाणेहिं सोयमाणेहिं तिप्पमाणेहिं विलवमाणेहिं एगं महं अंतोजलगयं गिरिसिहरमासायइत्ता संभग्गकूवतोरणा मोडियझय दंडा वलयसयखंडिया करकरस्स तत्थेव विद्दवं उवगया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **आहुणिज्जमाणी** - डगमगाती हुई, **आयट्टिज्जमाणी** - बार-बार चक्राकार घूमती हुई, **कोट्टिमंसि** - प्रांगण में, **तिंदूसए** - गेंद, **ओवयमाणीए** - नीचे गिरती हुई, **उप्पयमाणी** - ऊपर उछलती हुई, **सिद्धविज्जा** - विद्या सिद्ध की हुई, **ओवयमाणी** - ऊपर उठती हुई, **भट्ठविज्जा** - विद्या से भ्रष्ट, **विपलायमाणी** - पलायन करती हुई-भागती हुई, **वित्तासिया** - भयभीत, **भुयगवरकण्णगा** - नाग कन्या, **आसकिसोरी** - युवा घोड़ी, **णिगुंजमाणी** - णिगुंजती-अव्यक्त शब्द करती हुई, **दिट्ठावराहा** - जिसका अपराध देख लिया गया हो, **वीचीपहार** - तरंगों के प्रहार से, **तालिया** - ताड़ित, **गलिय** - गलित-नष्ट, **सलिलगंठिविप्पइरमाण** - जल से आर्द्र संधियों से टपकता हुआ जल, **घोरंसुवाएहिं** - दुःख पूर्वक गिरते हुए आंसुओं द्वारा, **उवरयभत्तुया** - भृतपतिका-जिसका पति मर गया हो, **परचक्करायाभिरोहिया** - दूसरे राज्य के राजा द्वारा घेरी हुई, **महब्भयाभिद्दुया** - अत्यंत भय जनित कोलाहल से परिव्याप्त, **महापुरवरी** - बड़ी सुंदर नगरी, **कवडच्छोमप्पओगजुत्ता** - कपट, प्रवंचनापूर्ण प्रयोग युक्त, **जोगपरिव्वाइया** - योग साधनारत संन्यासिनी, **णिसासमाणी**-लम्बे-लम्बे श्वास लेती हुई, **महाकंतार** - घोर-वन, **विणिग्गय-परिस्संता** - चलने से थकी हुई, **परिणयवया** - परिणत वयस्का-वृद्धावस्था युक्त, **सोयमाणी** - शोक करती हुई, **तवचरणखीण परिभोगा** - जिसने तपश्चरण का फल भोग लिया है, **चयणकाले** - देवायुष्य पूर्ण होने पर स्वर्ग से च्युत होने के समय में, **देववरवहू** - उत्तम देवाङ्गना, **संचुण्णियकट्ठकूवरा**-जिसके काष्ठ कूवर-काठ के बने मुख ध्वस्त हो गए थे, **भग्गमेढिमोडिय** - जिसका मेढी-नीचे का आधार स्तंभ तथा मोडिय-ऊपर का आधारभूत भाग भग्न हो गया था, **सूलाइयवंकपरिमासा**-अग्रभाग के टेढ़े होने से यह शूली पर चढ़ी हुई सी प्रतीत होती थी, **फलहंतर** - जुड़े हुए काठ के फलक काष्ठपट्ट, **संधिवियलंत** - जोड़ों के टूट जाने से, **सव्वंगवियंभिया** - समस्त छिन्न-भिन्न अंगों वाली, **परिसडियरज्जु** - जिसकी रस्सियाँ गल गई थीं, **आमगमल्लगभूया** - मिट्टी के कच्चे शिकोरे के समान, **गुरुई** - भारी, **तिप्पमाणेहिं** - आंसू बहाते हुए, **वलय** - काष्ठ खंड, **करकरस्स** - कड़-कड़ शोर करती हुई, **विद्दवं** - विलयं-डूब गई।

भावार्थ - उस आकस्मिक तूफान से वह नौका डगमगाने लगी। इधर-उधर चलित, संक्षुभित होने लगी। डूबने-उतराने लगी। पानी के तीव्र वेग से बार-बार आवर्तित होने लगी। हाथ से पक्के चक्र पर गिराई हुई गेंद की तरह ऊपर-नीचे उछलने लगी। जिसने विद्या सिद्ध की है, ऐसी विद्याधर कन्या की तरह वह तल से ऊपर जाने लगी। जिसकी विद्या भ्रष्ट हो गई हो उस विद्याधर कन्या की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह वह गगनतल से-ऊपर से नीचे गिरने लगी। वेग पूर्वक आते हुए बड़े गरुड़ से वित्रस्त नाग कन्या की तरह वह पलायन-सा करने लगी। जन समूह के कोलाहल से भयत्रस्त, स्थान भ्रष्ट अश्व किशोरी-बछेरी की तरह वह ईधर-उधर मानो दौड़ रही हो। गुरुजनों द्वारा जिसका अपराध देख लिया गया हो, ऐसी कुल कन्या जिस तरह अव्यक्त शब्द करती हुई लजाती है, उस प्रकार झुकने लगी। तरंगों की सैकड़ों टक्करों से प्रताड़ित होकर वह नौका ईधर-उधर इस तरह घूम रही थी, मानों निरालंब होकर गगनतल से गिर पड़ी हो। उसकी ग्रंथियों-संधियों से चूती हुई जल की बूंदें ऐसी लगती थी। मानो मृतपतिका नववधू आँसू टपका रही हो। अन्य राज्य के राजा द्वारा अधिरोहित-घेरी हुई महानगरी की तरह वह अपने भीतर बैठे हुए लोगों के भयजनित शोक-संविग्न विलाप करती हुई सी प्रतीत होती थी। कपट एवं प्रवंचना पूर्ण दूषित योग परिव्राजिका-संन्यासिनी की तरह निःशब्द थी-उसमें स्थित लोग भय से हतप्रभ थे। घन घोर जंगल में चलने से परिशांत वृद्धा स्त्री की तरह वह निःश्वास छोड़ती हुई सी लगती थी। तपश्चरण के क्षय होने से-तज्जनित भोग क्षीण होने से, स्वर्ग से च्युत होती हुई श्रेष्ठ देवांगना की तरह वह मानो शोक कर रही हो। काष्ठ निर्मित उसका मुख भाग चूर्णित-खंड-खंड हो गया था। उसका नीचे का आधार स्तंभ तथा ऊपर का भाग जो सहस्रों लोगों के लिए आधार भूत था, भग्न हो चुके थे। उसके काष्ठ निर्मित पार्श्व भाग टेढे हो गए थे, जिससे वह शूलारोपित सी लगती थीं। लोहे की कीलों से जुड़े हुए काठ के फट्टे तड़-तड़ाकर टूट चुके थे। उसके अंग-प्रत्यंग परस्पर जुड़े हुए विभिन्न भाग विघटित हो गए थे। उसके रस्से गल गए थे और उसके सभी भाग विशीर्ण हो गए थे। पुण्यहीन मनुष्य के मनोरथ की तरह वह चिन्ता के भार से आहत थी। उसके कर्णधार-निर्यामक, नाविक तथा वणिकजन एवं कर्मचारी विलाप कर रहे थे, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के रत्नों, बहुमूल्य पदार्थ एवं विक्रेय सामग्री से परिपूर्ण थे। इसमें बहुत से लोग रुदन, क्रंदन, शोक, अश्रुपात एवं विलाप कर रहे थे। वह जल के अंतवर्ती पर्वत के शिखर से टकराई। उसके स्तंभ, तोरण, ऊपर लगे हुए ध्वज-दण्ड टूट गए थे। परस्पर जुड़े सैकड़ों काष्ठ फलक कड़-कड़ ध्वनि के साथ टूट गए थे। वह नौका वहीं-समुद्र में विलीन हो गई।

काष्ठ-फलक के सहारे माकंदी पुत्र बचे

(११)

तए णं तीए णावाए भिज्जमाणीए (ते) बहवे पुरिसा विपुलपडियभंडमायाए अंतोजलंमि णिमज्जावि यावि होत्था। तए णं ते मागंदियदारगा छेया दक्खा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्तट्ठा कुसला मेहावी णिउणसिप्पोवगया बहुसु पोयवहणसंपराएसु कयकरणा लद्धविजया अमूढा अमूढहत्था एगं महं फलगखंडं आसादेंति।

शब्दार्थ - **भिज्जमाणीए** - भग्न हो जाने पर, **छेया** - चतुर, **पत्तट्ठा** - स्थिति का आकलन करने वाले, **सिप्पोवगया** - तैरने आदि की कलाओं में निष्णात, **कयकरणा** - कार्य कुशल, **लद्धविजया** - समुद्र पार करने में समर्थ, **अमूढहत्था** - तैरने में कुशल और स्फूर्तियुक्त, **आसादेंति** - प्राप्त किया।

भावार्थ - उस नौका के भग्न हो जाने पर बहुत से पुरुष विपुल माल-असबाब सहित जल के भीतर समा गए। माकंदी पुत्र बड़े ही चतुर, दक्ष स्थिति को आंकने वाले, तैरने आदि की कलाओं में निष्णात, जहाज की यात्रा में आने वाले विघ्नों से सामना करने में समर्थ, तैरने में जागरूक और स्फूर्ति युक्त थे। उन्होंने एक बड़ा काठ का फलक प्राप्त कर लिया।

(१२)

जंसिं च णं पएसंसि से पोयवहणे विवण्णे तंसि च णं पएसंसि एगे महं रयणद्दीवे णामं दीवे होत्था अणेगाइं जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अणेगाइं जोयणाइं परिक्खेवेणं णाणादुमसंडमंडिउद्देसे सस्सिरीए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तस्स णं बहुमज्झदेसभाए तत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए होत्था अब्भुग्गयमूसिय जाव सस्सिरी(भू)यरूवे पासाईए ४।

शब्दार्थ - **पएसंसि** - प्रदेश में, स्थान में, **विवण्णे**- विपन्न-भग्न, **णाणादुमसंडमंडिउद्देसे**- अनेक प्रकार के वृक्षों के वनों से सुशोभित, **अब्भुग्गयमूसिय** - अत्यंत ऊँचा उठा हुआ।

भावार्थ - जिस जगह जहाज नष्ट हुआ था, वहीं रत्न द्वीप नामक बड़ा द्वीप था। वह अनेक योजन लंबा-चौड़ा और अनेक योजन विस्तीर्ण था। वह अनेक प्रकार के वृक्षयुक्त वनों से सुशोभित और सुंदर था, बड़ा ही दर्शनीय और रमणीय था। उसके बीचों-बीच विशाल, उत्तम प्रासाद था। वह अत्यंत ऊंचा था यावत् अत्यंत शोभायुक्त, उल्लासप्रद, अति सुंदर आकार युक्त था।

(१३)

तत्थ णं पासायवडेंसए रयणदीवदेवया णामं देवया परिवसइ पावा चंडा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुद्दा खुद्दा साहसिया। तस्स णं पासायवडेंसयस्स चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा किण्हा किण्होभासा।

शब्दार्थ - **पावा** - पापिनी, **खुद्दा** - क्षुद्र-तुच्छ स्वभाव युक्त।

भावार्थ - उस सुंदर प्रासाद में रत्नद्वीप देवता नामक देवी रहती थी, जो पापपूर्ण, प्रचण्ड, रौद्र, क्षुद्र, दुस्साहसपूर्ण स्वभाव युक्त थी। उस उत्तम प्रासाद के चारों ओर चार वनखंड थे, जो वृक्षावली की सघनता के कारण श्याम आभा लिए हुए थे।

माकंदी पुत्रों द्वारा रत्नद्वीप में प्रवेश

(१४)

तए णं ते मागंदियदारगा तेणं फलयखंडेणं उवुज्झमाणा २ रयणदीववंतेणं संवुढा यावि होत्था।

शब्दार्थ - **उवुज्झमाणा** - उतराते, तैरते हुए, **संवुढा** - पहुँचे।

भावार्थ - तदनंतर वे माकंदीपुत्र उस काठ फलक के सहारे तैरते-उतराते रत्नद्वीप पर पहुँच गए।

(१५)

तए णं ते मागंदियदारगा थाहं लभंति २ त्ता मुहुत्तंतरं आससंति २ त्ता फलगखंडं विसज्जेंति २ त्ता रयणदीवं उत्तरंति २ त्ता फलाणं मग्गण गवेसणं करेंति २ त्ता फलाइं गेण्हंति २ त्ता आहारेंति २ त्ता णालिएराणं मग्गणगवेसणं करेंति २ त्ता णालिएराइं फोडेंति २ त्ता णालिएरतेल्लेणं अण्णमण्णस्स गायाइं अब्भंगेंति २ त्ता पोक्खरणीओ ओगाहिंति २ त्ता जलमज्जणं करेंति २ त्ता जाव पच्चुत्तरंति २ त्ता पुढविसिलापट्टयंसि णिसीयंति २ आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया चंपा णयरिं अम्मापिउआपुच्छणं च लवणसमुद्दोत्तारणं च कालियवाय समुत्थणं च पोयवहणविवत्तिं च फलयखंडस्स आसायणं च रयणदीवुत्तारं च अणुचिंतेमाणा २ ओहयमण संकप्पा जाव झियायेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **आससंति** - विश्राम करते हैं, **थाहं** - टिकाव की जगह, **णालिएराणं** - नारियलों का, **पच्चुत्तरंति** - बाहर निकलते हैं।

भावार्थ - तदनंतर माकंदी पुत्रों ने समुद्र का तट-टिकाव का स्थान प्राप्त किया। मुहूर्त्त भर वहाँ विश्राम किया। काठ के फलक का विसर्जन किया। रत्नद्वीप में उतरे। फलों की खोज की, उन्हें प्राप्त कर खाया। फिर नारियलों की खोज की। उन्हें प्राप्त कर, फोड़ कर तेल निकाला तथा एक दूसरे के शरीर पर मालिस की। तदनंतर वापी में उतरे, स्नान किया यावत् बाहर निकले, पृथ्वी शिला पट्टक पर बैठे। आश्वस्त-विश्वस्त होकर सुखासन में पालथी मार कर बैठे हुए, चंपा नगरी, माता-पिता से यात्रा का आदेश, लवण समुद्र का उत्तरण, आकस्मिक तूफान का उठना, जहाज का नष्ट हो जाना, काष्ठफलक का प्राप्त होना, रत्नद्वीप पर उतरना - यह सब सोचते हुए अपने मन संकल्प को भग्न जानकर यावत् चिंतामग्न हो गए।

भयभीत माकंदी-पुत्र भोग-विवश

(१६)

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदियदारए ओहिणा आभोएइ आभोएत्ता असिफलगवग्गहत्था सत्तट्ठतलप्पमाणं उड्ढं वेहासं उप्पयइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणी २ जेणेव मागंदिय दारए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आसुरुत्ता (ते) मागंदियदारए खरफरुसणिट्ठुरवयणेहिं एवं वयासी-

शब्दार्थ - **फलग** - ढाल, **वग्ग** - चंचल, **उप्पयइ** - उड़ती है।

भावार्थ - तब उस रत्नद्वीप देवी ने अवधिज्ञान का उपयोग कर माकंदी पुत्रों को देखा। हाथ में तलवार लहराते हुए, ढाल लिए सात आठ ताड़ वृक्ष जितनी ऊँचाई पर आकाश में उड़ी। उत्कृष्ट देव गति से यावत् चलती-चलती जहाँ मांकंदी पुत्र थे, वहाँ आई। अत्यंत क्रोध के साथ कठोर, निष्ठुर शब्दों में बोली।

(१७)

हं भो माकंदिय दारया! अपत्थियपत्थिया! जइ णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरइ तो भे अत्थि जीवियं, अहण्णं तुब्भे मए सद्धिं

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

विउलाइं० णो विहरह तो भे इमेणं णीलुप्पलगवलगुलिय जाव खुरधारेणं असिणा रत्तगंडमंसुयाइं माउयाहिं उवसोहियाइं तालफलाणीव सीसाइं एगंते एडेमि।

शब्दार्थ - **रत्तगंड** - लाल कपोल, **मंसुयाइं** - मूंछें, **माउयाहिं** - माताओं द्वारा, **उवसोहियाइं** - सज्जित किए जाते रहे, **एडेमि** - फेंक देती हूँ।

भावार्थ - मौत को चाहने वाले माकंदी पुत्रो! यदि तुम मेरे साथ विपुल भोग भोगते हुए रहते हो तो तुम जीवित रह पाओगे, मैं इस नीलकमल, भैंसे के सींग, नील की टिकिया तथा अलसी के पुष्प के समान, तीक्ष्ण धार युक्त तलवार से तुम्हारे लाल कपोल और काली मूछों से युक्त मस्तक, जिन्हें तुम्हारी माताएं सुशोभित करती रही हैं, ताड़ के फलों की तरह काटकर एकांत में फेंक दूँगी।

देवी के वासना पूर्ण आदेश का स्वीकार

(१८)

तए णं ते मागंदियदारगा रयणदीव देवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म भीयाकरयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-जण्णं देवाणुप्पिया! वइस्सइ तस्स आणाउववायवयणणिद्देसे चिट्ठिस्सामो।

शब्दार्थ - **आणा** - आज्ञा, **उववाय** - उपपात - सेवा।

भावार्थ - रत्नद्वीप देवी द्वारा कही गई यह बात सुन कर माकंदी पुत्र भयभीत हो गए। उन्होंने हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि बांध कर कहा - देवानुप्रिय! जैसा आप कहेंगी हम वैसे ही आपकी आज्ञा मानेंगे, सेवा करेंगे और आपके निर्देशानुसार रहेंगे।

(१९)

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदियदारए गेण्हइ २ त्ता जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता असुभपोग्गलावहारं करेइ २ त्ता सुभपोग्गलपक्खेवं करेइ २ त्ता (तओ) पच्छा तेहिं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ कल्लाकल्लिं च अमय फलाइं उवणेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - रत्नद्वीप देवी ने माकंदी पुत्रों को अपने साथ लिया और अपने उत्तम प्रासाद में आई। उसने उनके अशुभ पुद्गलों का अपहार किया तथा शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप किया। वैसा कर वह उनके साथ विपुल भोग भोगती हुई रहने लगी। वह प्रतिदिन उन्हें अमृत तुल्य मधुर फल देने लगी।

(२०)

तए णं सा रयणदीवदेवया सक्कवयणसंदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा लवणसमुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टियव्वे त्ति जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइं पूइयं दुरभिगंधमचोक्खं सव्वं आहुणिय २ तिसत्तखुत्तो एगंते एडेयव्वं तिकट्टु णिउत्ता।

शब्दार्थ - **तिसत्तखुत्तो** - इक्कीसवार, **आहुणिय** - हटाकर, **एडेयव्वं** - फेंक देना है।

भावार्थ - तदनंतर शक्रेन्द्र के आदेश से लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित नामक देव ने रत्नदीप देवी से कहा कि तुम्हें लवण समुद्र का इक्कीस बार चक्कर लगाते हुए वहाँ जो भी घास, पत्ता, काष्ठ, कचरा, अपवित्र, दुर्गन्धित वस्तु आदि हो, उसे इक्कीस बार भली भांति निकाल कर एक तरफ डलवा देना है। इस प्रकार वह देवी समुद्र की सफाई के लिए नियुक्त की गई।

देवी का माकंदी पुत्रों को आदेश

(२१)

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदियदारए एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! सक्कवयणसंदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा तं चेव जाव णिउत्ता। तं जाव अहं देवाणुप्पिया! लवणसमुद्दे जाव एडेमि ताव तुब्भे इहेव पासायवडेंसए सुहं सुहेणं अभिरममाणा चिट्ठह। जइ णं तुब्भे एयंसि अंतरंसि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे पुरत्थिमिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह।

शब्दार्थ - **उप्पुया** - मनोरंजन हेतु उत्कंठित।

भावार्थ - रत्नद्वीप देवी ने माकंदीपुत्रों से कहा-देवानुप्रियो! शक्रेन्द्र के आदेश से लवण समुद्राधिपति सुस्थित देव ने यावत् मुझे लवण समुद्र की सफाई के लिए नियुक्त किया है। मैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ जा रही हूँ। जब तक मैं नहीं आऊँ, तब तक तुम उत्तम प्रासाद में मन बहलाते हुए, सुख पूर्वक रहो। इस बीच यदि तुम उद्विग्न हो जाओ, मनोरंजन की उत्कंठा हो तो पूर्व दिशा में विद्यमान वन खण्ड में चले जाना।

(२२)

तत्थ णं दो उऊ सयासाहीणा, तंजहा-पाउसे य वासारत्ते य। तत्थ उ-
कंदल-सिलिंध-दंतो णिउरवरपुप्फपीवरकरो।
कुडयज्जुणणीव सुरभिदाणो, पाउसउऊगयवरो साहीणो॥१॥
तत्थ य -
सुरगोवमणि विचित्तो, दद्दुरकुलरसिय - उज्झररवो।
बरहिणविंद परिणद्ध सिहरो, वासारत्तोउउ पव्वओ साहीणो॥२॥

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बहुसु वावीसु य जाव सरसरपंतियासु बहुसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य जाव कुसुमघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा विहरेज्जाह।

शब्दार्थ - **साहीणा** - स्वाधीन-विद्यमान, **कंदल** - अभिनव लता, **सिलिंध** - वर्षा ऋतु में धरती को फोड़कर निकलने वाला विशेष पौधा, **णिउर** - निकुर संज्ञक वृक्ष के उत्तम पुष्प, **पीवरकरो** - परिपुष्ट सूंड, **सुरगोव** - इन्द्रगोप-वीर बहूटी-वर्षा ऋतु में होने वाला लाल कीट, **दद्दुर** - मेंढक, **रसिय** - शब्द, **बरहिणविंद** - मयूर समूह, **आलीघरएसु** - वृक्ष विशेष के मण्डपों में, **मालीघरएसु** - लता मण्डपों में।

भावार्थ - वहाँ दोनों ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती हैं। जैसे प्रावृट-आषाढ़-श्रावण और वर्षा ऋतु-भाद्रपद-आश्विन। उसमें प्रावृट रूपी हाथी सुंदर रूप में विद्यमान है। नवीन लताएँ तथा सिलिन्ध्र उस हाथी रूपी प्रावृट के दांत हैं। निकुर वृक्ष के सुंदर पुष्प ही मानो उसकी परिपुष्ट सुंदर सूँड है। कुटज, अर्जुन एवं नीप वृक्ष के पुष्पों की सुगंधि ही उसका मदजल है। वह वर्षा ऋतु रूपी पर्वत वीर बहूटियों रूपी मणियों से विचित्र प्रतीत होता है। यह वर्षा रूपी पर्वत मेंढकों के समूह की आवाज रूपी निर्झर ध्वनि से युक्त है। मयूर समूह से इसके शिखर परिव्याप्त है। यह अपने स्वरूप में भली भाँति व्यक्त है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवानुप्रियो! तुम बहुतसी वापियों, सरोवरों, वृक्ष मण्डपों, लता मण्डपों और पुष्पाच्छन्न मण्डपों में सुखपूर्वक मनोरंजन करते हुए, वहाँ रहो।

(२३)

जइ णं तुब्भे एत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भविज्जाह तो णं तुब्भे उत्तरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा तंजहा - सरदो य हेमंतो य।

तत्थ उ सणसत्तिवण्णकउ(हो)ओ णीलुप्पलपउमणलिणसिंगो।
सारस चक्कवायरवियघोसो सरयउऊ-गोवई साहीणो॥ १॥
तत्थ य सियकुंदधवलजोण्हो कुसुमियलोद्धवण संडमंडल तलो।
तुसारदग-धारपीवरकरो हेमंत उऊ ससी सया साहीणो॥ २॥

शब्दार्थ - **सण** - वल्कल प्रधान वनस्पति विशेष, **सत्तिवण्ण** - सप्तवर्ण नामक वनस्पति विशेष, **कउओ** - स्कंध का उन्नत भाग, **गोवई** - वृषभ-साँड, **जोण्हो** - ज्योत्स्ना, **मंडलतल**- प्रतिबिंब, **तुसार** - हिमकण, **दगधारा** - जलधारा, **पीवरकरो** - परिपुष्ट, उज्ज्वल किरणें, **हेमंत उऊ ससी** - हेमंत ऋतु का चंद्रमा।

भावार्थ - यदि तुम वहाँ ऊब जाओ, उद्विग्न हो जाओ, मनोरंजन हेतु तुम्हारे में और उत्कंठा जगे तो तुम उत्तर दिशावर्ती वन खंड में चले जाना। वहाँ शरद और हेमंत-दोनों ऋतुएँ एक साथ विद्यमान रहती हैं।

यहाँ शरद ऋतु का वृषभ के रूपक से वर्णन है। सन्न और सप्तपर्ण ही मानो उसका ऊँचा स्कंध भाग है। शरद ऋतु में विकसित होने वाले नीलोत्पल ही उसके सींग है। सारस और चक्रवाकों का गुंजन ही जिसका गर्जन है। वह शरद ऋतु रूपी वृषभ स्वाधीन है, अपने स्वरूप में विद्यमान है।

यहाँ हेमंत ऋतु का चंद्रमा के रूपक से वर्णन किया गया है -

सफेद कुंद के पुष्प ही जिसकी धवल, श्वेत ज्योत्स्ना है। खिले हुए लोध्र वनखण्ड ही जिसका प्रतिबिंब है। हिमकण युक्त बहती हुई जलधारा ही जिसकी द्युतिमय सघन किरणे हैं। ऐसा हेमंत ऋतु रूपी चन्द्रमा अपने स्वरूप से वहाँ सदैव विद्यमान रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२४)

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! वावीसु य जाव विहरेज्जाह।

भावार्थ - देवानुप्रियो! तुम वहाँ वापियों में यावत् सरोवरों में स्नानादि करते हुए, मनोरंजन करते रहना।

(२५)

जइ णं तुब्भ तत्थ वि उव्विग्गा जाव उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे अवरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा तंजहा - वसंते य गिम्हे य। तत्थ उ सहकार चारुहारो किंसुयकण्णियारासोगमउडो। ऊसियतिलग-बउलायवत्तो वसंत उऊ-णरवई साहीणो॥१॥

तत्थ य पाडलसिरीससलिलो मलियावासंतियधवलवेलो।

सीयलसुरभि अणिलमगरचरिओ गिम्हउऊसागरो साहीणो॥ २॥

शब्दार्थ - **अवरिल्लं** - पश्चिम दिशावर्त्ती, **सहकार** - आम, **आयवत्तो** - छत्र।

भावार्थ - यदि तुम्हारा वहाँ भी मन न लगे यावत् अन्यत्र मनोविनोद की उत्कंठा हो तो तुम पश्चिम दिशावर्ती वनखंड में चले जाना। वहां ग्रीष्म और बसंत-दोनों ऋतुएँ विद्यमान रहती हैं।

बसंत ऋतु को यहां राजा के रूपक से वर्णित किया गया है - आम्र की मंजरियाँ ही इसके सुंदर हार हैं। किंसुक-पलाश, कर्णिकार एवं अशोक के पुष्प इसका मुकुट है। ऊँचे तिलक वृक्ष एवं बकुल वृक्ष इसके ऊँचे छत्र हैं। ऐसा बसंत ऋतु रूपी राजा वहाँ सर्वदा सुशोभित है।

यहाँ ग्रीष्म ऋतु का सागर के रूपक द्वारा वर्णन किया गया है -

गुलाब और सरसों के पुष्प ही जिसका जल है। मल्लिका और वासन्तिकी नामक लताएँ जिसकी निर्मल, उज्ज्वल तटभूमि है। शीतल तथा सुगंधित पवन ही जहाँ मगरों का संचलन है। ऐसा ग्रीष्म ऋतु रूपी सागर वहाँ सदैव अपने रूप में विद्यमान रहता है।

(२६)

तत्थ णं बहूसु जाव विहरेज्जाह। जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! तत्थ वि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उव्विग्गा (वा) उस्सुया (वा उप्पुया वा) भवेज्जाह तओ तुब्भे जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छेज्जाह ममं पडिवालेमाणा २ चिट्ठेज्जाह। मा णं तुब्भे दक्खिणिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं महं एगे उग्गविसे चंडविसे घोरविसे अइकाय महाकाए जहा तेयणिसग्गे मसिमहिसमूसाकालए णयण विसरोसपुण्णे अंजण पुंजणियरप्पगासे रत्तच्छे जमलजुयल चंचलचलंत जीहे धरणियल वेणिभूए उक्कडफुडकुडिल जडिल कक्खडवियडफडाडोवकरणदच्छे लोगाहार धम्ममाण-धमधमेंत घोसे अणागलिय चंडतिव्वरोसे समुहिंतुरियं चवलं धमधमंत दिट्ठी विसे सप्पे य परिवसइ। मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ।

शब्दार्थ - **वेणिभूए** - वेणीभूत-केशपाश के सदृश, **उक्कड** - उत्कट-अत्यधिक शक्तिमान, **फुड** - स्फुट-प्रकट, **कुडिल** - कुटिल, **जडिल** - जटा-सिंह के अयाल जैसे बालों से युक्त, **वियड** - विकट, **फडाडोव** - फण को फैलाने में दक्ष, **अणागलिय** - अनाकलित-अपरिमित, **समुहिं** - कुत्ते के भौंकने के तुल्य, **वावत्ती** - विशेष संकट।

भावार्थ - तुम वहाँ अनेक वापी, तड़ाग आदि में मनोरंजन करते रहना। यदि तुम्हारा वहाँ मन न लगे तथा और मनोरंजन की आवश्यकता हो तो तुम मेरे उत्तम प्रासाद में आ जाना, मेरी प्रतीक्षा करते रहना, दक्षिणी ओर के वनखंड में मत जाना। वहाँ एक उग्र, प्रचण्ड घोर महा विष युक्त विशालकाय साँप रहता है। उसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है -

वह कज्जल, भैंसा, कसौटी के पत्थर के समान काला है। इसकी दोनों आँखें विष से भरी है। अंजन-राशि के समान यह कृष्ण आभा युक्त है। उसकी दोनों जिह्वाएँ चंचल हैं, बार-बार बाहर निकलती रहती हैं। अत्यंत काला होने से ऐसा लगता है मानो पृथ्वी रूपी नारी की काला केशपाश हो। वह बड़ा ही भयंकर, कुटिल, कर्कश और फण करने में दक्ष हैं। सिंह के अयाल के समान उसके बाल निकले हुए हैं। लुहार की धौंकनी के सदृश उसका घोष है। वह अपरिमित, प्रचण्ड, तीव्र रोष युक्त है। जल्दी-जल्दी, चपलता पूर्वक भौंकने-गुर्राने वाले कुत्ते की तरह इसकी फुंकार की गुरगुराहट है। उसकी दृष्टि में सदा विष जाज्वल्यमान रहता है। ऐसा साँप उस वनखंड में निवास करता है। इसलिए तुम दोनों वहाँ मत जाना, अन्यथा तुम संकट में पड़ जाओगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२७)

ते मागंदियदारए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ २ त्ता वेउव्विय समुग्घाएणं समोहण्णइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए लवण समुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टेउं पयत्ता यावि होत्था।

भावार्थ - उसने माकंदी पुत्रों को दूसरी बार, तीसरी बार यह बात कही, समझाई। ऐसा कर उसने वैक्रिय समुद्घात से विकुर्वणा की एवं उत्कृष्ट देवगति से लवण समुद्र का इक्कीस बार अनुपर्यटन करने में प्रवृत्त हो गई।

माकंदी पुत्रों द्वारा तीन वन-खंडों में मनोरंजन

(२८)

तए णं ते मागंदियदारया तओ मुहुत्तंतरस्स पासायवडेंसए सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! रयणदीवदेवया अम्हे एवं वयासी - एवं खलु अहं सक्कवयणसंदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा जाव वावत्ती भविस्सइ। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! पुरत्थिमिल्ले वणसंडं गमित्तए अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तत्थ णं वावीसु य जाव आलीघरएसु य जाव विहरंति।

शब्दार्थ - **सइं** - स्मृति, **रइं** - रति-आह्लाद, **धिइं** - धृति-स्थिरता।

भावार्थ - देवी के चले जाने पर माकंदी पुत्र उस सुंदर प्रासाद में मुहूर्त्तभर में ऊब गए। उसमें उन्हें न कोई रहने में आनंद आया और न उनका वहाँ मन ही टिका। अतः वे आपस में विचार करने लगे - देवानुप्रिय! रत्नद्वीप देवी ने हमें यह कहा कि शक्रेन्द्र के आदेश से लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव ने मुझे लवण समुद्र की सफाई का काम सौंपा है यावत् तुम दक्षिणी वनखंड में मत जाना। वहाँ तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जाएंगे। इसलिए देवानुप्रिय! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है, हम पूर्व दिशावर्ती वनखंड में जाएँ। यों परस्पर विचार कर उन्होंने ऐसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वीकार किया, निर्णय किया। वे पूर्वदिशावर्ती वनखंड में गए। वहाँ जाकर वापियों में यावत् सरोवरों में स्नानादि किया, वृक्ष कुंजों में यावत् लता कुंजों में रमण करते हुए कुछ समय रहे।

(२९)

तए णं ते मागंदियदारगा तत्थ वि सइं वा जाव अलभमाणा जेणेव उत्तरिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तत्थ णं वावीसु य आलीघरएसु य विहरंति।

भावार्थ - माकंदी पुत्रों को वहाँ भी सुख, शांति और प्रीति अनुभूत नहीं हुई। तब वे उत्तरदिशावर्ती वनखंड में गए। वहाँ जाकर बावड़ियों में स्नान किया यावत् लता मण्डपों में विहार किया।

(३०)

तए णं ते मागंदियदारया तत्थ वि सइं वा जाव अलभमाणा जेणेव पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाव विहरंति।

भावार्थ - जब वहाँ भी उनको कोई आनंद, उल्लास या प्रसन्नता का अनुभव नहीं हुआ। तब वे पश्चिम दिशावर्ती वनखंड में गए। वहाँ जाकर यावत् पूर्ववत् मनोरंजन पूर्वक विहार करने लगे।

(३१)

तए णं ते मागंदियदारगा तत्थवि सइं वा जाव अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे रयणदीवदेवया एवं वयासी - एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! सक्कस्स वयणसंदेसेणं सुट्ठिएण लवणाहिवइणा जाव मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु अम्हं दक्खिणिल्लं वणसंडं गमित्तए - त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - पश्चिमी वनखंड में विहार करते हुए माकंदी पुत्र चैतसिक शांति यावत् आत्म-परितुष्टि प्राप्त नहीं कर पाए। इसलिए वे परस्पर यों बात करने लगे। रत्नद्वीप देवी ने हमें यह कहा था कि शक्रेन्द्र के आदेश से लवणाधिपति सुस्थित देव द्वारा उसे सफाई के लिए नियुक्त किया गया है यावत् तुम दक्षिणी वनखंड में मत जाना। वहाँ जान खतरे में पड़ सकती है। इसमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई न कोई रहस्यभूत कारण होना चाहिए। इसलिए दक्षिणी वनखंड में जाना हमारे लिए श्रेयस्कर होगा-अच्छा होगा। यों सोचकर उन्होंने वहाँ जाने का निर्णय किया। तदनुसार वे दक्षिणी वनखंड की ओर रवाना हुए।

दक्षिणी वन खंड का रहस्योद्घाटन

(३२)

तए णं गंधे णित्ताइ से जहाणामए अहिमडेइ वा जाव अणिट्ठतराए चेव।

तए णं ते मागंदियदारया तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं २ उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति २ त्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव उवागया।

भावार्थ - ज्यों ही वे आगे बढ़े, दक्षिण दिशा की ओर से वेगपूर्वक दुर्गंध आने लगी। वह दुर्गंध मृत सर्प यावत् भेड़िए आदि के मृत शरीर की दुर्गंध से भी अधिक अनिष्ट-अप्रिय थी।

माकंदी पुत्रों ने उससे घबराकर अपने-अपने उत्तरीयों से अपनी नासिका ढकी। वैसा कर वे दक्षिणी वनखंड की ओर गए।

(३३)

तत्थ णं महं एगं आघयणं पासंति अट्ठियरासिसयसंकुलं भीमदरिसणिज्जं एगं च तत्थ सूलाइयं पुरिसं कलुणाइं कट्ठाइं विस्सराइं कुव्वमाणं पासंति २ त्ता भीया जाव संजायभया जेणेव से सूलाइए पुरिसे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! कस्स आघयणे तुमं च णं के कओ वा इहं हव्वमागए केण वा इमेयारूवं आवयं पाविए?

शब्दार्थ - आघायण - आघातन-वधस्थान, **विस्सराइं** - विकृत ध्वनि युक्त, **आवयं**- आपद-संकट।

भावार्थ - उन्होंने वहाँ एक बड़ा वध स्थान देखा। जो सैकड़ों हड्डियों के ढेर से व्याप्त था। देखने में बड़ा ही भयंकर प्रतीत होता था। वहीं पर उन्होंने शूली पर चढ़ाए हुए पुरुष को देखा, जो करुण, विकृत स्वर युक्त, कष्ट पूर्ण शब्दों में विलाप कर रहा था। उसे देख कर वे डर गए यावत् भयभीत हो गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ शूलारोपित पुरुष था, वहाँ गए और बोले-'देवानुप्रिय! यह किसका वध स्थान है? तुम कौन हो? यहाँ कैसे आए? और किसने तुम्हें इस संकट में डाला?'

(३४)

तए णं से सूलाइए पुरिसे (ते) मागंदियदारए एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! रयणदीवदेवयाए आघयणे। अहं णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ कागंदीए आसवाणियए विपुल पणियभंडमायाए पोयवहणेणं लवण समुद्दं ओयाए। तए णं अहं पोयवहण विवत्तीए णिब्बुड्डुभंडसारे एगं फलगखंडं आसाएमि। तए णं अहं उवुज्झमाणे २ रयणदीवंतेणं संवूढे। तए णं सा रयणदीवदेवया ममं ओहिणा पासइ २ त्ता ममं गेण्हइ २ त्ता मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। तए णं सा रयणदीवदेवया अण्णया कयाइ अहालहुसगंसि अवराहंसि परिकुविया समाणी ममं एयारूवं आवयं पावेइ तं ण णज्जइ णं देवाणुप्पिया! तुम्हं पि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ?

शब्दार्थ - **आसवाणियए** - घोड़ों के व्यापारी, **ओयाए**- अवगाहन किया, **अहालहुसगंसि**- छोटे से, **अवराहंसि** - अपराध पर।

भावार्थ - शूलारोपित पुरुष ने माकंदी पुत्रों को इस प्रकार कहा - देवानुप्रियो! रत्नद्वीप देवी का यह वध स्थान है। मैं जंबूद्वीप के अंतर्गत भारत वर्ष में काकंदी नामक नगरी का घोड़ों का व्यापारी हूँ। मैं वहाँ से विपुल मात्रा में विक्रेय सामग्री जहाज पर लाद कर लवण समुद्र पर उतरा। वहाँ मेरा जहाज संकट में पड़ गया। सारी सामग्री डूब गई। एक काष्ठ फट्टा मेरे हाथ आ गया। मैं उस पर तैरता-उतराता रत्नद्वीप पर पहुँच गया। रत्नद्वीप देवी ने अवधि अज्ञान (विभंग ज्ञान) से मुझे देखा और अपने साथ ले गई। मेरे साथ उसने विपुल काम-भोगों को भोगा। एक बार मेरे थोड़े से अपराध पर वह बहुत क्रोधित हो उठी और मुझे इस घोर संकट में डाल दिया। इसलिए देवानुप्रियो! न जाने तुम्हारे शरीर पर भी कब कौनसी आपत्ति आ पड़े, मैं *यही सोच रहा हूँ।*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३५)

तए णं ते मागंदियदारगा तस्स सूलाइयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म बलियतरं भीया जाव संजायभया सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी-कहं णं देवाणुप्पिया! अम्हें रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं णित्थरिज्जामो?

शब्दार्थ - साहत्थिं - सही-सलामत, णित्थरिज्जामो - छुटकारा।

भावार्थ - माकंदी पुत्र उस शूली पर चढे पुरुष का वृत्तांत सुनकर अत्यधिक भयभीत हो गए यावत् घबरा उठे। वे उस पुरुष से बोले - देवानुप्रिय! क्या हम रत्न द्वीप देवी के हाथों से सही-सलामत छुटकारा पा सकते हैं?

छुटकारे का उपाय

(३६)

तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंदियदारगे एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया! पुरत्थिमिल्ले वणसंडे सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे सेलए णामं आसरूवधारी जक्खे परिवसइ। तए णं से सेलए जक्खे चोद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु आगयसमए पत्तसमए महया २ सद्देणं एवं वदइ - कं तारयामि? कं पालयामि?

भावार्थ - शूलारोपित पुरुष ने माकंदी पुत्रों से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! पूर्व दिशा वन खंड में शैलक यक्ष का आयतन-स्थान है। अश्व रूप धारी शैलक नामक यक्ष वहाँ रहता है।

वह शैलक यक्ष चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा का समय आने पर अत्यंत ऊँचे स्वर से यों कहता है - 'किसे तारूँ, किसे रक्षित करूँ?'

(३७)

तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! पुरत्थिमिल्लं वणसंडं सेलगस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणियं करेह २ त्ता जण्णुपायवडिया पंजलिउडा विणएणं पज्जुवासमाणा विहर(चिट्ठ)ह। जाहे णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वएज्जा-कं तारयामि? कं पालयामि? ताहे तुब्भे (एवं) वयह-अम्हे तारयाहि, अम्हे पालयाहि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेलए भे जक्खे परं रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं णित्थारेज्जा। अण्णहा भे य याणामि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ।

शब्दार्थ - जण्णुपायवडिया - घुटने टेक कर।

भावार्थ - देवानुप्रियो! तुम पूर्व दिशावर्ती वन खण्ड में शैलक यक्ष की अत्यधिक भाव पूर्वक पुष्पों से अर्चना करो। घुटने टेक कर हाथ जोड़ कर वहाँ पर्युपासना में निरत रहो। जब शैलक यक्ष समय आने पर - यथा समय ऐसा कहे - 'किसको तारूँ, किसकी रक्षा करूँ', तब तुम कहना-'हमें तारो, हमारी रक्षा करो।' शैलक यक्ष ही रत्नद्वीप देवी के हाथ से तुम्हें सही-सलामत बचा सकेगा। नहीं तो कौन जाने, तुम्हारे शरीर का क्या हाल हो?

विवेचन - सूलीगत पुरुष को सूली पर चढ़ाये जाने के बाद ही शैलक यक्ष के द्वारा रक्षा किये जाने के उपाय का पता लगा हो अथवा पहले उपाय का पता पड़ जाने पर भी मोह के कारण स्वयं के लिए उपाय की आवश्यकता नहीं समझ कर रक्षा का उपाय नहीं किया हो और बाद में देवी के रूष्ट हो जाने पर रक्षा के उपाय को नहीं कर सका हो अतः नहीं किया, ऐसा मालूम पड़ता है।

(३८)

तए णं ते मागंदियदारगा तस्स सूलाइयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सिग्घं चंडं चवलं तुरियं वेइयं जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पोक्खरिणिं ओगाहें(गाहं)ति २ त्ता जलमज्जणं करेंति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव गेण्हंति २ त्ता जेणेव सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता आलोए पणामं करेंति २ त्ता महरिहं पुप्फच्चणियं करेंति २ त्ता जण्णुपायवडिया सुस्सूमाणा णमंसमाणा पज्जुवासंति।

भावार्थ - माकंदीपुत्र शूलारोपित पुरुष से यह सुनकर समझ कर शीघ्र ही बहुत तेज, चंचल, वेग युक्त गति से पूर्वी वनखंड में पहुँचे। वहाँ स्थित पुष्करिणी में उतरे, स्नान किया। वहाँ जो कमल यावत् जो पुष्प मिले, उन्हें लिया। लेकर शैलक यक्ष के आयतन में आए। आयतन को देखते ही प्रणाम किया। फूलों से अति भाव पूर्वक अर्चना की, जमीन पर घुटने टिकाकर यक्ष की पर्य्युपासना करने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्धार की अभ्यर्थना और शर्त

(३६)

तए णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वयासी-कं तारयामि? कं पालयामि? तए णं ते मागंदियदारगा उट्ठाए उट्ठेंति करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-अम्हे तारयाहि अम्हे पालयाहि। तए णं से सेलए जक्खे ते मागंदियदारए एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! तुब्भं मए सद्धिं लवण समुद्देणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणाणं सा रयणदीवदेवया पावा चंडा रुद्दा साहसिया बहूहिं खरएहि य मउएहि य अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य सिंगारेहि य कलुणेहि य उवसग्गे य उवसग्गं करेहिइ। तं जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं आढाह वा परियाणह वा अवयक्खह वा तो भे अहं पिट्ठाओ विधुणामि। अह णं तुब्भे रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं णो आढाह णो परियाणह णो अवयक्खह तो भे रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं णित्थारेमि।

शब्दार्थ - अणुलोमेहिं - मनोनुकूल, **पडिलोमेहि** - प्रतिकूल, **आढाह** - आदर दोगे, **परियाणह** - जानोगे-मानोगे, **अवयक्खह** - ध्यान दोगे, **विधुणामि** - गिरा दूँगा।

भावार्थ - यथा समय शैलक यक्ष वहाँ आया और आवाज लगाई। किसका उद्धार करूँ, किसकी रक्षा करूँ? तब माकंदी पुत्र उठे, उठ कर हाथ जोड़े, मस्तक झुकाए यों कहा - 'हमें तारो, हमारी रक्षा करो।'

इस पर शैलक यक्ष माकंदी पुत्रों से बोला - 'देवानुप्रियो! जब तुम मेरे साथ लवण समुद्र के बीचों-बीच होते हुए गुजरोगे तब रत्नद्वीप देवी, जो पापिनी प्रचण्ड रौद्र, क्षुद्र और दुस्साहसिनी है, बहुत से कठोर, कोमल, मनोनुकूल, मनःप्रतिकूल, श्रृंगार युक्त, करुणायुक्त उपसर्गों द्वारा विघ्न उपस्थित करेगी। देवानुप्रियो! तब तुम यदि रत्नद्वीप देवी के ऐसे कथन को सुनकर आदर दोगे, मानोगे, उस ओर ध्यान दोगे तो मैं अपनी पीठ से नीचे गिरा दूँगा। यदि तुम रत्नद्वीप देवी की उन बातों को आदर नहीं दोगे, ध्यान नहीं दोगे तो मैं रत्नद्वीप देवी के हाथों से तुम्हें सही सलामत निकाल दूंगा।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(४०)

तए णं ते मागंदियदारगा सेलगं जक्खं एवं वयासी-जं णं देवाणुप्पिया! वइस्संति तस्स णं उववायवयणणिद्देसे चिट्ठिस्सामो।

भावार्थ - माकंदी पुत्रों ने शैलक यक्ष से निवेदन किया-देवानुप्रिय! आप जैसा कहेंगे, हम उस आदेश, निर्देश का सेवक की तरह अनुसरण, पालन करेंगे।

देवी के चुंगल से मुक्ति का प्रयास

(४१)

तए णं से सेलए जक्खे उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिस्सरइ दोच्चंपि तच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता एगं महं आसरूवं विउव्वइ २ त्ता ते मागंदियदारए एवं वयासी-हं भो मागंदियदारया! आरुह णं देवाणुप्पिया! मम पिट्ठंसि।

भावार्थ - तदनंतर शैलक यक्ष उत्तर-पूर्व दिशा भाग में गया। वहाँ जाकर उसने वैक्रिय समुद्घात कर संख्यात योजन का दण्ड बनाया। दूसरी बार और तीसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात से विकुर्वणा द्वारा अश्वरूप धारण किया। ऐसा कर वह माकंदी पुत्रों से बोला-देवानुप्रियो! मेरी पीठ पर आरूढ हो जाओ।

(४२)

तए णं ते मागंदियदारया हट्ठ० सेलगस्स जक्खस्स पणामं करेंति २ त्ता सेलगस्स पिट्ठिं दुरूढा। तए णं से सेलए ते मागंदियदारए दुरूढे जाणित्ता सत्तट्ठतालप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ २ त्ता य ताए उक्किट्ठाए तुरियाए (चवलाए चंडाए दिव्वाए) देवयाए देवगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबूद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव चंपा णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - माकंदी पुत्र यह सुनकर बड़े हर्षित एवं परितुष्ट हुए। उन्होंने शैलक को प्रणाम किया तथा उसकी पीठ पर सवार हो गए। शैलक ने जब देखा-माकंदी पुत्र उसकी पीठ पर सवार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो गए हैं तो वह सात आठ ताड़ वृक्ष प्रमाण ऊँचा आकाश में उड़ा। उड़ कर उत्कृष्ट देवगति से लवण समुद्र के बीचोंबीच होता हुआ जंबूद्वीप, भरतक्षेत्र, चंपानगरी की ओर चल पड़ा।

(४३)

तए णं सा रयणदीवदेवया लवण समुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टेइ जं तत्थ तणं वा जाव एडेइ २ त्ता जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ते मागंदियदारया पासायवडेंसए अपासमाणी जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे जाव सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ २ त्ता तेसिं मागंदियदारगाणं कत्थइ सुइं वा ३ अलभमाणी जेणेव उत्तरिल्ले (वणसंडे) एवं चेव पच्चत्थिमिल्ले वि जाव अपासमाणी ओहिं पउंजइ० ते मागंदियदारए सेलएणं सद्धिं लवण समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे २ पासइ २ त्ता आसुरुत्ता असिखेडगं गेण्हइ २ त्ता सत्तट्ठ जाव उप्पयइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जेणेव मागंदियदारगा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - **सुइं** - श्रुति-वार्तालाप श्रवण, **खुइं** - क्षुति-छींक, **पउत्ति** - प्रवृत्ति-वृत्तांत।

भावार्थ - तत्पश्चात् रत्नद्वीप देवी लवण समुद्र का इक्कीस बार चक्कर लगाकर, वहां से घास यावत् कचरा आदि हटवा कर, अपने उत्तम प्रासाद में आई। जब उसने वहाँ माकंदी पुत्रों को नहीं देखा तो उसने पूर्वी वनखण्ड में यावत् सर्वत्र उनको ढूंढा। किन्तु उनकी बातचीत, छींक और प्रवृत्ति आदि के रूप में कोई भी उपस्थिति का लक्षण ज्ञात नहीं हुआ। फिर वह क्रमशः उत्तरी एवं पश्चिमी वनखंड में गई यावत् उसे उनके वहाँ होने का कोई चिह्न नहीं मिला। तब उसने अवधि (विभंगज्ञान) का प्रयोग किया और माकंदी पुत्रों को शैलक यक्ष के साथ, लवण समुद्र के बीचों-बीच जाते हुए देखा। वह अत्यंत क्रुद्ध हुई। तलवार ढाल लेकर सात-आठ ताड़ प्रमाण आकाश में ऊपर उड़ी यावत् उत्कृष्ट देवगति से वहाँ पहुँची जहाँ शैलक द्वारा माकंदी पुत्र ले जाए जा रहे थे, वह बोली।

देवी का दुष्प्रयास

(४४)

हं भो मागंदियदारगा! अपत्थियपत्थिया! किण्णं तुब्भे जाणह ममं विप्पजहाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेलएणं जक्खेणं सद्धिं लवण समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणा? तं एवमवि गए जइ णं तुब्भे ममं अवयक्खह तो भे अत्थि जीवियं, अह णं णावयक्खह तो भे इमेणं णीलुप्पलगवल जाव एडेमि।

भावार्थ - अरे मौत को चाहने वाले माकंदी पुत्रो! क्या तुम जानते हो, मुझे छोड़कर शैलक यक्ष के साथ, लवण समुद्र के बीचों बीच होते हुए अपनी मंजिल तक पहुँच जाओगे? इतना होने पर भी यदि तुम मेरी ओर देखो, मुझे चाहो तो जीवित रह सकते हो। यदि मुझे नहीं देखते हो, नहीं चाहते हो तो मैं इस नीली आभा से युक्त तलवार से यावत् मस्तक काट कर फेंक दूंगी।

(४५)

तए णं ते मागंदियदारगा रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अभीया अतत्था अणुव्विग्गा अक्खुभिया असंभंता रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं णो आढंति णो परियाणंति णो अवयक्खंति अणाढायमाणा अपरियाणमाणा अणवयक्खमाणा सेलएणं जक्खेणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयंति।

भावार्थ - तब माकंदी पुत्र रत्नद्वीप देवी का यह कथन सुनकर भयभीत, त्रस्त, उद्विग्न और क्षुभित नहीं हुए। रत्न द्वीप देवी की बात का न उन्होंने कोई आदर दिया और न उसकी तरफ देखा ही। वे शैलक यक्ष के साथ लवण समुद्र के बीचों बीच आगे बढते रहे।

विवेचन - शैलक यक्ष ने माकंदी पुत्रों को पहले ही समझा दिया था कि रत्नदेवी के कठोर कोमल वचनों, उसकी धमकियों या ललचाने वाली बातों पर ध्यान न देना, परवाह न करना अतएव वे उसकी धमकी सुनकर भी निर्भय रहे।

(४६)

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदियदारया जाहे णो संचाएइ बहूहिं पडिलोमेहि य उवसग्गेहि य चालित्तए वा खोभित्तए वा वि परिणामित्तए वा लोभित्तए वा ताहे महुरेहि य सिंगारेहि य कलुणेहि य उवसग्गेहि य उवसग्गेउं पयत्ता यावि होत्था-हं भो मागंदियदारगा! जइ णं तुब्भेहिं देवाणुप्पिया! मए सद्धिं हसियाणि य रमियाणि य ललियाणि य कीलियाणि य हिंडियाणि य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहियाणि य ताहे णं तुब्भे सच्चाइं अगणेमाणा मम विप्पजहाय सेलएणं सद्धिं लवण समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयह।

शब्दार्थ - ललियाणि - अभीप्सित भोजन आदि का उपभोग, **कीलियाणि -** क्रीड़ा, **हिण्डियाणि -** उद्यान आदि में भ्रमण, **मोहियाणि -** काम क्रीड़ाएं।

भावार्थ - रत्नद्वीप देवी जब बहुत से प्रतिकूल उपसर्गों का भय दिखा कर माकंदी पुत्रों को चलित, क्षुभित और विपरिणामित नहीं कर सकी, तो उसने बहुत से मधुर, श्रृंगारोपेत और करुणापूर्ण उपसर्गों द्वारा उनको प्रभावित करने का प्रयास किया।

वह बोली - माकंदी पुत्रो! तुमने मेरे साथ हास-परिहास किया है, अभीप्सित भोजनादि का भोग किया, खेले-कूदे हो, उद्यानादि में भ्रमण किया है और रति क्रीड़ाएँ की हैं। इन सबको कुछ भी न मानते हुए-उपेक्षा करते हुए, मुझे छोड़ कर शैलक यक्ष के साथ चले जा रहे हो।

(४७)

तए णं सा रयणदीवदेवया जिणरक्खियस्स मणं ओहिणा आभोएइ २ त्ता एवं वयासी-णिच्चंपि य णं अहं जिणपालियस्स अणिट्ठा ५। णिच्चं मम जिणपालए अणिट्ठे ५। णिच्चंपि य णं अहं जिणरक्खियस्स इट्ठा ५। णिच्चंपि य णं ममं जिणरक्खिए इट्ठे ५। जइ णं ममं जिणपालिए रोयमाणिं कंदमाणिं सोयमाणिं तिप्पमाणिं विलवमाणिं णावयक्खइ किण्णं तुमं (पि) जिणरक्खिया! ममं रोयमाणि जाव णावयक्खसि?

भावार्थ - तब रत्न द्वीप देवी ने जिनरक्षित के अस्थिर मन को, चंचल मनोगत भावों को अवधि (विभंग ज्ञान) से देखा और बोली-जिनपालित के लिए मैं सदैव अनिष्ट, अप्रिय, अकान्त और अमनोहर रही हूँ। मेरे लिए भी जिनपालित वैसा ही रहा है। मैंने उसे कभी नहीं चाहा। जिनरक्षित के लिए मैं सदैव इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर रही हूँ। जिनरक्षित भी मेरे लिए ऐसा ही रहा है। मैं सदा उसे हृदय से चाहती रही हूँ। यदि जिनपालित मुझे रोते हुए, क्रंदन करते हुए, शोक करते हुए, आंसू बहाते देखकर मेरी ओर जरा भी ध्यान नहीं देता तो जिनरक्षित क्या तुम भी मुझे रोते हुए यावत् विलाप करते हुए मेरी ओर देख कर ध्यान नहीं दोगे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(४८)

गाथाएं -

तए णं सा पवररयणदीवस्स देवया ओहिणा (उ) जिणरक्खियस्स मणं।

णाऊण वधणिमित्तं उवरि मागंदियदारगाणं दोण्हंपि॥१॥

शब्दार्थ - णाऊण - जानकर।

भावार्थ - उत्तम रत्न द्वीप की देवी ने अवधि (विभंग ज्ञान) द्वारा जिनरक्षित के मनोगत भावों को जाना। वह माकंदी पुत्रों को मारने का दुर्भाव लिए यों बोली -

(४९)

दोसकलिया सललियं णाणाविहचुण्णवासमीसं दिव्वं।

घाणमणणिव्वुइकरं सव्वोउयसुरभिकुसुमवुट्ठिं पमुंचमाणी॥२॥

शब्दार्थ - दोसकलिया - दोष युक्त, **चुण्णवासमीसं** - पिष्ट सुगंधित द्रव्यों से मिश्रित, **घाण** - घ्राण-नासिका, **णिव्वुइकरं** - तृप्तिप्रद।

भावार्थ - द्वेष से भरी हुई उस देवी ने लीला पूर्वक-कृत्रिम क्रीड़ा भाव दिखाते हुए, तरह-तरह के सुगंधित द्रव्यों से मिश्रित, नासिका को तृप्त करने वाली, समस्त ऋतुओं में खिलने वाले फूलों की सुगंध से परिपूर्ण फूलों की वृष्टि करते हुए कहा।

(५०)

णाणामणिकणगरयण घंटिय खिंखिणिणेऊरमेहलभूसणरवेणं।

दिसाओ विदिसाओ पूरयंती वयणमिणं बेइ सा सकलुसा॥३॥

भावार्थ - वह पापिनी विभिन्न मणि, स्वर्ण तथा रत्नों के छोटे-बड़े घुंघरु, नुपूर और मेखला इन सभी आभूषणों के शब्दों से सभी दिशाओं-विदिशाओं को पूरित करती हुई इस प्रकार कहने लगी।

(५१)

होल वसुल गोल णाह दइत, पिय रमण कंत सामिय णिग्घिण णित्थक्क।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थि(छि)ण्ण णिक्किव अकयण्णुय सिढिलभाव णिल्लज्ज लुक्ख अकलुण-जिणरक्खिय मज्झं हियरक्खगा॥४॥

ण हु जुज्जसि एक्कियं अणाहं अबंधवं तुज्झ चलण ओवायकारियं उज्झिउमह(ध)ण्णं।

गुण संकर! अहं तुमे विहूणा ण समत्था (वि) जीविउं खणंपि॥५॥

शब्दार्थ - **होल** - मुग्ध, **वसुल** - सुकुमार, **गोल** - कठोर, **णित्थक्क** - अनवसरज्ञ-सीधे, भोले, **जुज्जसि** - योग्य, **चलण ओवायकारियं** - चरण सेविका को, **उज्झिउं** - त्यागना, **अहण्णं** - अधन्या, **गुण संकर** - गुण सागर।

भावार्थ - मुग्ध! सुकुमार! कठोर! नाथ! स्नेह भोजन! प्रिय! रमण! कांत। स्वामि! घृणाशून्य! अनवसरज्ञ! निर्लज्ज! रूक्ष! करुणाविहीन! मेरे हृदय की रक्षा करने वाले जिन रक्षित! तुम मुझ अनाथ बंधुहीन, चरणसेविका को अकेली छोड़ कर जा रहे हो, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे गुण सागर! तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भर भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ।

(५३)

इमस्स उ अणेगझसमगरविविधसावयसयाउलघरस्स। रयणागरस्स मज्झे अप्पाणं वहेमि तुज्झ पुरओ एहि णियत्ताहि जइ सि कुविओ खमाहि एक्कावराहं मे॥६॥

शब्दार्थ - **रयणागरस्स** - समुद्र के, **अप्पाणं** - स्वयं को, **वहेमि** - डाल देती हूँ, **णियत्ताहि** - वापस लौट जाओ।

भावार्थ - सैकड़ों-सैकड़ों मत्स्यों, मगरों और विविध प्रकार के जलचर प्राणियों से व्याप्त इस समुद्र के बीच में तुम्हारे सामने ही अपने आपको डाल दूँगी-डूब मरूँगी। इसलिए हे जिनरक्षित! आओ, वापस लौट आओ। यदि तुम कुपित हो तो एक बार तो मुझे माफ कर दो।

(५४)

तुज्झ य विगयघण विमलससिमंडल गारसस्सिरीयं सारयणव कमल कुमुद कुवलय विमलदलणिकर सरिस णिभणयणं वयणं पिवासागयाए सद्धा मे पेच्छिउं जे अवलोएहि ता इओ ममं णाह जा ते पेच्छामि वयणकमलं॥७॥

शब्दार्थ - **विगयघण** - मेघ रहित, **पिवासागयाए** - प्यास युक्त।

भावार्थ - नाथ! तुम्हारा मुख मेघ रहित, निर्मलचन्द्र के समान है। तुम्हारे नेत्र शरद ऋतु के अभिनव कमल, कुमद और कुवलय-नीलकमल के पत्रों के सदृश अत्यंत शोभायुक्त हैं।

ऐसे नेत्र युक्त तुम्हारे मुख के दर्शन की पिपासा लिए मैं यहाँ आई हूँ। अब तुम मेरी ओर देखो, मैं तुम्हारे मुख कमल का दर्शन कर लूँ।

(५५)

एवं सप्पणयसरलमहुराइं पुणो पुणो कलुणाइं वयणाइं जंपमाणी सा पावा मग्गओ समण्णेइ पावहियया॥८॥

शब्दार्थ - **सप्पणय** - सप्रणय-प्रेम पूर्ण, **समण्णेइ** - अनुसरण करने लगी।

भावार्थ - जिसका हृदय पाप से भरा था, वैसी वह रत्नद्वीप देवी बार-बार प्रेम पूर्ण, सरल, मधुर, करुणा पूर्ण वचन बोलती हुई मार्ग में उनका अनुसरण करने लगी - पीछे-पीछे चलने लगी।

(५६)

तए णं से जिणरक्खिए चलमणे तेणेव भूसणरवेणं कण्णसुहमणोहरेणं तेहि य सप्पणयसरल महुरभणिएहिं संजायविउणराए रयणदीवस्स देवयाए तीसे सुंदरथणजहण-वयणकरचरणणयणलावण्णरूवजोवण्णसिरिं च दिव्वं सरभसउवगू-हियाइं (जातिं) बिब्बोयविलसियाणि य विहसियसकडक्खदिट्ठि-णिस्ससिय-मलियउवललिय (ठि) थियगमणपणयखिज्जियपासाइयाणि य सरमाणे राग-मोहियमई अवसे कम्मवसगए अवयक्खइ मग्गओ सविलियं।

शब्दार्थ - **संजायविउणराए** - दुगुने अनुराग से युक्त, **सरभसउवगूहियाइं** - तीव्र कामौत्सुक्यपूर्ण आलिंगन, **सकडक्खदिट्ठि** - कटाक्षपूर्ण दृष्टि, **णिस्ससिय** - आहपूर्ण श्वास, **मलिय** - मर्दन, **उवललिय** - उपललित क्रीड़ा विशेष, **खिज्जिय** - कामकलह, **सरमाणे** - स्मरण करता हुआ, **अवसे** - विवश-मजबूर, **सविलियं** - लज्जा पूर्वक।

भावार्थ - तदनंतर कानों को सुख देने वाले, मन को हरने वाले आभूषणों की ध्वनि से तथा उसके प्रेम युक्त सरल वचनों से जिनरक्षित विचलित हो उठा, उसका राग दुगुना हो गया।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

वह रत्नद्वीप की देवी के सुन्दर स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर, नैत्र तथा उसके लावण्य रूप और यौवन की शोभा तथा तीव्र कामौत्सुक्य पूर्ण आलिंगन, बिब्बोक आदि विविध हाव-भाव रूपी विलास, हास-परिहास, कटाक्ष पूर्ण दृष्टि, आह पूर्ण श्वास, लालित्य पूर्ण काम क्रीड़ा, उसकी स्थिति, गति, प्रणय, काम कलह एवं प्रसन्नता पूर्ण भावों को बार-बार याद करने लगा। उसकी बुद्धि मोहविमूढ हो गई। वह काम वशगत होता हुआ अपने पर नियंत्रण नहीं रख सका। वह लज्जा पूर्वक मार्ग में देवी की ओर देखने लगा।

(५७)

तए णं जिणरक्खियं समुप्पण्ण कलुणभावं मच्चगलत्थल्लणोल्लियमइं अवयक्खंतं तहेव जक्खे (य) उ सेलए जाणिऊण सणियं २ उव्विहइ णियग-पिट्ठाहि विगयस(त्थं)ड्ढे।

शब्दार्थ - मच्चु - मृत्यु, **गलत्थल्ल** - कण्ठ पकड़ना, **णोल्लियमइं** - दुष्प्रेरित मति।

भावार्थ - जिसके मन में देवी के प्रति कारुण्य उत्पन्न हो गया था, मृत्यु द्वारा गला पकड़ कर जिसकी बुद्धि अपने सम्मुख कर ली गई थी, जो रत्नद्वीप देवी की ओर देखने लगा था, शैलक यक्ष ने जब उसे इस स्थिति में देखा तो जिन रक्षित को अपने वचन के प्रति श्रद्धाविहीन देखकर धीरे-धीरे समुद्र में गिरा दिया।

विवेचन - देवी ने जिनपालित और जिनरक्षित को पहले कठोर वचनों से और फिर कोमल, लुभावने वचनों से अपने अनुकूल करने का यत्न किया। कठोर वचन प्रतिकूल उपसर्ग के और कोमल वचन अनुकूल उपसर्ग के द्योतक हैं। कथानक से स्पष्ट है कि मनुष्य प्रतिकूल उपसर्गों को तो प्रायः सरलता से सहन कर लेता है किन्तु अनुकूल उपसर्गों को सहन करना अत्यन्त दुष्कर है। जिनपालित की भांति दृढ़मनस्क साधक दोनों प्रकार के उपसर्गों के उपस्थित होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर अचल-अटल रहते हैं, किन्तु अल्पसत्त्व साधक अनुकूल उपसर्गों के आने पर जिनरक्षित की तरह भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव साधक को अनुकूल उपसर्गों को अतिदुस्सह समझ कर उनसे अधिक सतर्क रहना चाहिए।

रत्नद्वीप की देवी सम्पूर्ण रूप से विषयान्ध थी। उसके दिल में सार्थवाह पुत्रों के प्रति प्रेम, ममता की भावना नहीं थी, वह उन्हें मात्र वासनातृप्ति का साधन मानती थी। इससे स्पष्ट है कि वैषयिक अनुराग का सर्वस्व मात्र स्वार्थ है। इसमें दया-ममता नहीं होती, अन्यथा वह जिनरक्षित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के, जैसा कि आगे निरूपण किया गया है, तलवार से टुकड़े-टुकड़े क्यों करती? उसकी स्वार्थान्धता और क्रूरता इस और अगले पाठ से स्पष्ट हो जाती है। विषयवासना की अनर्थकारिता का यह स्पष्ट उदाहरण है।

(५८)

तए णं सा रयणदीव देवया णिस्संसा कलुणं जिणरक्खियं सकलुसा सेलगपिट्ठाहिं उवयंतं - दास! मओसि ति जंपमाणी अप्पत्तं सागर सलिलं गेण्हिय बाहाहिं आरसंतं उड्ढं उव्विहइ अंबरतले ओवयमाणं च मंडलग्गेण पडिच्छित्ता णीलुप्पलगवलअयसिप्पगासेण असिवरेणं खंडाखंडिं करेइ २ त्ता तत्थ विलवमाणं तस्स य सरस वहियस्स घेत्तूणं अंगमंगाइं सरुहिराइं उक्खित्तबलिं चउद्दिसिं करेइ सा पंजली पहिट्ठा।

शब्दार्थ - **उवयंतं** - गिरते हुए, **आरसंतं** - चिल्लाते, चीखते हुए, **उव्विहइ** - उछाला, **पडिच्छित्ता** - झेल (ग्रहण) कर, **सरसवहियस्स** - अभीप्सा पूर्वक मारा गया।

भावार्थ - तदनंतर उस नृशंस, कालुष्य पूर्ण भाव युक्त रत्नद्वीप की देवी ने दयनीय जिनरक्षित को शैलक की पीठ से गिरते हुए देखा। वह बोली- रे नीच! तुम मरोगे, यों कहकर उस देवी ने जिनरक्षित को समुद्र में गिरने से पहले ही दोनों हाथों में झेल लिया। उस रोते, चिल्लाते जिनरक्षित को आकाश में ऊपर उछाला। जब वह नीचे गिरने लगा तो उसे अपनी तलवार के अग्र भाग में झेल लिया-पिरो लिया। नील कमल, महिष एवं अलसी पुष्प के सदृश नील आभायुक्त तीक्ष्ण तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े करने लगी। वह विलाप कर रहा था। उसने बड़ी ही दुरभिरुचि के साथ उसका वध कर डाला। खून से लिप्त उसके अंगों को उसने चारों दिशाओं में वायस (कौआ) बलि की तरह फेंक दिया और वह बलि देने की अंजलि बद्ध मुद्रा में अत्यंत हर्षित हो उठी।

(५९)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अंतिए पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे आसायइ पत्थयइ पीहेइ अभिलसइ से णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं जाव संसारं अणुपरियट्टिस्सइ जहा वा से जिणरक्खिए।

छलिओ अवयक्खंतो णिरावयक्खो गओ अविग्घेणं।
तम्हा पवयणसारे णिरावयक्खेण भवियव्वं॥१॥
भोगे अवयक्खंता पडंति संसार सायरे घोरे।
भोगेहिं णिरवयक्खा तरंति संसार कंतारं॥२॥

शब्दार्थ - पीहेइ - स्पृहा करता है, **णिरावयक्खो** - नहीं देखता हुआ।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी आचार्य, उपाध्याय से प्रव्रजित होकर फिर मनुष्य जीवन संबंधी काम-भोगों का आश्रय लेता है, उनके लिए याचना करता है, स्पृहा करता है - अमुक कामभोगोपयोगी पदार्थ मुझे बिना मांगे ही मिल जाय, ऐसी अभिलाषा रखता है, वह इस भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों श्रावकों तथा श्राविकाओं में उपहासास्पद-निंदास्पद होता है यावत् संसार में बार-बार परिभ्रमण करता है। उसकी दशा जिनरक्षित जैसी होती है।

गाथा -

जैसे माकंदी पुत्र जिनरक्षित रत्नद्वीप देवी को मोहासक्त होकर देखता हुआ छला गया, मारा गया और जिनपालित जिसने देवी की ओर नजर ही नहीं डाली, निर्विघ्नतया अपने स्थान पर पहुँच गया। इस उदाहरण को देखते हुए साधु को प्रवचन सार — भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित उपदेश के निष्कर्ष रूप चारित्र में जो धर्म विपरीत, अन्यत्र कहीं भी दृष्टि न डालते हुए सांसारिक भोगों से आकृष्ट न होते हुए स्थिर रहना चाहिए॥१॥

जो भोग की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं, वे संसार सागर में गिर पड़ते हैं। जो इस ओर आकृष्ट नहीं होते वे संसार रूपी घोर जंगल को पार कर जाते हैं॥२॥

देवी का दूसरा दुष्प्रयास

(६०)

तए णं सा रयणदीवदेवया जेणेव जिणपालिए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बहूहिं अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य खरमहुरसिंगारेहि य कलुणेहि य उवसग्गेहि य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाहे णो संचाएइ चालित्तए वा खोभित्तए वा विप्परिणामित्तए वा ताहे संता तंता परितंता णिव्विण्णा समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

भावार्थ - तत्पश्चात् रत्न द्वीप देवी जिनपालित के पास आई और बहुत से अनुकूल प्रतिकूल, तीक्ष्ण, मधुर, श्रृंगार पूर्ण, करुणायुक्त उपसर्गों से उसे क्षुभित, विपरिणामित नहीं कर सकी तो अत्यंत श्रांत, खिन्न तथा उद्विग्न होकर, जिस दिशा से आई थी, उधर ही चली गई।

(६१)

तए णं से सेलए अक्खे जिणपालिएण सद्धिं लवण समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ २ त्ता जेणेव चंपा णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चंपाए णयरीए अग्गुज्जाणंसि जिणपालियं पट्ठाओ ओवयारेइ २ त्ता एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया! चंपा णयरी दीसइ त्तिकट्टु जिणपालियं आपुच्छइ २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

भावार्थ - शैलक यक्ष जिनपालित को साथ लिए लवण समुद्र के बीचोंबीच होता हुआ आगे बढ़ता रहा। यों चलता-चलता वह चंपा नगरी पहुँच गया। चंपा के मुख्य उद्यान में उसने जिनपालित को अपनी पीठ से उतारा और कहा - देवानुप्रिय! यह चंपा नगरी दिखाई दे रही है। यों कहकर उसने जिनपालित से विदाई ली और जिस दिशा से वह आया था, उस ओर चला गया।

(६२)

तए णं जिणपालिए चंपं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव सए गिहे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अम्मापिऊणं रोयमाणे जाव विलवमाणे जिणरक्खियवावत्तिं णिवेदेइ। तए णं जिणपालिए अम्मापियरो मित्तणाइ जाव परियणेणं सद्धिं रोयमाणाइं बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेंति २ त्ता कालेणं विगयसोया जाया।

शब्दार्थ - मयकिच्चाइं - मृतक कृत्य, **विगयसोया** - शोक-रहित।

भावार्थ - तत्पश्चात् जिनपालित चम्पा में प्रविष्ट हुआ, अपने घर आया। माता-पिता के पास पहुँचा। उसने स्वयं रोते हुए यावत् विलाप करते हुए माता-पिता से जिनरक्षित की मृत्यु का समाचार कहा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदनंतर जिनपालित एवं उसके माता-पिता ने मित्र, जातीयजनों के साथ रोते हुए मृतक जिनरक्षित के सभी लौकिक कार्य संपादित किए। समय बीतने पर वे शोक रहित हो गए, इस दुःख को भूल गए।

(६३)

तए णं जिणपालियं अण्णया कयाइ सुहाणवरगयं अम्मापियरो एवं वयासी-कहण्णं पुत्ता! जिणरक्खिए कालगए?

भावार्थ - एक दिन, किसी समय जिनपालित सुख पूर्वक आसन पर बैठा था, तब उसके माता-पिता ने पूछा - बेटा! जिनरक्षित की किस प्रकार मृत्यु हुई?

(६४)

तए णं से जिणपालिए अम्मापिऊणं लवणसमुद्दोत्तारं च कालियवाय-समुत्थणं (च) पोयवहणविवत्तिं च फलहखंड आसायणं च रयण-दीवुत्तारं रयणदीवदेवया गिहं च भोगविभूइं च रयणदीव देवया अप्पाहणं च सूलाइय-पुरिसदरिसणं च सेलगजक्खआरुहणं च रयणदीवदेवयाउवसग्गं च जिणरक्खिय-विवत्तिं च लवण समुद्दउत्तरणं च चंपागमणं च सेलगजक्ख आपुच्छणं च जहाभूयमवितहमसंदिद्धं परिकहेइ।

शब्दार्थ - **अवितहं** - सत्य-जैसा का तैसा, **असंद्धिद्धं** - असंदिग्ध-संदेह रहित।

भावार्थ - यह सुनकर जिनपालित ने माता-पिता को तूफान का आना, जहाज का नष्ट होना, काष्ठ फलक का प्राप्त होना, रत्न द्वीप में उतरना, रत्नद्वीप देवी के प्रासाद में पहुँचना, वहाँ का भोग-वैभव, देवी का वध स्थान, शूलारोपित पुरुष को देखना, शैलक यक्ष पर आरूढ होना, रत्नद्वीपदेवी द्वारा किया गया उपसर्ग, जिन रक्षित की मृत्यु, लवण समुद्र को पार करना, चंपा नगरी में पहुँचना तथा शैलक यक्ष का विदा होना-यह सारा वृत्तांत जैसा घटित हुआ था, ज्यों का त्यों कहा।

(६५)

तए णं जिणपालिए जाव अप्पसोगे जाव विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तत्पश्चात् जिनपालित यावत् समय बीतने पर शोक रहित होकर विपुल काम-भोग भोगता हुआ रहने लगा।

(६६)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव धम्मं सोच्चा पव्वइए एक्कारसंगवीमासिएणं भत्तेणं जाव सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे दो सागरोवमाइं ठिई प०, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय भगवान् महावीर स्वामी चंपानगरी में समवसृत हुए, पधारे यावत् जिनपालित ने उनका धर्मोपदेश सुना, वह दीक्षित हुआ। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अंत में एक मास का अनशन कर ६० भक्तों का छेदन कर यावत् सौधर्म कल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी दो सागरोपम की स्थिति कही गई है, यावत् देवलोक से च्यवन कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा, सिद्धि प्राप्त करेगा।

(६७)

एवामेव समणाउसो। जाव माणुस्सए कामभोगे णो पुणरवि आसाइ से णं जाव वीईवइस्सइ जहा व से जिणपालिए।

भावार्थ - आयुष्यमान् श्रमणो! यावत् जो आचार्य, उपाध्याय से प्रव्रजित होकर पुनः काम-भोगों की आशा, अभीप्सा या कामना नहीं करता वह इसी प्रकार यावत् जिनपालित की तरह संसार सागर को पार करेगा।

(६८)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं णवमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।

भावार्थ - हे आयुष्यमान् जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नवें ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ, प्ररूपित किया है। जैसा मैंने श्रवण किया है, उसी प्रकार तुम्हें कह रहा हूँ, सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी से इस प्रकार कहा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाहाओ-

जह रयणदीवदेवी तह एत्थं अविरई महापावा।
जह लाहत्थी वणिया तह सुहकामा इहं जीवा॥१॥
जह तेहिं भीएहिं दिट्ठो आघाय मंडले पुरिसो।
संसार दुक्खभीया पासंति तहेव धम्म कहं॥२॥
जह तेण तेसि कहिया देवी दुक्खाण कारणं घोरं।
तत्तो च्चिय णित्थारो सेलगजक्खाओ णण्णत्तो॥३॥
तह धम्मकही भव्वाण साहए दिट्ठअविरइ सहावो।
सयलदुहहेउभूओ विसया विरयंति जीवाणं॥४॥
सत्ताणं दुहत्ताणं सरणं चरणं जिणिंदपण्णत्तं।
आणंदरूवणिव्वाण साहणं तह य देसेइ॥५॥
जह तेसिं तरियव्वो रुद्दसमुद्दो तहेव संसारो।
जह तेसि सगिहगमणं णिव्वाणगमो तहा एत्थं॥६॥
जह सेलगपिट्ठाओ भट्ठो देवीइ मोहियमईओ।
सावयसहस्सपउरम्मि सायरे पाविओ णिहणं॥७॥
तह अविरईइ णडिओ चरणचुओ दुक्खसावयाइण्णे।
णिवडइ अपार संसार सायरे दारुण सरूवे॥८॥
जह देवीए अक्खोहो पत्तो सट्ठाण जीवियसुहाइं।
तह चरणट्ठिओ साहू अक्खोहो जाइ णिव्वाणं॥९॥

॥ णवमं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - दिट्ठअविरइसहाओ - अविरति के स्वरूप को दिखलाकर, **दुहत्ताणं** - दुःखार्त-सांसारिक दुःखों से पीड़ित, **देसेइ** - उपदिष्ट करता है, **रुद्दसमुद्दो** - भयानक समुद्र, **भट्ठो** - भ्रष्ट-गिरा हुआ, **पउरम्मि** - प्रचुर, **पाविओ** - पातित-गिराया हुआ, **णिहणं** - मृत्यु, **णडिओ**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुष्प्रेरित, **चरणचुओ** - आचार से च्युत, **दारुणसरूवे** - भयानक स्वरूप युक्त, **अक्खोहो** - अक्षुब्ध-अविचलित, **सट्ठाण** - अपने स्थान में, घर में।

भावार्थ - जैसी रत्नद्वीप देवी थी, वैसी ही इसलोक में महापाप युक्त अविरति है। जिस प्रकार सार्थवाह वणिक थे, उसी प्रकार सुख चाहने वाले जीव हैं॥१॥

जैसे उन डरे हुए वणिकों ने-माकंदी पुत्रों ने वध स्थान में शूलारोपित पुरुष को देखा, वैसे ही संसार के दुःख से भयभीत लोग धर्मोपदेश देने वाले को देखते हैं॥२॥

जैसे उस पुरुष ने देवी को घोर दुःखों का कारण बतलाया और शैलक यक्ष को इससे छुड़ाने वाला कहा, उसी प्रकार अविरति के स्वभाव को जिसने देखा है, वैसा ही धर्मोपदेश भव्य जीवों का सहायक होता है और बतलाया है कि विषय-सांसारिक भोग समस्त दुःखों के कारण बनते हैं। सांसारिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए जितेन्द्र देव प्ररूपित धर्म ही एक मात्र शरण है। वह परमानंदमय निर्वाण का साधन है॥३,४,५,॥

जिस प्रकार उन माकंदी पुत्रों द्वारा भयानक समुद्र पार उतरने योग्य था, उसी प्रकार जीवों द्वारा यह संसार समुद्र तरणीय है। जैसे उन द्वारा घर जाना उद्दिष्ट था, वैसे ही निर्वाण प्राप्त करना प्राणियों के लिए उद्दिष्ट है॥६॥

देवी द्वारा प्रदर्शित श्रृंगारात्मक चेष्टा रूप उपसर्ग द्वारा मूढमति होकर शैलक की पीठ से विगलित भ्रष्ट हो गया, गिरा दिया गया तथा हजारों हिंसक जीवों से युक्त समुद्र में गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ उसी प्रकार अविरति से दुष्प्रेरित साधक आचार से च्युत होकर दुःख रूपी हिंसक जानवरों से व्याप्त, भीषण स्वरूप युक्त, संसार सागर में निपतित हो जाता है॥७-८॥

जिनपालित जो देवी के उपसर्ग से क्षुभित नहीं हुआ, अप्रभावित रहा, वह अपने घर पहुँचा और उसने जीवन के सुख भोगे। उसी प्रकार आचार में स्थित जो साधु अविरति से अप्रभावित रहता है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

॥ नववां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंदिमा णामं दसमं अज्झयणं

चन्द्रमा नामक दसवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं० णवमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते दसमस्स० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा-भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ - भाव प्रतिपादित किया है तो कृपया बतलाएं दसवें ज्ञात अध्ययन का क्या अर्थ, निरूपित किया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे सामी समोसढे।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले-हे जंबू! उस काल उस समय राजगृह नामक नगर था। भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे।

(३)

गोयमसामी एवं वयासी-कहण्णं भंते! जीवा वड्ढंति वा हायंति वा?

भावार्थ - गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा-भगवन्! जीव किस प्रकार बढ़ते हैं? वृद्धि प्राप्त करते हैं? किस प्रकार घटते हैं-हानि प्राप्त करते हैं?

स्वरूप हानि का क्रम

(४)

गोयमा! से जहाणामए बहुलपक्खस्स पाडिवयाचंदे पुण्णिमाचंदं पणिहाय हीणे वण्णेणं हीणे सोम्मयाए हीणे णिद्धयाए हीणे कंतीए एवं दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेस्साए मंडलेणं। तयाणंतरं च णं बीया चंदे, पाडिवयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव मंडलेणं। तयाणंतरं च णं तइयाचंदे बीयाचंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव मंडलेणं। एवं खलु एएणं कमेणं परिहायमाणे २ जाव अमावस्साचंदे चाउद्दसिचंदं पणिहाय णट्ठे वण्णेणं जाव णट्ठे मंडलेणं। एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा २ जाव पव्वइए समाणे हीणे खंतीए एवं मुत्तीए गुत्तीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सच्चेणं तवेणं चियाए अकिंचणयाए बंभचेरवासेणं। तयाणंतरं च णं हीणे हीणतराए खंतीए जाव हीणतराए बंभचेरवासेणं। एवं खलु एएणं कमेणं परिहायमाणे २ णट्ठे खंतीए जाव णट्ठे बंभचेरवासेणं।

शब्दार्थ - **बहुलपक्खस्स** - कृष्ण पक्ष की, **पाडिवयाचंदे** - प्रतिपदा का चंद्र, **पणिहाय**- अपेक्षा से, **हीणे** - न्यून, **सोम्मयाए** - सौम्यता-नेत्रों को आह्लादकता उत्पन्न करने वाले, **णिद्धयाए** - स्निग्धता से-अरूक्षता से, **कंतीए** - कांति से, **जुइए** - द्युति से, **ओयाए** - दाहशमन रूप ओजस से, **लेस्साए** - लेश्या-किरणों का स्वरूप, **मंडलेणं** - वृत्ताकार से, **बीयाचंदं** - द्वितीया का चंद्र, **तइयाचंदे** - तृतीया का चंद्र, **णट्ठे** - नष्ट, **चियाए** - त्याग से।

भावार्थ - हे गौतम! जैसे कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चंद्र पूर्णिमा के चंद्रमा से वर्ण, सौम्यता, स्निग्धता, कांति, दीप्ति, छाया, प्रभा, ओजस, लेश्या और मंडल की अपेक्षा हीन होता है। उसी प्रकार द्वितीया का चंद्र प्रतिपदा के चंद्र से वर्ण यावत् मंडल में हीनतर होता है। तृतीया का चन्द्र द्वितीया के चन्द्र से वर्ण यावत् मंडल में हीनतर होता है। इसी क्रम से हीन होता हुआ यावत् अमावस्या का चन्द्र चतुर्दशी के चन्द्र से वर्ण यावत् मण्डल पर्यंत विलुप्त-हीनतम हो जाता है।

हे आयुष्मान् श्रमणो! जो साधु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर क्षान्ति, मुक्ति, गुप्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, तप, अकिंचनता तथा ब्रह्मचर्यवास में हीन, हीनतर होते जाते हैं यावत् इस क्रम से वे उत्तरोत्तर परिहीन होते होते, क्षांति यावत् ब्रह्मचर्यवास की दृष्टि से सर्वथा हीन, विमुख हो जाते हैं।

वृद्धि का विकास क्रम

(५)

से जहा वा सुक्क पक्खस्स पडिवयाचंदे अमावसाचंदं पणिहाय अहिए वण्णेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव अहिए मंडलेणं। तयाणंतरं च णं बीयाचंदे पडिवयाचंदं पणिहाय अहिययराए वण्णेणं जाव अहिययराए मंडलेण। एवं खलु एएणं कमेणं परिवड्ढेमाणे २ जाव पुण्णिमाचंदे चाउद्दसिं चंदं पणिहाय पडिपुण्णे वण्णेणं जाव पडिपुण्णे मंडलेणं। एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे अहिए खंतीए जाव बंभचेरवासेणं तयाणंतरं च णं अहिययराए खंतीए जाव बंभचेरवासेणं। एवं खलु एएणं कमेणं परिवड्ढेमाणे २ जाव पडिपुण्णे बंभचेरवासेणं। एवं खलु जीवा वड्ढंति वा हायंति वा।

भावार्थ - जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चंद्र अमावस्या के चन्द्र से वर्ण यावत् मंडल में अधिक होता है, उसी प्रकार द्वितीया का चंद्र प्रतिपदा के चन्द्र से वर्ण यावत् मंडल में अधिकतर होता है। इसी क्रम से परिवृद्धि प्राप्त करते-करते पूर्णिमा का चंद्र चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण यावत् मंडल में परिपूर्ण होता है।

हे आयुष्मान् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु-साध्वी आचार्य, उपाध्याय से प्रव्रजित होते हैं, वे क्षांति यावत् ब्रह्मचर्यवास में अधिक गुण संपन्न होते हैं। तदनंतर वे क्रमशः क्षांति यावत् ब्रह्मचर्यादि की आराधना में अधिकतर होते जाते हैं। इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते वे यावत् क्षांति-ब्रह्मचर्य आदि गुणों में परिपूर्ण हो जाते हैं।

इस क्रम से जीव हानि-वृद्धि प्राप्त करते हैं।

विवेचन - आध्यात्मिक गुणों के विकास में आत्मा स्वयं उपादानकारण है, किन्तु अकेले उपादानकारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। कार्य की उत्पत्ति के लिए उपादानकारण के साथ निमित्तकारणों की भी अनिवार्य आवश्यकता होती है। निमित्तकारण अन्तरंग बहिरंग आदि अनेक प्रकार के होते हैं। गुणों के विकास के लिए सद्गुरु का समागम बहिरंग निमित्तकारण है तो चारित्रावरण कर्म का क्षयोपशम एवं अप्रमादवृत्ति अन्तरंग निमित्तकारण हैं।

(६)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं० दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दसवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञापित किया है। जैसा मैंने सुना है, वैसा कहता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवणय गाहाओ -

जह चंदो तह साहू राहुवरोहो जहा तह पमाओ।
वण्णाई गुणगणो जह तहा खमाई समण धम्मो॥१॥
पुण्णो वि पइदिणं जह हायंतो सव्वहा ससीणस्से।
तह पुण्ण चरित्तोऽवि हु कुसील संसग्गिमाईहिं॥२॥
जणियपमाओ साहू हायंतो पइदिणं खमाईहिं।
जायइ णट्ठचरित्तो तत्तो दुक्खाइं पावेइ॥३॥
हीण गुणो वि हु होउं सुहगुरुजोगाइजणिय संवेगो।
पुण्णसरूवो जायइ विवड्ढमाणो ससहरोव्व॥४॥

॥दसमं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - राहुवरोहो - राहु द्वारा ग्रसित किया जाना, **पमाओ** - प्रमाद, **ससहरोव्व** - चन्द्रमा की तरह।

भावार्थ - यहाँ चन्द्र के रूपक से साधु का वर्णन है। चंद्र जिस तरह राहु द्वारा ग्रसित होता है, उसी प्रकार प्रमाद द्वारा साधु-साधुत्व से तिरोहित होता है॥१॥

पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा भी कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन घटता-घटता अन्त में अमावस्या के दिन सर्वथा विलुप्त हो जाता है। उसी प्रकार परिपूर्ण साधु भी कुशीलजनों के संसर्ग आदि से प्रमाद युक्त हुआ, प्रतिदिन क्षमा आदि गुणों में हीन, हीनतर होता जाता है और अंततः उसका चारित्र नष्ट हो जाता है तथा वह अनेक दुःखों को प्राप्त करता है॥ २,३॥

जो चारित्र गुण से हीन हो गया है, वह भी उत्तम गुरु आदि के संयोग से संवेग-वैराग्य प्राप्त कर लेता है। वृद्धि प्राप्त करते हुए चंद्र की तरह वह अपने क्षांति-ब्रह्मचर्य आदि स्वरूप में परिपूर्णता पा लेता है।

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त॥

✡ ✡ ✡ ✡

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दावद्दवे णामं एक्कारसमं अज्झयणं

दावद्रव नामक ग्यारहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं० दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते एक्का-रसमस्स० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा-भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा दसवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्ररूपित किया गया है तो कृपया फरमाएं उन्होंने ग्यारहवें अध्ययन का क्या अर्थ फरमाया है?

आराधक-विराधक विषयक जिज्ञासा

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव गोयमे (समणं ३) एवं वयासी-कहं णं भंते! जीवा आराहगा वा विराहगा वा भवंति?

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले-जंबू! उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था यावत् भगवान् वहाँ पधारे, गुणशील चैत्य में रुके।

एक बार गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न किया-भगवन्! जीव किस प्रकार आराधक होते हैं और वे किस प्रकार विराधक होते हैं?

देश विराधक : स्वरूप

(३)

गोयमा! से जहाणामए एगंसि समुद्दकूलंसि दावद्दवा णामं रुक्खा पण्णत्ता किण्हा जाव णिउरुंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **समुद्दकूलंसि** - समुद्र के तट पर, **णिउरुंब** - समूह, **हरियगरेरिज्जमाणा**- हरियाली से सुशोभित होते हुए।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक दृष्टान्त द्वारा उत्तर देते हुए कहा - हे गौतम! समुद्र के किनारे दावद्रव नामक वृक्ष थे यावत् वे जलपूर्ण मेघों की तरह नीलश्याम आभा लिए हुए थे। वे पत्तों, पुष्पों, फलों से युक्त थे, हरे-भरे थे, बड़े सुहावने एवं शोभायुक्त प्रतीत होते थे।

(४)

जया णं दीविच्चगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति तया णं बहवे दावद्दवा रुक्खा पत्तिया जाव चिट्ठंति। अप्पेगइया दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा परिसडियपंडुपत्तपुप्फफला सुक्करुक्खओ विव मिलायमाणा मिलायमाणा चिट्ठंति।

शब्दार्थ - **दीविच्चगा** - समुद्रवर्ती द्वीपों की ओर से आने वाली, **ईसिं** - हल्की-हल्की, **पुरेवाया** - पूर्वी वायु, पथ्यवात-वनस्पति के लिए हितकारक वायु, **पच्छावाया** - पश्चिमी वायु, **महावाया** - तीव्र वायु, **जुण्णा** - जीर्ण, **झोडा** - पत्र रहित, **परिसडिय-पंडुपत्त-पुप्फ-फला** - सडे हुए पीले पत्तों और फलों से युक्त, **मिलायमाणा** - मुरझाए हुए।

भावार्थ - समुद्रवर्ती द्वीपों से आती हुई धीमी-धीमी पूर्वी एवं पश्चिमी तेज हवा चलती है तब बहुत से दावद्रव संज्ञक वृक्ष पत्र यावत् पुष्प आदि से शोभित होते हुए खड़े रहते हैं।

परन्तु इस स्थिति में कई दावद्रव वृक्ष जीर्ण, पत्र रहित, सड़े गले पत्र पुष्प फलयुक्त, रूक्ष होते हुए मुरझाए हुए ही रहते हैं।

(५)

एवामेव समणाउसो! जे अम्हं णिग्गंथो वा २ जाव पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं ४ सम्मं सहइ जाव अहियासेइ बहूणं अण्णउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं णो सम्मं सहइ जाव णो अहियासेइ एस णं मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते समणाउसो!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **अहियासेइ** - अध्यास्ते-निर्जरा की भावना से सहन करता है, **अण्णउत्थियाणं**- अन्यतीर्थिकों-परमत वादियों के।

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु-साध्वी यावत् आचार्य उपाध्याय से प्रव्रजित होकर बहुत से साधुओं-साध्वियों श्रावकों एवं श्राविकाओं के प्रतिकूल वचनों को यावत् क्षमा भाव एवं निर्जरा भाव से सहता है किन्तु अन्यतीर्थिक साधुओं तथा गृहस्थों के वचन को यावत् नहीं सहता, वह मेरे द्वारा देश विराधक कहा गया है।

देशाराधक का विवेचन

(६)

जया णं सामुद्दगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति तया णं बहवे दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा जाव मिलायमाणा मिलायमाणा चिट्ठंति। अप्पेगइया दावद्दवा रुक्खा पत्तिया पुप्फिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! समुद्र की ओर से आने वाली पूर्वी और पश्चिमी हल्की मंद हवा चलती है और प्रचण्ड हवा चलती है, तब बहुत से दावद्रव वृक्ष जीर्ण और निष्पन्न हो जाते हैं, यावत् म्लान हो जाते हैं- मुरझाए हुए खड़े रहते हैं किंतु कोई-कोई दावद्रव वृक्ष पत्र, पुष्प यावत् फलयुक्त रहते हुए शोभायमान होते रहते हैं।

(७)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा २ जाव पव्वइए समाणे बहूणं अण्णउत्थियगिहत्थाणं सम्मं सहइ बहूणं समणाणं ४ णो सम्मं सहइ एस णं मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते।

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! इस प्रकार जो साधु या साध्वी यावत् आचार्य उपाध्याय के पास दीक्षित होकर बहुत से अन्यतीर्थिक साधुओं तथा गृहस्थों के प्रतिकूल वचन सम्यक् सहन करता है, तथा बहुत से श्रमणों-श्रमणियों-श्रावकों-श्राविकाओं के प्रतिकूल वचन सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता, वैसे पुरुष को मैंने देशाराधक प्रज्ञापित किया है-बतलाया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वविराधक का लक्षण

(८)

समणाउसो! जया णं णो दीविच्चगा णो सामुद्दगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया जाव महावाया वायंति तए णं सव्वे दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा०।

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! जब समुद्रवर्ती द्वीप एवं समुद्र से आने वाली पूर्वी और पश्चिमी मन्द हवा यावत् प्रचण्ड हवा नहीं बहती तब सब दावद्रव वृक्ष जीर्ण निष्पत्र यावत् म्लान हो जाते हैं, मुरझाए रहते हैं।

(९)

एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं ४ बहूणं अण्णउत्थियगिहत्थाणं णो सम्मं सहइ एस णं मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते।

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! यावत् आचार्य, उपाध्याय से प्रव्रजित हुए साधु तथा साध्वी, बहुत से साधु साध्वियों-श्रावक-श्राविकाओं तथा बहुत से अन्यतीर्थिक साधुओं एवं गृहस्थों के विपरीत वचनों को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता, उसको मैंने सर्वविराधक कहा है।

सर्वाराधक की भूमिका

(१०)

समणाउसो! जया णं दीविच्चगा वि सामुद्दगा वि ईसिं पुरेवाया पच्छावाया जाव वायंति तया णं सव्वे दावद्दवा रुक्खा पत्तियम जाव चिट्ठंति।

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! जब समुद्रवर्ती द्वीप एवं समुद्र से आने वाली पूर्वी-पश्चिमी मंद हवा तथा प्रचंड हवा बहती है, तब सभी दावद्रव वृक्ष पत्र-पुष्प-फल युक्त रहते हैं, यह भी एक स्थिति है।

(११)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं ४ बहूणं अण्णउत्थियगिहत्थाणं सम्मं सहइ एस णं मए पुरिसे सव्वआराहए पण्णत्ते (समणाउसो!)। एवं खलु गोयमा! जीवा आराहगा वा विराहगा वा भवंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे आयुष्मान् श्रमणो! इस प्रकार आचार्य-उपाध्याय से प्रव्रज़ित साधु-साध्वी, बहुत से साधुओं-साध्वियों-श्रावकों-श्राविकाओं तथा अन्यतीर्थिक साधुओं-गृहस्थों के विपरीत वचनों को सम्यक् सहन करता है, उसको मैंने सर्वाराधक कहा है।

हे गौतम! इस प्रकार जीव आराधक एवं विराधक होते हैं।

विवेचन - उपर्युक्त चारों भंगों में 'अन्यतीर्थी' का अर्थ अन्य मत वाले (३६३ पाषण्ड मत वाले) साधु आदि एवं 'गृहस्थी' का अर्थ उन अन्यतीर्थियों के मतानुयायी गृहस्थ समझना चाहिए। श्रावक एवं श्राविका का इनमें ग्रहण नहीं हुआ है क्योंकि उनको तो स्पष्ट रूप से चतुर्विध संघ के नाम देकर अलग ही बताया गया है।

(१२)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं एक्कारसमस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।

भावार्थ- आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा- हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ग्यारहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है। जैसा मैंने उनसे श्रवण किया, वही कहता हूँ।

गाहाओ -

जह दावद्दवतरुवणमेवं साहू जहेव दीविच्चा।
वाया तह समणाइय सपक्खवयणाइं दुसहाइं॥ १॥
जह सामुद्दयवाया तहऽण्णतित्थाइकडुयवयणाइं।
कुसुमाइसंपया जह सिवमग्गाराहणा तह उ॥ २॥
जह कुसुमाइविणासो सिवमग्ग विराहणा तहा णेया।
जह दीववाउजोगे बहु इड्ढी ईसि य अणिड्ढी॥ ३॥
तह साहम्मियवयणाण सहमाणाराहणा भवे बहुया।
इयराणमसहणे पुण सिवमग्गविराहणा थोवा ॥ ४॥
जह जलहिवाउजोगे थेविड्ढी बहुयरा यऽणिड्ढी य।
तह परपक्खक्खमणे आराहणमीसि बहु य यरं॥ ५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जह उभयवाउविरहे सव्वा तरुसंपया विणट्ठ त्ति।
अणिमित्तोभयमच्छररूवे विराहणा तह य॥ ६॥
जह उभयवाउजोगे सव्वसमिद्धी वणस्स संजाया।
तह उभयवयणसहणे सिवमग्गाराहणा वुत्ता॥ ७॥
ता पुण्ण समणधम्माराहणचित्तो सया महासत्तो।
सव्वेण वि कीरंतं सहेज्ज सव्वं पि पडिकूलं॥ ८॥

॥ एक्कारसमं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - थोवा - स्तोक-थोड़ी।

भावार्थ - जैसे दावद्रव वृक्ष हैं, वैसे साधु हैं। द्वीप में आने वाली वायु श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविका आदि अपने पक्ष से आने वाले दुर्वचन-प्रतिकूल वचन हैं॥ १॥

समुद्र से आने वाली प्रचण्ड वायु ही अन्यतीर्थिकों के दुर्वचन हैं, पुष्प आदि की संपदा शिवमार्ग-मोक्ष पद की आराधना है॥ २॥

कुसुम आदि के विनाश को मुक्ति-मार्ग की विराधना जानना चाहिए। जैसे द्वीपवर्ती वायु के योग से ऋद्धि संपन्नता अधिक होती है, असंपन्नता न्यून होती है॥ ३॥

साधर्मिकों के वचनों को सहन करना अधिक आराधना है, दूसरों के वचनों को न सहना शिवमार्ग की थोड़ी विराधना है॥ ४॥

जैसे समुद्र की प्रचण्ड हवा के वेग से ऋद्धि-संपन्नता कम होती है, असंपन्नता अधिक होती है। उसी प्रकार परमतवादियों के वचन को सहने से आराधना कम होती है, विराधना अधिक होती है॥ ५॥

द्वीप और समुद्र-दोनों की हवाएँ न होने पर वृक्षों की समस्त संपदा विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार बिना कारण के दोनों (स्व पक्ष और पर पक्ष) के प्रति मत्सरभाव होने से सर्व विराधना कही गई है॥ ६॥

दोनों प्रकार की हवाओं के योग से वन के वृक्ष सब प्रकार से समृद्ध होते हैं, वैसे ही दोनों प्रकार के वचन सहने से शिवमार्ग की आराधना बतलाई गई है॥ ७॥

परिपूर्ण श्रमण धर्म की आराधना में जिसका चित्त होता है, उस महापुरुष को सभी द्वारा कहा जाता प्रतिकूल वचन सहना चाहिये और उसी के मोक्ष मार्ग की सर्वाराधना कही गई है॥ ८॥

॥ ग्यारहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदगणाए णामं बारसमं अज्झयणं

उदकज्ञात नामक बारहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं एक्कारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते बारसमस्स णं० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासा की - भगवन्! यदि श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने ग्यारहवें ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ प्ररूपित किया है तो कृपया कहें, बारहवें अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया। धारिणी देवी। अदीणसत्तू णामं कुमारे जुवराया वि होत्था। सुबुद्धी अमच्चे जाव रज्जधुराचिंतए समणोवासए।

शब्दार्थ - रज्जधुराचिंतए - राज्य के उत्तरदायित्व वहन की चिंता में निरत।

भावार्थ - हे जंबू! उस काल, उस समय चंपा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। चंपा नगरी का जितशत्रु नामक राजा था। उसकी रानी का नाम धारिणी था। उसके युवराज का नाम अदीन शत्रु था। उसके सुबुद्धि नामक मंत्री था, जो राज्य के उत्तरदायित्व वहन में जागरूक रहता था। वह श्रमणोपासक था।

अतिमलिन, जलयुक्त परिखा

(३)

तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमेणं एगे फरिहोदए यावि होत्था मेयवसारुहिरमंसपूयपडल पोच्चडे मयगकलेवर संछण्णे अमणुण्णे वण्णेणं जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फासेणं से जहाणामए अहिमडेइ वा गोमडेइ वा जाव मयकुहियविणट्ठकिमिण वावण्ण दुरभिगंधे किमिजालाउले संसत्ते असुइविगय बीभच्छदरिसणिज्जे। भवेयारूवे सिया? णो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराए चेव जाव गंधेणं पण्णत्ते।

शब्दार्थ - **फरिहोदए** - परिखोदक-खाई में पानी, **पोच्चडे** - मिश्रित, **कुहिय** - कुत्थित-सड़े हुए, **वावण्ण** - व्यापन्न-व्याप्त, **किमिजालाउले** - कीड़ों के समूह से युक्त।

भावार्थ - उस चंपा नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिशा भाग में एक खाई थी। इसमें पानी भरा था। वह पानी, मेद, चर्बी, मांस, रक्त, मवाद से मिश्रित आपूरित था। मृत शरीरों से व्याप्त था। अतः उसका वर्ण अमनोज्ञ था यावत् उसकी गंध, स्पर्श आदि सभी घृणोत्पादक थे। किसी मरे हुए साँप अथवा गाय यावत् मरे हुए, सड़े हुए कृमि समूह की दुर्गंध से व्याप्त था। उसमें जीवित कीड़ों के समूह बिलबिलाते थे। वह देखने में अशुचि, विकृत और घिनौना था।

क्या इतना ही था? नहीं वह इससे भी अधिक अनिष्टतर यावत् दुर्गंधयुक्त था। ऐसा कहा गया है।

मनोज्ञ आहार की प्रशंसा

(४)

तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए कयबलिकम्मे जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे बहूहिं ईसर जाव सत्थवाह पभिईहिं सद्धिं (भोयणमंडवंसि) भोयणवेलाए सुहासणवरगए विउलं असणं ४ जाव विहरइ जिमियभुत्तुत्तरागए जाव सुइभूए तंसि विपुलंसि असणंसि ४ जाव जायविम्हए ते बहवे ईसर जाव पभिईए एवं वयासी -

भावार्थ - एक बार का प्रसंग है, राजा जितशत्रु ने स्नान, नित्य-नैमित्तिक कर्म आदि कर यावत् थोड़े किंतु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। बहुत से अधीनस्थ राजा, ऐश्वर्य शाली पुरुष यावत् सार्थवाह आदि के साथ भोजन के समय सुखासन में स्थित होते हुए उसने चतुर्विध आहार का सेवन किया। फिर हाथ-मुँह आदि धोकर शुद्ध हुआ। तदनंतर उसने विपुल अशन यावत् चतुर्विध आहार के संबंध में आश्चर्य करते हुए उनसे कहा।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

(५)

अहो णं देवाणुप्पिया! इमे मणुण्णे असणं ४ वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए अस्सायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे।

शब्दार्थ - **उववेए** - उपपेत-युक्त, **अस्सायणिज्जे** - आस्वादन योग्य-स्वादिष्ट, **विस्सायणिज्जे** - विशेषतः आस्वादन योग्य, **पीणणिज्जे** - समस्त इन्द्रियों के लिए प्रीतिजनक, **दीवणिज्जे** - दीपनीय-जठराग्नि को दीप्त करने वाले, **दप्पणिज्जे** - बलजनित-दर्पोत्पादक, **मयणिज्जे** - मदनीय-कामोद्दीपक, **बिंहणिज्जे** - बृंहणीय-देह की समस्त धातुओं के संवर्धक, **सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे** - समस्त इन्द्रिय तथा शरीर के लिए अत्यंत आह्लादोत्पादक।

भावार्थ - देवानुप्रियो! यह मनः तुष्टिकर, अशनादि रूप चतुर्विध आहार कितने उत्तम वर्ण से यावत् उत्तम स्पर्श से युक्त है? यह आस्वादनीय, विस्वादनीय, प्रीणनीय, दीपनीय, दर्पनीय, मदनीय, बृंहणीय तथा समस्त इन्द्रियों एवं शरीर के लिए कितना आह्लादनीय है?

(६)

तए णं ते बहवे ईसर जाव पभियओ जियसत्तुं एवं वयासी - तहेव णं सामी! जण्णं तुब्भे वयह - अहो णं इमे मणुण्णे असणे ४ वण्णेणं उववेए जाव पल्हायणिज्जे।

भावार्थ - राजा के यों कहने पर उन अधीनस्थ राजा, ऐश्वर्यशाली पुरुष यावत् सार्थवाह प्रभृति विशिष्टजन बोले - स्वामी! जैसा आप कहते हैं, वैसा ही है। यह प्रीतिप्रद अशन-पानादि चतुर्विध आहार वर्ण, स्पर्श आदि में बहुत ही मोहक है यावत् अत्यधिक आह्लादजनक है।

(७)

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-अहो णं सुबुद्धी! इमे मणुण्णे असणे ४ जाव पल्हायणिज्जे। तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं णो आढाई जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

भावार्थ - सुबुद्धि के अलावा दरबार में स्थित विशिष्टजनों द्वारा आहार की उत्तमता का समर्थन किए जाने के अनंतर राजा जितशत्रु के अमात्य सुबुद्धि से कहा-सुबुद्धि! यह मनोज्ञ अशन-पान आदि चतुर्विध आहार यावत् कितना आह्लादजनक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु के इस कथन का न तो आदर ही किया न उत्तर ही दिया, चुपचाप बैठा रहा।

पुद्गलों की परिणमनशीलता

(८)

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-अहो णं सुबुद्धी! इमे मणुण्णे तं चेव जाव पल्हायणिज्जे। तए णं (जियसत्तुणा) से सुबुद्धी अमच्चे दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे जियसत्तुं रायं एवं वयासी-णो खलु सामी! अहं एयंसि मणुण्णंसि असणंसि ४ केइ विम्हए। एवं खलु सामी! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति दुब्भिसद्दा वि पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति। सुरूवा वि पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति दुरूवा वि पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति। सुब्भिगंधा वि पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति दुब्भिगंधा वि पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति। सुरसा वि पोग्गला दुरसत्ताए परिणमंति। दुरसा वि पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति। सुहफासा वि पोग्गला दुहफासत्ताए परिणमंति दुहफासा वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति। पओगवीससापरिणया वि य णं सामी! पोग्गला पण्णत्ता।

शब्दार्थ - सुब्भिसद्दा - प्रशस्त शब्द युक्त, **दुब्भिसद्दा** - अप्रशस्त शब्द युक्त, **पओग-वीससा-परिणया** - प्रयोग तथा स्वभाव से परिणत।

भावार्थ - राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि से दूसरी बार-तीसरी बार कहा - सुबुद्धि! क्या ये मनोज्ञ अशन-पानादि चतुर्विध आहार अत्यंत स्वादनीय यावत् आह्लादप्रद नहीं है?

जितशत्रु द्वारा दो-तीन बार यों कहे जाने पर सुबुद्धि बोला-स्वामी! इन मनोज्ञ अशन-पान आदि में क्या विस्मय है?

स्वामी! यह स्पष्ट है, शुभ शब्द पुद्गल अशुभ शब्द पुद्गलों के रूप में तथा अशुभ शब्द पुद्गल शुभ शब्द पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं। सुंदर रूप पुद्गल कुत्सित रूप मय पुद्गलों में तथा कुत्सित रूपमय पुद्गल सुंदर रूपमय पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं। सुगंध युक्त पुद्गल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गन्ध युक्त पुद्गलों में तथा दुर्गन्ध युक्त पुद्गल सुगंधमय पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं। शुभ रस युक्त पुद्गल अशुभ रस युक्त पुद्गलों में तथा अशुभ रस युक्त पुद्गल शुभ रस युक्त पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं। उसी प्रकार सुख स्पर्श युक्त पुद्गल दुःख स्पर्श युक्त पुद्गलों में तथा दुःख स्पर्शयुक्त पुद्गल सुख स्पर्श युक्त पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं।

स्वामी! पुद्गलों का यह परिणमन प्रयोग से और स्वभाव से-दोनों प्रकार से हो जाता है।

(९)

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइक्खमाणस्स ४ एयमट्ठं णो आढाइ णो परियाणइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

भावार्थ - सुबुद्धि द्वारा कही गई इस बात का राजा ने आदर नहीं किया, गौर नहीं किया, वह चुपचाप रहा।

विवेचन - इन सूत्रों में जो कुछ कहा गया है वह सामान्य-सी बात प्रतीत होती है, किन्तु गंभीरता में उतर कर विचार करने पर ज्ञात होगा कि इस निरूपण में एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य निहित है। सुबुद्धि अमात्य सम्यग्दृष्टि, तत्त्व का ज्ञाता और श्रावक था, अतएव सामान्यजनों की दृष्टि से उसकी दृष्टि भिन्न थी। वह किसी भी वस्तु को केवल चर्म-चक्षुओं से नहीं वरन् विवेक-दृष्टि से देखता था। उसकी विचारणा तात्त्विक, पारमार्थिक और समीचीन थी। यही कारण है कि उसका विचार राजा जितशत्रु के विचार से भिन्न रहा। सम्यग्दृष्टि के योग्य निर्भीकता भी उसमें थी, अतएव उसने अपनी विचारणा का कारण भी राजा को कह दिया। इस प्रकार इस प्रसंग से सम्यग्दृष्टि और उससे इतर जनों के दृष्टिकोण का अन्तर समझा जा सकता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा भोजन, पान, परिधान आदि साधनभूत पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता होता है। उसमें रागद्वेष की न्यूनता होती है, अतएव वह समभावी होता है। किसी वस्तु के उपभोग से न तो चकित विस्मित होता है और न पीड़ा, दुःख या द्वेष का अनुभव करता है। वह यथार्थ वस्तुस्वरूप को जान कर अपने स्वभाव में स्थिर रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव की यह व्यावहारिक कसौटी है।

(१०)

तए णं से जियसत्तू अण्णया कयाइ ण्हाए आसखंधवरगए महयाभडचडगरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसवाहणियाए णिज्जायमाणे तस्स फरिहोदगस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ। तए णं जियसत्तू राया तस्स फरिहोदगस्स असुभेणं गंधेणं अभिभूए रमाणे सएणं उत्तरिज्जगेणं आसगं पिहेइ एगंतं अवक्कमइ २ त्ता बहवे ईसर जाव पभिइओ एवं वयासी-अहो णं देवाणुप्पिया! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं ४ से जहाणामए अहिमडेइ वा जाव अमणामतराए चेव।

शब्दार्थ - **आसवाहणियाए** - घुड़सवारी के लिए, **णिज्जायमाणे** - निकलता हुआ।

भावार्थ - एक बार किसी समय राजा जितशत्रु स्नानादि कर उत्तम घोड़े पर सवार हुआ। बहुत से भटों, योद्धाओं, सामंतों के साथ घुड़ सवारी के लिए निकला। उसी क्रम में वह उस (पूर्ववर्णित) खाई के पास से गुजरने लगा। राजा ने उसे खाई की दुर्गन्ध से घबराकर उत्तरीय वस्त्र से अपना नाक ढक लिया। एकांत में जाता हुआ वह बहुत से अपने साथ चलते हुए, उन विशिष्टजनों से बोला-देवानुप्रियो! इस खाई का पानी वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श में बड़ा ही अमनोज्ञ है, जैसे मरे हुए सांप की यावत् गाय आदि की दुर्गन्ध से भी अधिकतर दुर्गन्ध इसमें है।

(११)

तए णं ते बहवे राईसर जाव पभियओ एवं वयासी-तहेव णं तं सामी! जं णं तुब्भे एवं वयह - अहो णं इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं ४ से जहाणामए अहिमडेइ वा जाव अमणामतराए चेव।

भावार्थ - राजा का कथन सुनकर बहुत से अधीनस्थ राजा, वैभवशालीजन यावत् सार्थवाह आदि इस प्रकार बोले-स्वामी! आप जैसा कहते हैं, यह खाई का पानी वैसा ही वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से अमनोज्ञ है। वह साँप यावत् गाय आदि के मृतकलेवर से भी अधिक दुर्गन्ध युक्त और अमनोज्ञ है।

(१२)

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-अहो णं सुबुद्धी! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं ४ से जहाणामए अहिमडेइ वा जाव अमणामतराए चेव। तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तब राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि से कहा-सुबुद्धि! यह खाई का पानी वर्ण आदि की दृष्टि से बड़ा ही अमनोज्ञ है। यह इतना दुर्गंधित है कि मरे हुए साँप यावत् गाय आदि के मृत शरीर से भी अधिक घृणास्पद है।

(१३)

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धि अमच्चं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-अहो णं तं चेव। तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे एवं वयासी-णो खलु सामी! अम्हं एयंसि फरिहोदगंसि केइ विम्हए। एवं खलु सामी! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति तं चेव जाव पओगवीससापरिणया वि य णं सामी! पोग्गला पण्णत्ता।

भावार्थ - राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य से दूसरी बार-तीसरी बार भी ऐसा ही कहा। राजा द्वारा दो-तीन बार ऐसा कहे जाने पर सुबुद्धि बोला-स्वामी! इस खाई के पानी के संबंध में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि शुभ शब्द पुद्गल अशुभ शब्द पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं यावत् यह पुद्गल परिणमन प्रयोग और स्वभाव-दोनों ही प्रकार से होता है, ऐसा कहा गया है।

(१४)

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-मा णं तुमं देवाणुप्पिया! अप्पाणं च परं च तदुभयं च बहूहि य असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेण य वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहराहि।

शब्दार्थ - **असब्भावुब्भावणाहिं** - असद्भावोद्भावना द्वारा-असत्-अविद्यमान को, सत्-विद्यमान के रूप में प्रकट कर, **मिच्छत्ताभिणिवेसेण** - मिथ्याभिनिवेश-दुराग्रह, **वुग्गाहेमाणे** - समझाते हुए।

भावार्थ - राजा जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि से कहा - देवानुप्रिय! अपने आपको तथा औरों को तुम बहुत प्रकार से असत् को सत् के रूप में प्रतिपादित करते हुए मिथ्या दुराग्रह-अभिनिवेश में मत डालो, ऐसी असत् प्ररूपणा मत करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१५)

तए णं सुबुद्धिस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए० समुप्पज्जित्था - अहो णं जियसत्तू संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूए जिणपण्णत्ते भावे णो उवलभइ। तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सब्भूयाणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमठं उवाइणावेत्तए।

शब्दार्थ - **संते** - सत्, **तच्चे** - तत्त्व, **तहिए** - तथ्य, **अवितहे** - सत्य, **सब्भूए** - सद्भूत-सत्तायुक्त, **अभिगमणट्ठयाए** - सम्यक् अवबोध हेतु-भलीभांति ज्ञान कराने हेतु, **उवाइणावेत्तए** - अंगीकार कराऊँ।

भावार्थ - राजा जितशत्रु का यह कथन सुनने के पश्चात् अमात्य सुबुद्धि के मन में इस प्रकार का विचार यावत् मनोभाव उत्पन्न हुआ कि राजा जितशत्रु सर्वज्ञ प्ररूपित तत्त्व को यथार्थ रूप में स्वीकार नहीं करता। इसलिए अच्छा हो कि मैं राजा जितशत्रु को जिन प्ररूपित सद्भूत, यथार्थ भावों को स्वीकार कराऊँ।

मलिन जल का सुपेय जल में रूपांतरण

(१६)

एवं संपेहेइ २ त्ता पच्चइएहिं पुरिसेहिं सद्धिं अंतरावणाओ णवए घडए य पडए य पगेण्हइ २ त्ता संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि णिसंतपडिणिसंतंसि जेणेव फरिहोदए तेणेव उवागए २ त्ता तं फरिहोदगं गेण्हावेइ २ त्ता णवएसु घडएसु गालावेइ २ त्ता णवएसु घडएसु पक्खिवावेइ २ त्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ लंछियमुद्दिए करावेइ २ त्ता सत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता दोच्चंपि णवएसु घडएसु गालावेइ, गालावेत्ता णवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जक्खारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछियमुद्दिए कारवेइ कारवेत्ता सत्तरत्तं परिवसावेइ २ त्ता तच्चंपि णवेसु घडएसु जाव संवसावेइ।

शब्दार्थ - **पच्चइएहिं** - विश्वस्त, **अंतरावणाओ** - ग्रामांतरवर्ती दूकान से, **सज्जखारं** - साजी का खार।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यों विचार कर सुबुद्धि ने विश्वस्त पुरुषों से ग्रामांतरवर्ती हाट से मिट्टी के नए घड़े और पानी छानने के लिए कपड़े मंगवाए। संध्याकाल के समय जब लोगों का आना-जाना बहुत कम था, वह खाई के पास गया। खाई के पानी को नए घड़ों में छनवाया। उस छने हुए पानी को फिर नए घड़ों में डलवाया। वैसा कर उन पर मुहर लगवा दी। सात दिन रात तक उनको वैसे ही पड़े रखा। फिर दूसरी बार उस पानी को नए घड़ों में छनवाया। छनवा कर नए घड़ों में डलवाया। उसमें साजी का खार या ताजी राख डलवायी। डलवा कर उन पर मोहर लगवाई। सात दिन रात तक उनको (पुनः) वैसे ही रहने दिया। तदनंतर तीसरी बार भी नए घड़ों में छनवाया यावत् मुद्रित कर सात-दिन रात के लिए रखवा दिया।

(१७)

एवं खलु एएणं उवाएणं अंतरा गलावेमाणे अंतरा पक्खिवावेमाणे अंतरा य विपरिवसावेमाणे २ सत्तसत्त य राइंदियाइं विपरिवसावेइ। तए णं से फरिहोदए सत्तमंसि सत्तयंसि परिणममाणंसि उदगरयणे जाए यावि होत्था अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे वण्णेणं उववेए ४ आसायणिज्जे जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।

शब्दार्थ - सत्तमंसि सत्तयंसि - सात सप्ताह में।

भावार्थ - इस विधि से बीच-बीच में पानी को छनवाता रहा, घड़ों में डलवाता रहा और सात-सात दिन-रात तक उसे रखवाया जाता रहा। सात सप्ताह में शुद्ध होता हुआ वह उदक रत्न अति उत्तम पेय जल के रूप में परिणत हो गया। वह स्वच्छ, पथ्य, श्रेष्ठ, हल्का और आभा में स्फटिक की तरह पारदर्शी, उत्तम गंध, वर्ण, रस एवं स्पर्श युक्त हो गया। आस्वादनीय यावत् समस्त इन्द्रिय और शरीर के लिए अत्यधिक आनंदप्रद बन गया।

(१८)

तए णं सुबुद्धी अमच्चे जेणेव से उदगरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयलंसि आसादेइ २ त्ता तं उदगरयणं वण्णेणं उववेयं ४ आसायणिज्जे जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जं जाणित्ता हट्ठतुट्ठे बहूहिं उदगसंभारणिज्जेहि दव्वेहिं संभारेइ २ त्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जियसत्तुस्स रण्णो पाणियघरियं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-तुमं च णं देवाणुप्पिया! इमं उदगरयणं गेण्हाहि २ त्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेज्जासि।

शब्दार्थ - पाणियघरियं - जलागार के अधिकारी को।

भावार्थ - अमात्य सुबुद्धि जहां पानी था, वहाँ आया। उस जल का चुल्लु-हथेली में लेकर आस्वादन किया। उसने पाया कि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि सभी दृष्टियों से यह जल उत्तम हो गया है। यह आस्वादन योग्य है, यावत् सभी इन्द्रियों एवं शरीर के लिए आनंदप्रद है। इससे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने फिर जल में सुरभित सुस्वादु बनाने वाले पदार्थ मिलाकर उसको संस्कारित किया।

फिर उसने जलागार के अधिकारी को बुलाया और उससे कहा - देवानुप्रिय! तुम इस उत्तम जल को ले जाओ, जब राजा जितशत्रु भोजन करें, तब इसे प्रस्तुत करो।

(१९)

तए णं से पाणियघरिए सुबुद्धियस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता तं उदगरयणं गिण्हाइ २ त्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवट्ठवेइ। तए णं से जियसत्तू राया तं विपुलं असणं ४ आसाएमाणे जाव विहरइ जिमियभुत्तुत्तरायया वि य णं जाव परमसुइभूए तंसि उदगरयणे जायविम्हए ते बहवे राईसर जाव एवं वयासी-अहो णं देवाणुप्पिया! इमे उदगरयणे अच्छे जाव सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे। तए णं ते बहवे राईसर जाव एवं वयासी-तहेव णं सामी! जण्णं तुब्भे वयह जाव एवं चेव पल्हायणिज्जे।

भावार्थ - जलाधिकारी ने सुबुद्धि का कथन स्वीकार किया। उसने उत्तम जल को लिया तथा जितशत्रु राजा के भोजन के समय उसे उपस्थापित किया। राजा जितशत्रु ने यथेष्ट अशन-पान आदि का आस्वादन लेते हुए यावत् भोजन किया। भोजन कर लेने के पश्चात् यावत् हाथ-मुंह आदि धोकर राजा स्वच्छ हुआ।

उस उत्तम जल को पीया तो वह बहुत विस्मित हुआ। उसने अपने सान्निध्यवर्ती राजा, ऐश्वर्यशाली सामंत यावत् विशिष्टजनों से यों कहा-देवानुप्रियो! यह उदक रत्न कितना स्वच्छ यावत् समस्त इन्द्रिय एवं शरीर के लिए अत्यधिक आह्लादप्रद है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे बहुत से राजा, सामन्त यावत् विशिष्ट दरबारी लोग यों बोले-स्वामी! जैसा आप कहते हैं, यह वैसा ही अत्यंत सुखप्रद है।

प्रयोगजनित पुद्गल परिणमन

(२०)

तए णं जियसत्तू राया पाणियघरियं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एस णं तुब्भे देवाणुप्पिया! उदगरयणे कओ आसाइए ? तए णं से पाणियघरिए जियसत्तुं एवं वयासी-एस णं सामी! मए उदगरयणे सुबुद्धिस्स अंतियाओ आसाइए। तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-अहो णं सुबुद्धि! केणं कारणेणं अहं तव अणिट्ठे ५ जेणं तुमं मम कल्लाकल्लिं भोयणवेलाए इमं उदगरयणं ण उवट्ठवेसि? तं एस (तए) णं तुमे देवाणुप्पिया! उदगरयणे कओ उवलद्धे? तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी-एस णं सामी! से फरिहोदए। तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी-केण कारणेणं सुबुद्धी! एस से फरिहोदए? तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी-एवं खलु सामी! तुम्हे तया मम एवमाइक्खमाणस्स ४ एयमट्ठं णो सद्दहह तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए०-अहो णं जियसत्तू संते जाव भावे णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ। तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं जाव सब्भूयाणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगम-णट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए। एवं संपेहेमि २ त्ता तं चेव जाव पाणियघरियं सद्दावेमि २ त्ता एवं वदामि-तुमं णं देवाणुप्पिया! उदगरयणं जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेहि। तं एएणं कारणेणं सामी! एस से फरिहोदए।

शब्दार्थ - **सद्दहइ** - श्रद्धा की-विश्वास किया।

भावार्थ - इसके पश्चात् राजा जितशत्रु ने जलगृह के अधिकारी को बुलाया और पूछा-देवानुप्रिय! यह उत्तम जल तुम्हें कहाँ से मिला? जलगृह अधिकारी ने राजा से निवेदन किया-स्वामी! यह श्रेष्ठ जल मुझे अमात्य सुबुद्धि के पास से प्राप्त हुआ। तब राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य को बुलाया और कहा - सुबुद्धि! मैं तुम्हारे लिए किस कारण से अकांत, अनिष्ट,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्रिय, अमनोज्ञ, अमनोहर हूँ, जिससे तुमने नित्यप्रति भोजन वेला में उत्तम जल नहीं भेजा। देवानुप्रिय! यह उत्तम जल तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुआ? तब सुबुद्धि अमात्य जितशत्रु से बोला- स्वामी! यह उसी खाई का पानी है। इस पर जितशत्रु ने सुबुद्धि से कहा - यह खाई का जल कैसे हो सकता है? तब सुबुद्धि राजा से बोला - स्वामी! मैंने जब खाई के जल के संदर्भ में, पुद्गल परिणमन के विषय में कहा था, प्रज्ञापित किया था, तब आपने उस पर विश्वास नहीं किया। इस पर मेरे मन में विचार, चिंतन और संकल्प उत्पन्न हुआ कि राजा जितशत्रु सद्भूत तत्त्व यावत् सत्यमूलक भाव में विश्वास नहीं करते, प्रतीति नहीं करते तथा न इसे समझने में इन्हें रुचि ही है। इसलिए यह अच्छा होगा कि मैं राजा जितशत्रु को सत् यावत् सद्भूत तत्त्व के संदर्भ में, जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्ररूपित तत्त्व के बारे में अवगत कराऊँ। ऐसा मैंने निश्चय किया।

तदनंतर सुबुद्धि ने जल-शोधन की सारी प्रक्रिया बतलाते हुए राजा से कहा कि जल के अत्यंत शुद्ध स्वाद युक्त होने पर जलगृह अधिकारी को बुलाया और कहा—देवानुप्रिय! इस उत्तम जल को भोजन के समय राजा की सेवामें प्रस्तुत करो।

स्वामी! इस प्रकार मूलतः यह खाई का ही जल है।

(२१)

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स (अमच्चस्स) एवमाइक्खमाणस्स ४ एयमट्ठं णो सद्दहइ ३ असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोयमाणे अब्भिंतरट्ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अंतरावणाओ णव घडए पडए य गेण्हइ जाव उदगसंहारणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेह। तेवि तहेव संभारेंति २ त्ता जियसत्तुस्स उवणेंति। तए णं से जियसत्तू राया तं उदगरयणं करयलंसि आसाएइ आसायणिज्जं जाव सव्विंदियगायपल्हायणिज्जं जाणित्ता सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-सुबुद्धी! एए णं तुमे संता तच्चा जाव सब्भूया भावा कओ उवलद्धा? तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी-एए णं सामी! मए संता जाव भावा जिणवयणाओ उवलद्धा।

शब्दार्थ - **अरोयमाणे** - अरोचमान-अरुचिकर मानता हुआ, **अब्भिंतर ट्ठाणिज्जे** - निरंतर सान्निध्य सेवी, **संभारेह** - संस्कारित करो।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

भावार्थ - राजा ने सुबुद्धि के कथन, प्रतिपादन, प्ररूपण पर विश्वास नहीं किया, प्रतीति नहीं की। उसे सुबुद्धि का कथन अरुचिकर लगा।

उसने अपने सतत सान्निध्य सेवी कर्मचारियों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! तुम जाओ और कुम्हार की दुकान से नये घड़े और पानी छानने का वस्त्र लाओ यावत् सुबुद्धि प्रतिपादित जल-संस्कार-विधि से खाई के पानी को शुद्ध करो। सुरभि तथा स्वादवर्धक द्रव्य मिलाकर संस्कारित करो।

उन कर्मचारियों ने उसी विधि से जल को संस्कारित किया तथा राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा जितशत्रु ने उस उत्तम जल को चुल्लु में लेकर चखा। उसका स्वाद बड़ा ही उत्तम था यावत् वह समस्त इन्द्रिय और देह के लिए बड़ा ही सुखप्रद प्रतीत हुआ। राजा ने अमात्य को बुलाया और कहा - सुबुद्धि! तुमने सत् तत्त्व यावत् सद्भूत सत्यमूलक भावों का ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया?

सुबुद्धि अमात्य राजा से बोला—स्वामी! मैंने यह सत् तत्त्व यावत् एतद् विषयक ज्ञान जिनवाणी से प्राप्त किया।

विवेचन - जैन दर्शन के अनुसार जगत् की प्रत्येक वस्तु द्रव्य-पर्यायात्मक है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो द्रव्य और पर्याय मिलकर ही वस्तु कहलाती हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो केवल द्रव्य स्वरूप हो और पर्याय उसमें न हों। ऐसी भी कोई वस्तु नहीं जो एकान्त पर्यायमय हो, द्रव्य न हो। जीव द्रव्य हो किन्तु सिद्ध, देव, मनुष्य, तिर्यंच अथवा नारक पर्याय में से कोई भी न हो, यह असंभव है। सार यह कि प्रत्येक वस्तु में द्रव्य और पर्याय—दोनों अंश अवश्य ही विद्यमान होते हैं।

जब द्रव्य-अंश को प्रधान और पर्याय अंश को गौण करके वस्तु का विचार किया जाता है तो उसे जैन परिभाषा के अनुसार द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और जब पर्याय को प्रधान और द्रव्य को गौण करके देखा जाता है तब वह दृष्टि पर्यायार्थिकनय कहलाती है। दोनों दृष्टियाँ जब अन्योन्यापेक्ष होती हैं तभी वे समीचीन कही जाती हैं।

वस्तु का द्रव्यांश नित्य, शाश्वत, अवस्थित रहता है, उसका न तो कभी विनाश होता है न उत्पाद। अतएव द्रव्यांश की अपेक्षा से प्रत्येक वस्तु चाहे वह जड़ हो या चेतन, ध्रुव ही है। मगर पर्याय नाशशील होने से क्षण-क्षण में उनका उत्पाद और विनाश होता रहता है। इसी कारण प्रत्येक पदार्थ उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यमय है। भगवान् ने अपने शिष्यों को यह मूल तत्त्व सिखाया था -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा।"

प्रस्तुत सूत्र में पुद्गलों को परिणमनशील कहा गया है, वह पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से समझना चाहिये।

प्रश्न हो सकता है कि जब सभी पदार्थ-द्रव्य परिणमनशील हैं तो यहाँ विशेष रूप से पुद्गलों का ही उल्लेख क्यों किया गया है? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है - परिणमन तो सभी में होता है किन्तु अन्य द्रव्यों के परिणमन से पुद्गल के परिणमन में कुछ विशिष्टता है। पुद्गल द्रव्य के प्रदेशों में संयोग-वियोग होता है, अर्थात् पुद्गल का एक स्कन्ध (पिंड) टूटकर दो भागों में विभक्त हो जाता है, दो पिण्ड मिलकर एक पिण्ड बन जाता है, पिण्ड में से एक परमाणु-उसका निरंश अंश पृथक् हो सकता है। वह कभी-कभी पिण्ड में मिलकर स्कन्ध रूप धारण कर सकता है। इस प्रकार पुद्गल द्रव्य के प्रदेशों में हीनाधिकता, मिलना-बिछुड़ना होता रहता है। किन्तु पुद्गल के सिवाय शेष द्रव्यों में इस प्रकार का परिणमन नहीं होता। जीव, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि के प्रदेशों में न न्यूनाधिकता होती है, न संयोग या वियोग होता है। उनके प्रदेश जितने हैं, उतने ही सदा काल अवस्थित रहते हैं। अन्य द्रव्यों के परिणमन से पुद्गल के परिणमन की इसी विशिष्टता के कारण संभवतः यहाँ पुद्गलों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया।

दूसरा कारण यह हो सकता है कि प्रस्तुत सूत्र में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के संबन्ध में कथन किया गया है और ये चारों गुण केवल पुद्गल में ही होते हैं, अन्य द्रव्यों में नहीं।

यहाँ एक तथ्य और ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि प्रत्येक द्रव्य का गुण भी द्रव्य की ही तरह नित्य अविनाशी है, परन्तु उन गुणों के पर्याय, द्रव्य के पर्यायों की भांति परिणमनशील हैं। वर्ण पुद्गल का गुण है। उसका कभी विनाश नहीं होता। काला, पीला, लाल, नीला और श्वेत, वर्ण-गुण के पर्याय हैं। इनमें परिवर्त्तन होता रहता है। गंध गुण स्थायी है, सुगन्ध और दुर्गन्ध उसके पर्याय हैं। अतएव गंध नित्य और उसके पर्याय अनित्य हैं। इसी प्रकार रस और स्पर्श के संबन्ध में समझ लेना चाहिए।

परिणमन की यह धारा निरन्तर, क्षण-क्षण, पल-पल, प्रत्येक समय, प्रवाहित होती रहती है, किन्तु सूक्ष्म परिणमन हमारी दृष्टि में नहीं आता। जब परिणमन स्थूल होता है तभी हम उसे जान पाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई शिशु पल-पल में वृद्धिंगत होता रहता है किन्तु उसकी वृद्धि का अनुभव हमें तभी होता है जब वह स्थूल रूप धारण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुबुद्धि प्रधान ने राजा जितशत्रु के समक्ष यही तत्त्व रक्खा। इस तत्त्व का प्रतिपादन जिनागम में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं। जितशत्रु के पूछने पर सुबुद्धि ने यह बात भी स्पष्ट कर दी है।

(२२)

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी-तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तव अंतिए जिणवयणं णिसामित्तए। तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपण्णत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ तमाइक्खइ जहा जीवा बज्झंति जाव पंचाणुव्वयाइं।

शब्दार्थ - **विचित्तं** - अद्भुत, पहले न सुना गया, **णिसामित्तए** - सुनने के लिए।

भावार्थ - तब राजा जितशत्रु ने सुबुद्धी से कहा-देवानुप्रिय! मैं तुमसे जिनवचन - जिनेन्द्र प्ररूपित धर्म सुनना चाहता हूँ।

सुबुद्धि ने जितशत्रु राजा को अद्भुत पहले न सुना हुआ(अपूर्वश्रुत) चातुर्याम धर्म कहा। जीव किस प्रकार कर्म बद्ध होते हैं? किस प्रकार मुक्त होते हैं, छूटते हैं, यह व्याख्यात किया यावत् पांच अणुव्रतों का प्रतिपादन किया।

विवेचन - जैन परम्परा में श्रुत चारित्र रूप धर्म का पांच महाव्रत तथा चातुर्याम धर्म दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। यथार्थतः दोनों एक ही हैं किन्तु समझने वाले लोगों की योग्यता तथा मनोवृत्ति आदि की दृष्टि से उनके प्रतिपादन विवेचन में अंतर हुआ है। उत्तराध्ययन सूत्र के तेवीसवें अध्ययन में यह विषय भगवान् महावीर स्वामी के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम और पार्श्व परम्परा के मुनि केशी श्रमण के बीच चर्चित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है, भगवान् महावीर स्वामी के समय पार्श्व परंपरा के मुनि भी विद्यमान थे, जो पार्श्वापत्य कहलाते थे। एक समय ऐसा प्रसंग बना कि श्रावस्ती नगरी में कुमार केशी श्रमण एवं गौतम-दोनों का आगमन हुआ।

गौतम स्वामी पंचमहाव्रत मूलक धर्म की प्ररूपणा करते थे। जबकि कुमार केशी श्रमण चातुर्याम धर्म का उपदेश करते थे। इससे यह ऊहापोह होने लगा कि एक ही निर्ग्रन्थ परंपरा में यह दो प्रकार की प्ररूपणा कैसे है? गौतम स्वामी इस विषय में चर्चा करने हेतु केशीकुमार श्रमण के पास आए। केशी स्वामी ने उनका आदर किया। दोनों के बीच उन विषयों पर चर्चा हुई, जिनमें शाब्दिक दृष्टि से भेद सा दृष्टि गोचर होता था। उनमें मुख्य विषय पंच महाव्रत और चतुर्याम का था। उनके संबंध में कुमार केशीश्रमण ने जिज्ञासा की-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी!॥
एगकज्जपवण्णाणं विसेस किं नु कारणं?
धम्मे दुविहे मेहावी, कहं विप्पच्चओ न ते✿?

भगवान् पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की तथा भगवान् महावीर स्वामी द्वारा पंचमहाव्रतमूलक धर्म प्रतिपादित हुआ। एक ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्त इन दोनों महापुरुषों की प्ररूपणा में यह विशेषता, अंतर क्यों है? धर्म की इस प्रकार की गई दो प्रकार की प्ररूपणा से क्या विप्रत्यय-संदेह नहीं होता?

कुमारकेशीश्रमण द्वारा यों जिज्ञासित किए जाने पर गौतमस्वामी ने कहा -

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी।
पण्णा समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छियं॥
पुरिमा उज्जुजडा उ, वंकजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपण्णा उ, तेण धम्मे दुहा कए॥
पुरिमाणं दुव्विसुज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसुज्झो सुपालओ✡॥

विशिष्ट ज्ञानियों की प्रज्ञा द्वारा धर्म की समीक्षा की जाती है तथा तत्त्व का निश्चय किया जाता है।

प्रथम तीर्थंकर के समय लोग ऋजुजड़ होते हैं तथा अंतिम तीर्थंकर के समय के लोग वक्रजड़ होते हैं। दोनों के बीच के—दूसरे से तेवीसवें तीर्थंकर के समय के लोग ऋजुप्राज्ञ होते हैं। इसी आधार पर धर्म का यह द्विविध प्रतिपादन हुआ है।

पहले तीर्थंकर के समय के लोगों को ऋजुता-जड़ता के कारण धर्म को भलीभांति समझना कठिन होता है। अतएव उन्हें समझाने हेतु पांचों महाव्रतों का पृथक्-पृथक् उपदेश दिया जाता है। अंतिम तीर्थंकर के समय के लोग अनुपालन में कठिनाई अनुभव करते हैं, अतः बचने का कोई रास्ता निकाल लें, ऐसा आशंकित होता है। अतः वहाँ पृथक्-पृथक् रूप में महाव्रतों का

✿ उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २३ गाथा २३-२४।

✡ उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २३ गाथा २५-२७।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आख्यान हुआ है। मध्यवर्ती तीर्थंकरों के लोग सरलता पूर्वक धर्म को यथावत् समझने एवं पालन करने में तत्पर रहते हैं। अतएव ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह को एक कर चार यामों का विवेचन हुआ। क्योंकि यथार्थ बुद्धि से समझने पर उन चार यामों में पांचों महाव्रत स्वयं ही आ जाते हैं। केवल चार-पांच की संख्या के अतिरिक्त तत्त्व में कोई भेद नहीं होता।

इस सूत्र में मंत्री सुबुद्धि द्वारा राजा जितशत्रु को चातुर्याम धर्म कहे जाने का जो उल्लेख हुआ है, इससे यह प्रकट होता है कि सुबुद्धि अमात्य चातुर्याम धर्म वाली (बीच के बावीस तीर्थंकरों की या महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों में से किसी एक तीर्थंकर की) परम्परा का अनुयायी रहा होगा, ऐसा सूत्र पाठ से प्रतीत होता है। अतएव उसने पांच महाव्रत न कह कर चार यामों का विवेचन किया।

(२३)

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ० सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-सद्दहामि णं देवाणुप्पिया! णिग्गंथं पावयणं ३ जाव से जहेयं तुब्भे वयह। तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।

भावार्थ - राजा जितशत्रु सुबुद्धि से धर्म सुनकर हर्षित एवं परितुष्ट हुआ। उसने सुबुद्धि से कहा—देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हूँ यावत् जैसा तुम कहते हो, वैसा ही है।

इसलिए मैं तुमसे पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत यावत् द्वादशविध श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ।

सुबुद्धि ने कहा - देवानुप्रिय! जिससे आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा ही करें किन्तु इसमें व्यवधान, विलंब न करें।

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ। तए णं जियसत्तू समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

भावार्थ - तब राजा जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि से पांच अणुव्रत यावत् द्वादशविध श्रावक धर्म स्वीकार किया। राजा जितशत्रु श्रमणोपासक हो गया यावत् उसने जीव-अजीव तत्त्वों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान प्राप्त किया और श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक-एषणीय दान देता हुआ रहने लगा, धार्मिक जीवन जीने लगा।

विवेचन - श्रावकपन अमुक कुल में उत्पन्न होने-जन्म लेने से नहीं आता। वह जातिगत विशेषता भी नहीं है। प्रस्तुत सूत्र स्पष्ट निर्देश करता है कि श्रावक होने के लिए सर्वप्रथम वीतराग प्ररूपित तत्त्वस्वरूप पर श्रद्धा होनी चाहिए। वह श्रद्धा भी ऐसी अचल, अटल हो कि मनुष्य तो क्या, देव भी उसे विचलित न कर सके। मुमुक्षु को जिनागम प्ररूपित नौ तत्त्वों का ज्ञान अनिवार्य है। उसे इतना सत्त्वशाली होना चाहिए कि देवगण डिगाने का प्रयत्न करके थक जाएं, पराजित हो जाएँ, किन्तु वह अपने श्रद्धान और अनुष्ठान से डिगे नहीं।

मनुष्य जब श्रावकवृत्ति स्वीकार कर लेता है, तब उसके आन्तरिक जीवन बाह्य व्यवहार में भी पूरी तरह परिवर्त्तन आ जाता है। उसका रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल आदि समस्त व्यवहार बदल जाता है। श्रावक मानो उसी शरीर में रहता हुआ भी नूतन जीवन प्राप्त करता है। उसे समग्र जगत् वास्तविक स्वरूप में दृष्टि-गोचर होने लगता है। उसकी प्रवृत्ति भी तदनुकूल ही हो जाती है। राजा प्रदेशी आदि इस तथ्य के उदाहरण हैं।

निर्ग्रन्थ मुनियों के प्रति उसके अन्तःकरण में कितनी गहरी भक्ति होती है, यह सत्य भी प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित कर दिया गया है।

इस सूत्र से राजा और उसके मंत्री के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध प्राचीनकाल में होता था अथवा होना चाहिए, यह भी विदित होता है।

(२५)

तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। जियसत्तू राया सुबुद्धी य णिग्गच्छइ। सुबुद्धी धम्मं सोच्चा जं णवरं जियसत्तुं आपुच्छामि जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - उस काल उस समय चंपा नगरी में स्थविर मुनियों का पदार्पण हुआ। राजा जितशत्रु और सुबुद्धि उनके दर्शन, वंदन हेतु गए।

यहाँ इतना अंतर है, सुबुद्धि ने स्थविरों से धर्मोपदेश सुनकर निवेदन किया - मैं जितशत्रु राजा से पूछ कर उसकी अनुज्ञा लेकर यावत् आपसे प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहता हूँ।

यह सुनकर स्थविरों ने सुबुद्धि से कहा - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२६)

तए णं सुबुद्धी जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु सामी! मए थेराणं अंतिए धम्मे णिसंते। से वि य धम्मे इच्छिय पडिच्छिए ३। तए णं अहं सामी! संसारभउविग्गे भीए जाव इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए स० जाव पव्वइत्तए। तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी-अच्छसु ताव देवाणुप्पिया! कइवयाइं वासाइं उरालाइं जाव भुंजमाणा तओ पच्छा एगयओ थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वइस्सामो।

शब्दार्थ - **अच्छसु** - रहो, **एगयओ** - एक साथ।

भावार्थ - तत्पश्चात् अमात्य सुबुद्धि जितशत्रु के पास गया - उसने इस प्रकार कहा - स्वामी! मैंने स्थविर मुनियों से धर्म सुना है। वह धर्म मुझे बहुत इच्छित, अभीप्सित एवं रुचिकर है। स्वामी! मैं संसार भय से भयभीत हूँ यावत् आप से अनुज्ञा प्राप्त कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

यह सुनकर राजा जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि से कहा - देवानुप्रिय! कुछ वर्ष तक विपुल यावत् सांसारिक भोगों को भोगते हुए संसार में रहो तत्पश्चात् एक साथ ही हम स्थविर मुनियों के पास मुण्डित होकर यावत् श्रमण दीक्षा स्वीकार करेंगे।

(२७)

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ। तए णं तस्स जियसत्तुस्स रण्णो सुबुद्धिणा सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं जाव पच्चणुब्भवमाणस्स दुवालस वासाइं वीइक्कताइं। तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। तए णं जियसत्तू धम्मं सोच्चा एवं जं णवरं देवाणुप्पिया! सुबुद्धिं आमंतेमि जेट्ठपुत्तं रज्जे ठवेमि तए णं तुब्भं जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! तए णं जियसत्तू राया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सुबुद्धिं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु मए थेराणं जाव पव्वज्जामि, तुमं णं किं करेसि? तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी-जाव के अण्णे आहारे वा जाव पव्वयामि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अमात्य सुबुद्धि ने राजा के इस कथन को स्वीकार किया। तदनंतर सुबुद्धि के साथ मानव जीवन संबंधी विपुल सुख भोग भोगते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए।

उस काल, उस समय स्थविर मुनियों का आगमन हुआ। राजा जितशत्रु ने उनसे धर्म सुना। यहाँ इतना अंतर या विशेष बात है, उसने धर्म सुनकर स्थविरों से कहा - मैं सुबुद्धि को मेरे साथ दीक्षा लेने हेतु आमंत्रित कर लूं। ज्येष्ठ पुत्र को राज्य भार सौंप दूँ, ऐसा कर मैं आपके पास मुनि दीक्षा ग्रहण करूँगा। स्थविर भगवंत बोले-देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो।

तदनंतर राजा जितशत्रु अपने महल में आया और सुबुद्धि से कहा - मैं स्थविर मुनियों से यावत् दीक्षा ग्रहण करूँगा, क्या तुम भी ऐसा करोगे?

तब सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु से इस प्रकार कहा - राजन! आप प्रव्रज्या ले रहे हैं तो इस संसार में मेरे लिए और क्या आधार है? अर्थात् मैं भी दीक्षा लूँगा।

(२८)

तं जइ णं देवाणुप्पिया! जाव पव्वयह। गच्छह णं देवाणुप्पिया! जेट्ठपुत्तं च कुडुंबे ठावेहि २ त्ता सीयं दुरुहित्ताणं ममं अंतिए सीया जाव पाउब्भवइ। तए णं सु० जाव पाउब्भवइ तए णं जियसत्तू कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी- गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अदीणसत्तूस्स कुमारस्स रायाभिसेयं उवट्ठवेह जाव अभिसिंचंति जाव पव्वइए।

भावार्थ - राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि से कहा - देवानुप्रिय! यदि तुम प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहते हो यावत् जाओ अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपो, शिविका पर आरूढ होकर मेरे पास आओ।

तब सुबुद्धि अमात्य शिविका पर आरूढ हुआ यावत् राजा के पास पहुँचा। तदनंतर राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा - देवानुप्रियो! जाओ राजकुमार अदीन-शत्रु के राज्याभिषेक की व्यवस्था करो यावत् राज्याभिषेक संपन्न हुआ यावत् राजा जितशत्रु और अमात्य सुबुद्धि प्रव्रजित हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२९)

तए णं जियसत्तू एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ बहूणि वासाणि परियाओ पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे। तए णं सुबुद्धी एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि जाव सिद्धे।

भावार्थ - राजा जितशत्रु ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक साधु पर्याय का पालन कर, अंत में एक मास की संलेखना पूर्वक सिद्धि-मुक्ति प्राप्त की।

अमात्य सुबुद्धि ने भी ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया एक मासिक संलेखना कर, वह भी सिद्ध-मुक्त हुआ।

(३०)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं बारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने बारहवें ज्ञाता अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है। जैसा मैंने सुना वैसा ही कहा है।

गाहा - मिच्छत्तमोहियमणा पावपसत्तावि पाणिणो विगुणा।
फरिहोदगं व गुणिणो हवंति वरगुरु पसायाओ॥१॥

॥ बारसमं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - **पावपसत्ता** - पाप प्रसक्त-पापों में विशेष रूप से लिप्त, **विगुणा** - गुण रहित, **पसायाओ** - प्रसाद-कृपा से।

भावार्थ - जिनका मन मिथ्यात्व से मूढ बना हुआ है, जो पाप कार्यों में लगे रहते हैं, गुण रहित हैं - ऐसे प्राणी भी, खाई के पानी की तरह उत्तम संयोग से-उत्तम गुरु की कृपा से गुणी हो जाते हैं।

॥ बारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडुक्के णामं तेरसमं अज्झयणं

मण्डुक (दर्दुर) ज्ञात नामक तेरहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं बारसमस्स णा० अयमट्ठे पण्णत्ते तेरसमस्स णं भंते! णाय० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा-भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने बारहवें ज्ञाताध्ययन का पूर्वोक्त रूप में अर्थ कहा है, विवेचन किया है, तो तेरहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है, कृपया फरमावें।

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे० गुणसिलए चेइए समोसरणं परिसा णिग्गया।

भावार्थ - उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था, जहाँ गुणशील नामक चैत्य था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। परिषद् धर्मोपदेश श्रवण हेतु उपस्थित हुई।

(३)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए दद्दुरंसि सीहासणंसि दद्दुरे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिसाहिं एवं जहा सुरियाभो जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणो विहरइ इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ जाव णट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगए जहा सूरियाभे।

शब्दार्थ - **केवलकप्पं** - संपूर्ण जंबूद्वीप, **अग्गमहिसीहिं** - पट्ट देवियों के साथ।

भावार्थ - उस काल, उस समय सौधर्म कल्प में, उत्तम दुर्दरावतंसक विमान में, सुधर्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सभा में, दर्दुर सिंहासन पर, दर्दुर देव अपने चार हजार सामानिक देवों, अपनी-अपनी परिषदों से युक्त चार पट्ट देवियों के साथ, सूर्याभ देव की तरह दिव्य भोग भोगता हुआ स्थित था। यावत् वह भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन, वंदन हेतु उपस्थित हुआ। उसने सूर्याभ देव की तरह नाटक दिखाया एवं वापस लौट गया।

विवेचन - सूर्याभ देव का वर्णन रायपसेणिय सूत्र में विस्तार से किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

गौतम का प्रश्न : भगवान् द्वारा समाधान

(४)

भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं ३ वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता एवं वयासी-अहो णं भंते! दद्दुरे देवे महिड्डिए ६। दद्दुरस्स णं भंते! देवस्स सा दिव्वा देविड्डी ३ कहिं गया? कहिं अणुपविट्ठा? गोयमा! सरीरं गया सरीरं अणुपविट्ठा कूडागारदिट्ठंतो।

भावार्थ - भगवान् गौतम ने प्रभु महावीर स्वामी को वंदन, नमन कर पूछा - भगवन्! अभी-अभी इस दर्दुर देव का ऋद्धि, द्युति, बल, यश, सुख और प्रभाव था, वह दिव्य ऋद्धि, द्युति और प्रभाव कहाँ समा गया?

भगवान् ने उत्तर दिया-हे गौतम! वह देव ऋद्धि उसके शरीर में अनुप्रविष्ट हो गई-समा गई। यह कूटागार दृष्टांत द्वारा ज्ञातव्य है।

विवेचन - इस सूत्र में निर्देशित "कूटागार शाला" का दृष्टांत संक्षेप में इस प्रकार है -

कूट का अर्थ शिखर होता है। एक शिखराकार विशाल भवन था। उसके भीतर विशाल शाला थी जो लिपी-पुती एवं सुसज्जित थी। किन्तु वह भवन इस प्रकार बना था कि बाहर से भीतर का निर्माण दृष्टिगत नहीं होता था। उसके चारों ओर परकोटा था। उसके समीप बहुत बड़ी आबादी थी, बहुत लोग रहते थे।

एक बार का प्रसंग है, घोर वर्षा एवं तूफान का उपद्रव हुआ। उससे बचने के लिए वे सब लोग उस कूटागार शाला में प्रविष्ट हो गए। वहाँ जाने पर वे वर्षा एवं तूफान से सर्वथा निर्भीक हो गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार वे सब लोग उस शाला में अनुप्रविष्ट हो गए थे, उसी प्रकार वैक्रिय लब्धि जनित देव ऋद्धि द्युति आदि उस देव के शरीर में अनुप्रविष्ट हो गई।

(५)

दद्दुरेणं भंते! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी ३ किण्णा लद्धा जाव अभिसमण्णागया?

भावार्थ - गणधर गौतम ने भगवान् से पुनः जिज्ञासा की- हे भगवन्! दर्दुर देव ने यह दिव्य ऋद्धि किस प्रकार उपलब्ध की यावत् प्राप्त की, स्वायत्त की।

नन्द मणिकार

(६)

एवं खलु गोयमा! इहेव जंबुद्दीवे २ भारहेवासे रायगिहे गुणसिलए चेइए सेणिए राया। तत्थ णं रायगिहे णंदे णामं मणियार सेट्ठी परिवसइ अड्ढे दित्ते०।

भावार्थ - हे गौतम! जंबूद्वीप में, भारत वर्ष में राजगृह नामक नगर था, श्रेणिक वहाँ का राजा था। वहाँ राजगृह नगर में नंद नामक मणिकार श्रेष्ठी निवास करता था। वह धनाढ्य दीप्तिमान यावत् सब द्वारा आदरणीय था।

(७)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा! समोसढे परिसा णिग्गया सेणिए वि राया णिग्गए। तए णं से णंदे मणियार सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए पायचारेणं जाव पज्जुवासइ। णंदे धम्मं सोच्चा समणोवासए जाए। तए णं अहं रायगिहाओ पडिणिक्खंते बहिया जणवय विहारं विहरामि।

शब्दार्थ - पायचारेणं - पैदल चलकर, **पडिणिक्खंते** - प्रतिनिष्क्रांत हुआ।

भावार्थ - गौतम! उस काल, उस समय मैं गुणशील नामक चैत्योद्यान में आया। वंदन, नमन हेतु परिषद् आयी, श्रेणिक राजा भी आया। मणिकार श्रेष्ठी नंद ने मेरे आगमन का समाचार सुना। उसने स्नानादि नित्य कर्म किए यावत् वह सन्निधि में आया, पर्युपासना की। फिर वह मुझसे धर्मोपदेश सुनकर श्रमणोपासक बना उसने श्रावक व्रत स्वीकार किए। तत्पश्चात् मैंने राजगृह नगर से विहार किया एवं जनपदों में विचरणशील रहा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नन्द का सम्यक्त्व से वैमुख्य

(८)

तए णं से णंदे मणियार सेट्ठी अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणाए य अणणुसासणाए य असुस्सूसणाए य सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं २ मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं २ मिच्छत्तं विप्पडिवण्णे जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - असाहुदंसणेण - साधुओं का दर्शन न होने से, **अपज्जुवासणाए** - उनका सान्निध्य लाभ न होने से, **असुस्सूसणाए** - उपदेश श्रवण का अवसर न मिलने से, **सम्मत्त-पज्जवेहिं**- सम्यक्त्व के पर्याय, **विप्पडिवण्णे** - विप्रतिपन्न-विपरीत परिणाम युक्त।

भावार्थ - ऐसा प्रसंग बना कि साधुओं के दर्शन, सान्निध्य लाभ, सुश्रूषा, उपदेश श्रवण का अवसर न मिलने से नंद मणिकार के सम्यक्त्व के पर्याय घटते गए तथा मिथ्यात्व के पर्याय बढ़ते गए। परिणाम स्वरूप वह मिथ्यात्व में विप्रतिपन्न हो गया-मिथ्यात्वी बन गया।

नंद द्वारा पुष्करिणी का निर्माण

(९)

तए णं णंदे मणियार सेट्ठी अण्णया (कयाइ) गिम्हकाल समयंसि जेट्ठामूलंसि मासंसि अट्ठमभत्तं परिगेण्हइ २ त्ता पोसहसालाए जाव विहरइ। तए णं णंदस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि तण्हाए छुहाए य अभिभूयस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए० धण्णा णं ते जाव ईसरपभियओ जेसिं णं रायगिहस्स बहिया बहूओ वावीओ पोक्खरणीओ जाव सरसरपंतियाओ जत्थ णं बहुजणो ण्हाइ य पियइ य पाणियं च संवहइ। तं सेयं खलु ममं कल्लं (पाउ०) सेणियं रायं आपुच्छित्ता रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए वेब्भारपव्वयस्स अदूरसामंते वत्थुपाढगरोइयंसि भूमिभागंसि (जाव) णंदं पोक्खरिणिं खणावेत्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **तण्हाए** - तृष्णा से, **छुहाए** - भूख से, **संवहइ** - ले जाते हैं, **वत्थुपाढगरोइयंसि** - वास्तु शास्त्रज्ञों द्वारा चयनित, **खणावेत्तए** - खुदवाऊँ।

भावार्थ - मणिकार श्रेष्ठी नंद ने एक बार ग्रीष्मकाल के समय जब ज्येष्ठा नक्षत्र का चन्द्र के साथ पूर्णमासी को मेल होता है, तब (ज्येष्ठ मास में) तेले की तपस्या स्वीकार की। वैसा कर वह पौषधशाला में, पौषध धारण कर स्थित हुआ।

तत्पश्चात् जब उसका तेले का तप पूर्ण हो रहा था, तब तृष्णा और क्षुधा से पीड़ित हुए उसके मन में ऐसा विचार यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ - वे ऐश्वर्यशाली यावत् संपन्न पुरुष धन्य हैं, जिन्होंने राजगृह नगर के बाहर बहुत सी बावड़ियों, पुष्करणियों यावत् अनेकानेक सरोवरों का निर्माण किया। जहाँ बहुत से लोग जल पीते हैं, स्नान करते हैं एवं जल ले जाते हैं। यह मेरे लिए श्रेयस्कर होगा कि मैं कल प्रातःकाल होने पर राजा श्रेणिक से अनुज्ञा प्राप्त कर, राजगृह नगर के उत्तर पूर्व दिशा भाग में वैभार पर्वत से न बहुत दूर और न समीप वास्तुशास्त्रज्ञों द्वारा चयनित भूमि भाग में, नंद पुष्करणी का खनन, निर्माण करवाऊँ।

इस प्रकार वह सोचने लगा।

(१०)

संपेहेइत्ता कल्लं पाउब्भाए जाव पोसहं पारेइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे मित्तणाइ जाव संपरिवुडे महत्थं जाव पाहुडं राया गिहं गेण्हइ २ त्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ जाव पाहुडं उवट्ठवेइ २ त्ता एवं वयासी-इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहस्स बहिया जाव खणावेत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - यों विचार कर उसने दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर यावत् सूर्य की रश्मियों के जाज्वल्यमान होने पर पौषध पारा। तदनंतर उसने स्नान किया, नित्य नैमित्तिक मांगलिक कृत्य किए। मित्रों, जातीयजनों आदि से घिरा हुआ यावत् राजोचित बहुमूल्य उपहार राजा को भेंट किये एवं निवेदन किया-स्वामी! मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर राजगृह नगर के बाहर यावत् सर्व साधन संपन्न पुष्करिणी बनाना चाहता हूँ। राजा बोला - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख उपजे-जैसा तुम चाह रहे हो, करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(११)

तए णं से णंदे सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठे रायगिहं (णगरं) मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता वत्थुपाढयरोइयंसि भूमिभागंसि णंदं पोक्खरणिं खणाविउं पयत्ते यावि होत्था। तए णं सा णंदा पोक्खरणी अणुपुव्वेणं खणमाणा २ पोक्खरणी जाया यावि होत्था चाउक्कोणा समतीरा अणुपुव्वसु जायवप्प-सीयलजला संछण्ण पत्तविसमुणाला बहु उप्पलपउमकुमुदणलिणिसुभसोगंधिय-पुंडरीयमहापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तपफुल्ल केसरोववेया परिहत्थ-भमंत-मत्तछप्पय-अणेगसउणगणमिहुण वियरिय सद्दुण्णइय महुर सरणाइया पासाईया ४।

शब्दार्थ - **पयत्ते** - प्रवृत्त, **वप्प** - वप्र-नीचे का गहरा, संकरा भाग (केदाराकार), **विस** - कमलकन्द, **मुणाला** - कमल नाल, **परिहत्थ** - प्रचुर, **सउणगण मिहुण** - हंस, सारस आदि पक्षियों के जोड़े, **सद्दुण्णइय** - उत्कृष्ट, **णाइया** - नाद युक्त।

भावार्थ - राजा श्रेणिक द्वारा आदेश प्राप्त कर नंद बहुत ही हर्षित और प्रसन्न हुआ। वह राजगृह नगर के बीचों-बीच होता हुआ निकला। वास्तुशास्त्र वेत्ता द्वारा चयनित भूमि भाग में उसने पुष्करिणी खुदवाना शुरू किया। इस प्रकार क्रमशः पुष्करिणी का खनन एवं निर्माण कार्य पूर्ण हुआ।

वह पुष्करिणी चार कोनों से युक्त थी। उसके किनारे समतल थे। क्रमशः वह ऊपर से नीचे संकरी होती हुई गहरी थी। शीतल जल युक्त थी। उसके जल पर कमल कंद, कमल पत्र एवं नाल छाए थे। वह अनेक प्रकार के कमलों के खिले हुए किंजल्क से युक्त थी। बहुत से मदोन्मत्त भ्रमरों, अनेक सारस, हंस आदि पक्षियों के जोड़ों द्वारा उच्च स्वर से किए जाते मधुर नाद से वह समुपेत थी। हर्षोत्पादक, दर्शनीय, सुंदर एवं आकर्षक थी।

नंदा पुष्करिणी की सौंदर्य वृद्धि

(१२)

तए णं से णंदे मणियार सेट्ठी णंदाए पोक्खरिणीए चउदिसिं चत्तारि वण-संडे रोवावेइ। तए णं ते वणसंडा अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा, संगोविज्जमाणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य संवड्डियमाणा य से वणसंडा जाया किण्हा जाव णिकुरंबभूया पत्तिया पुप्फिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

भावार्थ - मणिकार श्रेष्ठी ने नंदा पोक्खरिणी की चारों दिशाओं में चार वनखण्ड-पादप समूह रुपवाए, लगवाए। उनकी यथावत् रूप में रक्षा-देख भाल की जाती रही, उन्हें बढ़ाया जाता रहा यावत् वे नील आभायुक्त यावत् पत्रित, पुष्पित एवं फलित होते हुए शोभा पाने लगे।

चित्रशाला

(१३)

तए णं णंदे पुरत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं चित्तसभं करावेइ (२) अणेगखंभसयसंणिविट्ठं पासाइयं ४। तत्थ णं बहूणि किण्हाणि य जाव सुक्किलाणि य कट्ठकम्माणि य पोत्थकम्माणि य चित्त० लिप्पकम्माणि गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइम० उवदंसिज्जमाणाइं २ चिट्ठंति।

शब्दार्थ - **सुक्किलाणि** - शुक्ल-सफेद, **कट्ठकम्माणि** - काष्ठ शिल्प, **पोत्थकम्माणि**- पुस्तकर्म-ताड़ पत्र, भोजपत्र, वस्त्र तथा कागज आदि पर लेखन, **लिप्पकम्माणि** - मृत्तिका लेप द्वारा लता आदि की कलापूर्ण संरचना।

भावार्थ - तब मणिकार श्रेष्ठी नंद ने पूर्वी वनखण्ड में एक बड़ी चित्रशाला बनवाई जो सैकड़ों खंभों पर स्थित थी। वह चित्रशाला बड़ी ही आह्लादजनक, सुंदर और आकर्षक थी। चित्रशाला में उसने काष्ठ पर कृष्ण यावत् शुक्ल वर्ण युक्त बहुविध कला पूर्ण शिल्प कर्म करवाए। ताड़ पत्र, भोज पत्र, वस्त्र एवं कागज पर लेखन करवाया। भित्ति चित्र बनवाए, मिट्टी के लेप से विविध कलाकृतियाँ उत्कीर्ण करवाई। मालाओं के ग्रन्थित, वेष्टित, पूरित, संघातित रूपों में बहुत-सी मनोरंजक कलाकृतियाँ बनवाईं। वे कलाकृतियाँ इतनी सुंदर थीं कि लोग देखते ही रहते थे।

(१४)

तत्थ णं बहूणि आसणाणि य सयणाणि य अत्थुयपच्चत्थुयाइं चिट्ठंति। तत्थ णं बहवे णडा य णट्टा य जाव दिण्णभइभत्तवेयणा तालायरकम्मं करेमाणा विहरंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रायगिहविणिग्गओ य तत्थ बहूजणो तेसु पुव्वण्णत्थेसु आसणसयणेसु संणिसण्णो य संतुयट्टो य सुणमाणो य पेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ।

शब्दार्थ - **अत्थुय पच्चत्थुयाइं** - आसनों और बिछौनों पर बिछे हुए मृदुल वस्त्र तथा उन पर पुनः बिछे हुए पलंग पोस, **णडा** - नाटक-अभिनय करने वाले, **णट्टा** - नृत्य करने वाले, **भइ** - धान्यादि के रूप में पारिश्रमिक, **भत्त** - भोजन, **तालायरकम्मं** - तालाचर कर्म-ताल आदि के आधार पर नाट्य प्रदर्शन, **पुव्वण्णत्थेसु** - पहले से रखे हुए, **संतुयट्टो** - लेट कर, **साहेमाणो** - परस्पर वार्तालाप करते हुए।

भावार्थ - उस चित्रशाला में नंद द्वारा बहुत से आसन और बिछौने लगाए गए थे, जिन पर कोमल आच्छादन और पलंग पोस लगे थे। वहाँ बहुत से नाटककार, नृत्यकार यावत् बहुत प्रकार के कलाकार जो भृति, भोजन और वेतन पर रखे गए थे, ताल आदि के आधार पर अपना कलाकृत्य प्रस्तुत करते ते। राजगृह नगर से मन बहलाने हेतु आने वाले लोग वहाँ पहले से ही रखे हुए आसनों, बिछौनों पर बैठते, लेटते, गानादि सुनते, नाटक देखते, परस्पर वार्तालाप करते हुए, सुख पूर्वक वहाँ समय बिताते थे।

पाकशाला

(१५)

तए णं णंदे दाहिणिल्ले वणसंडे एगं महं महाणससालं करावेइ अणेगखंभ जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिण्णभइभत्तवेयणा विउलं असणं ४ उवक्खडेंति बहूणं समण-माहण-अतिही-किवण-वणीमगाणं परिभाएमाणा २ विहरंति।

शब्दार्थ - **किवण** - दरिद्र-कृपण, **वणीमग** - भिखारी।

भावार्थ - तदनंतर मणिकार श्रेष्ठी नंद ने दाहिनी ओर के वन खंड में बड़े रसोइघर का निर्माण करवाया। यह पाकशाला सैकड़ों खम्भों पर अवस्थित थी यावत् बहुत ही सुंदर थी। वहाँ बहुत से व्यक्तियों को भृति (जीविका), भोजन और वेतन पर रखा गया था, जो विपुल मात्रा में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करते थे तथा बहुत से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, द्ररिद्रों और भिखारियों को परिभावित करते थे-देते रहते थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्व सुविधासंपन्न चिकित्सालय

(१६)

तए णं णंदे मणियारसेट्ठी पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं तेगिच्छियसालं करावेइ अणेगखंभसय जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य दिण्णभइभत्तवेयणा बहूणं वाहियाणं य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य तेइच्छकम्मं करेमाणा विहरंति। अण्णे य एत्थ बहवे पुरिसा दिण्णभइ० तेसिं बहूणं वाहियाण य रोगि० गिला० दुब्बलाण य ओसहभेसज्जभत्तपाणेणं पडियारकम्मं करेमाणा विहरंति।

शब्दार्थ - **तेगिच्छियसालं** - चिकित्साशाला, **वेज्जा** - वैद्य, **जाणुया** - विधिवत् चिकित्साशास्त्र न पढ़ने पर भी इसमें अनुभवी (ज्ञायक), **कुसला**-बुद्धि कौशल द्वारा औषधियों के नवाभिनव योगों के प्रयोक्ता, **वाहियाणं** - कुष्ठ आदि से पीड़ित दुःखीजनों का, **गिलाणाण**-ग्लान-चित्त भ्रांतों या विक्षिप्तजनों का, **रोगियाण** - ज्वरादि से पीड़ित रोगियों का, **पडियारकम्मं**-प्रतिचार कर्म-सेवा।

भावार्थ - मणिकार श्रेष्ठी नन्द ने पश्चिम दिशावर्ती वनखंड में एक विशाल चिकित्साशाला का निर्माण करवाया, जो सैकड़ों खंभों पर अवस्थित थी यावत् बड़ी सुंदर थी। वहाँ उसने वैद्यों, अनुभवी नाड़ी वैद्यों, बुद्धि कौशल से औषधियों के नवाभिनव प्रयोक्ताओं को तथा उनके कार्य में सहयोग एवं अनुभव प्राप्ति हेतु उनके पुत्रों को भृति, भोजन एवं वेतन पर नियुक्त किया। वे अनेक प्रकार के शारीरिक एवं चित्तभ्रमादि मानसिक रोगों की चिकित्सा करते।

ऐसे बहुत से परिचारकों को नियुक्त किया जो चिकित्सार्थ आए हुए जनों की औषध, भेषज, दवा, भोजन, पेय पदार्थ आदि द्वारा सेवा करते थे।

प्रसाधन-कक्ष

(१७)

तए णं णंदे उत्तरिल्ले वणसंडे एगं महं अलंकारियसभं करेइ अणेगखंभसय जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे अलंकारियपुरिसा मणुस्सा दिण्णभइभत्तवेयणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहूणं समणाण य अणाहाण य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य अलंकारियकम्मं करेमाणा २ विहरंति।

शब्दार्थ - **अलंकारियपुरिसा** - प्रसाधन निपुण नापित पुरुष।

भावार्थ - मणिकार श्रेष्ठी नंद ने उत्तरी वनखंड में बड़ा प्रसाधन कक्ष बनाया, जो सैकड़ों खंभों पर टिका हुआ था। वहाँ उसने नापित आदि प्रसाधन दक्ष पुरुषों को भोजन, वेतन आदि पर नियुक्त किया। बहुत से श्रमणों, अनाथों, विक्षिप्तों, रोगियों, दुर्बलों की केश-कर्तन, तेल मर्दन आदि विभिन्न रूपों में सेवा कार्य करते रहते थे।

(१८)

तए णं तीए णंदाए पोक्खरिणीए बहवे सणाहा य अणाहा य पंथिया य पहिया य करोडिया य (कारिया य) तणहारा पत्तहारा कट्ठहारा अप्पेगइया ण्हायंति अप्पेगइया पाणियं पियंति अप्पेगइया पाणियं संवहंति अप्पेगइया विसज्जिय-सेयजल्लमल-परिस्स-मणिट्ठखुप्पिवासा सुहंसुहेणं विहरंति। रायगिहविणिग्गओ वि जत्थ बहुजणो किं ते जलरमण विविहमज्जण-कयलिलयाघरय-कुसुमसत्थरय-अणेगसउणगण - रुय-रिभिय संकुलेसु सुहंसुहेणं अभिरममाणो २ विहरइ।

शब्दार्थ - **विसज्जिय** - परिव्यक्त, **जल्ल-मल्ल** - शरीर का पसीना, देह का मैल, **कयलिलयाघरय** - कदली के पादपों और लताओं से निर्मित मंडप, **कुसुमसत्थरय** - पुष्प संसरण-फूलों से युक्त बिछौने, **रुय** - पक्षियों के शब्द, **रिभिय** - मधुर ध्वनि।

भावार्थ - उस नंदा पुष्करिणी में अनेक सनाथ, अनाथ, पांथिक, पथिक, कापालिक, कार्पटिक, तण्हहारा-घसियारे, पत्ते ढोने वाले, लकड़हारे-इनमें से अनेक स्नान करते, पानी पीते, कतिपय ले जाते।

कई अपने शरीर का पसीना, मैल आदि साफ करते। कई अपनी भूख प्यास मिटा कर विश्राम करते। इस प्रकार वे सभी वहाँ सुख पूर्वक उसका उपयोग करते।

और अधिक क्या कहा जाय - राजगृह से आए हुए अनेक व्यक्ति विविध जल-क्रीड़ा, स्नान, अनेक पक्षियों की मधुर ध्वनि से व्याप्त लतागृहों, कदली गृहों, पुष्पाच्छादित आसनों पर विश्राम करते, आनंदोत्साह पूर्वक मनोरंजन करते, मन बहलाते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - नंद मणिकार ने अपने अष्टमभक्त पौषध के अन्तिम समय में तृषा से पीड़ित होकर पुष्करिणी खुदवाने का विचार किया। इससे पूर्व यह उल्लेख आ चुका है कि वह साधुओं के दर्शन न करने, उनका समागम न करने एवं धर्मोपदेश नहीं सुनने आदि के कारण सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्वी बन गया था। इस वर्णन से किसी को ऐसा भ्रम हो सकता है कि पुष्करिणी खुदवाना तथा औषधशाला आदि की स्थापना करना-करवाना मिथ्यादृष्टि का कार्य है-सम्यग्दृष्टि का नहीं, अन्यथा उसके मिथ्यादृष्टि हो जाने का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता थी?

किन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है, यथार्थ भी नहीं है। यह तो नन्द के जीवन में घटित एक घटना का उल्लेख मात्र है। पौषध में एक नियम आरम्भ-समारम्भ का परित्याग करना भी सम्मिलित है। नन्द श्रेष्ठी को पौषध की अवस्था में आरम्भ-समारम्भ करने का विचार-चिन्तन निश्चय नहीं करना चाहिए था। किन्तु उसने ऐसा किया और उसकी न आलोचना की, न प्रायश्चित्त किया। उसने एक त्याज्य कर्म को-पौषध अवस्था में आरम्भ करने को अत्याज्य समझा, यह विपरीत समझ उसके मिथ्यादृष्टि होने का लक्षण है, परन्तु कुआं, बावड़ी आदि खुदवाना या दानशाला आदि परोपकार के कार्य मिथ्यादृष्टि के कार्य नहीं समझने चाहिए। 'रायपसेणिय' सूत्र में बतलाया गया है राजा प्रदेशी जब अपने घोर अधार्मिक जीवन में परिवर्तन करके केशीकुमार श्रमण द्वारा धर्मबोध प्राप्त करके धर्मनिष्ठ बन जाता है तब वह अपनी सम्पत्ति के चार विभाग करता है-एक सैन्य सम्बन्धी व्यय के लिए, दूसरा कोठार-भंडार में जमा करने के लिए, तीसरा अन्तःपुर-परिवार के व्यय के लिए और चौथा सार्वजनिक हित-परोपकार के लिए। उससे वह दानशाला आदि की स्थापना करता है।

नन्द श्रेष्ठी की प्रशंसा

(१९)

तए णं णंदा पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पीयमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवं वयासी-धण्णे णं देवाणुप्पिया! णंदे मणियार सेट्ठी कयत्थे जाव जम्म जीवियफले जस्स णं इमेयारूवा णंदा पोक्खरिणी चाउक्कोणा जाव पडिरूवा जस्स णं पुरत्थिमिल्ले तं चेव सव्वं चउसु वि वणसंडेसु जाव रायगिह विणिग्गओ जत्थ बहुजणो आसणेसु य सयणेसु य सण्णिसण्णो य संतुयट्टो य पेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ। तं धण्णे कयत्थे (कयलक्खणे)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयपुण्णे० कया णं लोया! सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले णंदस्स मणियारस्स। तए णं रायगिहे सिंघाडग जाव बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४ - धण्णे णं देवाणुप्पिया! णंदे मणियारे सो चेव गमओ जाव सुहंसुहेणं विहरइ। तए णं से णंदे मणियारे बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे धाराहयकलंबगं पि समूससियरोमकूवे परं सायासोक्खमणुभवमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - कयत्थे - कृतार्थ, **धाराहयकलंबगं** - मेघों की धारा से आहत कदंब के पुष्प, **समूसियरोमकूवे** - रोमांचित, **सायासोक्खमणुभवमाणे** - सातावेदनीय जनित सुख का अनुभव करता हुआ।

भावार्थ - नंदा पुष्करिणी में बहुत से लोग स्नान करते हुए, पानी पीते हुए, पानी ले जाते हुए यों कहते - मणिकार श्रेष्ठी नंद धन्य है, कृतकृत्य है। उसने अपने जन्म और जीवन का फल पा लिया। जिसने ऐसी चतुष्कोण युक्त सुंदर पुष्करिणी का निर्माण किया यावत् जिसने पूर्वी तथा अन्य सभी वनखण्डों में यावत् चित्रशाला, पाकशाला, औषधशाला और अलंकारशाला का निर्माण करवाया। जहाँ राजगृह से आए हुए बहुत से लोग सुंदर आसनों, बिछौनों पर बैठते हैं, लेटते हैं तथा पुष्करिणी की शोभा देखते हैं, वार्तालाप करते हैं और आनंद पूर्वक मनोरंजन करते हैं।

वह नंद वास्तव में धन्य, कृतार्थ और कृत पुण्य है। उसने लोक में मनुष्य जन्म और जीवन का फल प्राप्त कर लिया है। उस समय राजगृह नगर में तिराहों, चौराहों यावत् मार्गों पर बहुत से लोग एक दूसरे से बड़ी प्रसन्नता से ऐसा कहते - देवानुप्रिय! नंद मणिकार धन्य है। वहाँ एतद्विषयक पूर्वोक्त वर्णन योजनीय है।

नंद मणिकार लोगों से अपनी प्रशंसा सुनकर बहुत ही हर्षित और परितुष्ट होता। जिस प्रकार वर्षा की धार से कंदब के फूल खिल उठते हैं, उसी प्रकार उसके रोम-रोम खिल उठते।

नंद व्याधिग्रस्त

(२०)

तए णं तस्स णंदस्स मणियार सेट्ठिस्स अण्णया कयाइ सरीरगंसि सोलस रोयायंका पाउब्भूया तंजहा - सासे कासे जरे दाहे कुच्छिसूले भगंदरे अरिसा अजीरए दिट्ठिमुद्धसूले अगारए। अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू दउदरे कोढे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तए णं से णंदे मणियार सेट्ठी सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूए समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव पहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह-एवं खलु देवाणुप्पिया! णंदस्स मणियार(सेट्ठि)स्स सरीरगंसि सोलस रोयायंका पाउब्भूया तंजहा-सासे जाव कोढे तं जो णं इच्छह देवाणुप्पिया! वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा २ कुसलो वा २ णंदस्स मणियारस्स तेसिं च णं सोलसण्हं रोयायंकाणं एगमवि रोयायंकं उवसामेत्तए तस्स णं देवाणुप्पिया! णंदे मणियारे विउलं अत्थ संपयाणं दलयइ-त्तिकट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणं घोसेह २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह तेवि तहेव पच्चप्पिणंति।

शब्दार्थ - **सासे** - श्वास, **कासे** - खांसी, **जरे** - ज्वर, **दाहे** - जलन, **कुच्छिसूले** - पेट में तीक्ष्ण पीड़ा, **अरिसा** - अर्श-मस्सा या बवासीर, **अजीरए** - अजीर्ण, **दिट्ठिमुद्धसूले** - नेत्रशूल, **अगारए** - भोजन आदि में अरुचि, **अच्छिवेयणा** - नेत्रपीड़ा, **कंडू**- खुजली, **दउदरे**- जलोदर।

भावार्थ - कुछ समय के अनंतर ऐसा घटित हुआ, नंदमणिकार के शरीर में श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगदर, बवासीर, अजीर्ण, मस्तक शूल, अरुचि, नेत्र वेदना, कर्ण पीड़ा, खाज, जलोदर तथा कुष्ठ-ये सोलह रोग हो गए।

सोलह रोगों से पीड़ित हुए नंद मणिकार ने अपने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! तुम राजगृह नगर में जाओ, वहाँ तिराहों, चौराहों, बड़े मार्गों आदि में उच्च स्वर से यह घोषणा करवाओ - ऐसा कहलवाओ कि देवानुप्रियो! मणियार श्रेष्ठी नंद के शरीर में श्वास यावत् कुष्ठ पर्यंत सोलह रोग हो गए हैं। अतः जो कोई वैद्य, अनुभवी चिकित्सक, अभिनव चिकित्सा योग का प्रयोक्ता अथवा इनके पुत्र उन रोगों में से एक भी रोग को उपशांत कर दे तो नंद मणिकार उसे विपुल अर्थ-संपदा देगा। इस प्रकार दो बार-तीन बार यह घोषणा करवाओ। यह घोषणा करवा कर मुझे वापस सूचित करो।

(२१)

तए णं रायगिहे इमेयारूवं घोसणं सोच्चा णिसम्म बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य जाव कुसलपुत्ता य सत्थकोसहत्थगया य कोसगपायहत्थगया य सिलियाहत्थगया य गुलियाहत्थगया य ओसहभेसज्जहत्थगया य सएहिं २ गिहेहिंतो णिक्खमंति २ त्ता रायगिहं मज्झंमज्झेणं जेणेव णंदस्स मणियार सेट्ठिस्स गिहे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता णंदस्स मणियारस्स सरीरं पासंति २ तेसिं रोयायंकाणं णियाणं पुच्छंति २ त्ता णंदस्स मणियारस्स बहूहि उव्वलणेहि य उव्वट्टणेहि सिणेहपाणेहि य वमणेहि य विरेयणेहि य सेयणेहि य अवदहणेहि य अवण्हाणेहि य अणुवासणेहि य वत्थिकम्मेहि य णिरूहेहि य सिरावेहेहि य तच्छणाहि य पच्छणाहि य सिरावेढेहि य तप्पणाहि य पुढवाएहि य छल्लीहि य वल्लीहि य मूलेहि य कंदेहि य पत्तेहि य पुप्फेहि य फलेहि य बीएहि य सिलियाहि य गुलियाहि य ओसहेहि य भेसज्जेहि य इच्छंति तेसिं सोलसण्हं रोयायंकाणं एगमवि रोयायंकं उवसामित्तए णो चेव णं संचाएंति उवसामेत्तए।

शब्दार्थ - **सत्थकोसहत्थगया** - शल्य क्रिया हेतु हाथ में उपकरण लिए हुए, **कोसगपायहत्थगया** - चिकित्सा में प्रयोजनीय चर्ममय उपकरण हाथ में लिए हुए, **सिलियाहत्थगया** - कुटक चिरायता आदि अत्यंत तीक्ष्ण, कड़वी दवाईयाँ हस्तगत किए हुए, **गुलियाहत्थगया** - विविध-द्रव्य-संयोग निर्मित, वटिकाएं-गुटिकाएं, गोलियाँ हाथों में लिए हुए, **णियाणं** - निदान-रोगोत्पत्ति कारण, **उव्वलणेहि** - देह पर औषध-लेपन द्वारा, **उव्वट्टणेहि**- औषध निर्मित उबटनों द्वारा, **सिणेहपाणेहि** - घृतपान द्वारा, **वमणेहि** - वमन द्वारा, **विरेयणेहि**- विरेचन द्वारा, **सेयणेहि** - सेचन द्वारा, **अवदहणेहि** - तप्त लोह से देह दाहंकन-डाम द्वारा, **अवण्हाणेहि** - दाद-खाज आदि मिटाने हेतु औषधि मिश्रित जल स्नान, **अणुवासणेहि** - मल शुद्धि हेतु गुदा मार्ग द्वारा तेल आदि पहुँचाना, **वत्थिकम्मेहि** - एनीमा लगाना, **णिरूहेहि** - चर्म निर्मित नलिकादि द्वारा औषधि पक्व तैल के प्रयोग से मलशुद्धि करवाना, **सिरावेहेहि** - विकृत रक्त निकालने हेतु नाड़ी विशेष का वेधन, **तच्छणाहि** - क्षुरे आदि से चमड़ी के छेदन द्वारा, **पच्छणाहि** - चमड़ी को छीलकर, **सिरावेढेहि** - नाड़ियों के वेष्टन-बंधन द्वारा, **तप्पणाहि**- तैल, घी आदि की मालिश से, **पुढवाएहि** - पाक हेतु अग्नि में अनेक पुटें देकर तैयार की गई भस्मादि औषधियों द्वारा, **छल्लीहि** - वृक्षों की छाल, **वल्लीहि** - गडूची आदि लताएं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - राजगृह नगर में इस प्रकार की घोषणा को सुनकर बहुत से वैद्य यावत् विविध प्रकार के चिकित्सक अपने पुत्रों सहित अपने हाथ में शल्य क्रियोपकरण, चर्मोपकरण, वटिकाएं, तीक्ष्ण औषधियाँ, कूट-पीस कर-पकाकर बनाई हुई दवाइयाँ लिए हुए, अपने-अपने घरों से रवाना हुए। राजगृह नगर के बीचों-बीच होते हुए मणिकार नंद के घर पहुँचे। नंद के शरीर को देखा, रोगों के कारण आदि के संबंध में पूछताछ की। उन्होंने बहुत प्रकार के औषध लेपन, उबटन, घृत, पान, वमन, विरेचन, सेचन, तप्त लोह से देहदाहांकन, मल शुद्धि द्वारा गुदा मार्ग से तैल आदि पहुँचाकर एनीमा लगा कर, नाड़ी बंधन, नाड़ी वैध, चर्मच्छेदन, चर्मतक्षण, तेल-मालिश, पुट पाक औषधियों, वृक्षों की छाल, लताएँ, मूल, कंद, पत्ते, फूल, बीज आदि द्वारा चिकित्सा का पूरा प्रयास किया किन्तु उन सोलह रोगों में से एक भी रोग को मिटा नहीं पाए।

विवेचन - प्राचीन काल में आयुर्वेद-चिकित्सा पद्धति कितनी विकसित थी, चिकित्सा के कितने रूप प्रचलित थे, यह तथ्य प्रस्तुत सूत्र से स्पष्ट विदित किया जा सकता है। आयुर्वेद का इतिहास लिखने में यह उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। आधुनिक एँलोपैथी के लगभग सभी रूप इसमें समाहित हो जाते हैं, यही नहीं बल्कि अनेक रूप तो ऐसे भी हैं जो आधुनिक पद्धति में भी नहीं पाये जाते। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक यंत्रों के अभाव में भी आयुर्वेद खूब विकसित हो चुका था।

देहावसान : मेंढक के रूप में पुनर्जन्म

(२२)

तए णं ते बहवे वेज्जा य ६ जाहे णो संचाएंति तेसिं सोलसण्हं रोयायंकाणं एगमवि रोयायंकं उवसामित्तए ताहे संता तंता जाव पडिगया। तए णं णंदे तेहिं सोलसेहिं रोयायंकेहिं अभिभूए समाणे णंदाए पोक्खरिणीए मुच्छिए ४ तिरिक्ख-जोणिएहिं णिबद्धाउए बद्धपएसिए अट्टदुहट्टवसट्टे कालमासे कालं किच्चा णंदाए पोक्खरिणीए दद्दुरीए कुच्छिंसि दद्दुरत्ताए उववण्णे।

शब्दार्थ - **णिबद्धाउए** - आयुष्य बंध किया, **बद्धपएसिए** - प्रदेश बंध हुआ।

भावार्थ - बहुत से वैद्य, अनुभवी चिकित्सक, चिकित्सा योगों के अनुभवी प्रयोक्ता, जब नंद के सोलह रोगों में से एक भी रोग को उपशांत नहीं कर सके तो वे शांत, खिन्न यावत् निराश और हतोत्साह होकर, जहाँ-जहाँ से आए थे, वहीं वापस लौट गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नंद उन सोलह रोगों से अभिभूत, पीड़ित होता हुआ नंदा पुष्करिणी में मूर्च्छित-मोह विमूढ हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप उसने तिर्यंच आयु का बंध किया, प्रदेश बंध किया। आर्त्तध्यान से पीड़ित होते हुए आयुष्य पूर्ण होने पर वह एक मेंढकी की कोख में आया।

विवेचन - अपने द्वारा बनाई गई पुष्करिणी में नंद के अत्यधिक मोह मूर्च्छा एवं आसक्त भाव के कारण, उसके कर्म बंध का सूचन-**'णिबद्धाउए'** तथा **'बद्धपएसिए'** - इन दो पदों द्वारा किया गया है।

कर्म बंध के प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध-ये चार प्रकार हैं।

यहाँ **'णिबद्धाउए'** पद आयुष्य के प्रकृति बंध, स्थिति बंध और अनुभागबंध का सूचक है तथा **'बद्धपएसिए'** प्रदेश बंध का सूचक है।

(२३)

तए णं णंदे दद्दुरे गब्भाओ विणिम्मुक्के समाणे उम्मुक्कबालभावे विण्णाय-परिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते णंदाए पोक्खरिणीए अभिरममाणे २ विहरइ।

शब्दार्थ - **विण्णायपरिणयमित्ते** - विज्ञात परिणतमात्र-योनि के अनुरूप परिपक्वज्ञान युक्त, **जोव्वणगमणुपत्ते** - युवावस्था प्राप्त।

भावार्थ - तदनंतर यथा समय नंद मंडूक अपनी माता के गर्भ से बाहर निकला। क्रमशः उसने बाल्यावस्था पार की। युवा हुआ। अपनी योनि के अनुरूप कूदने, उछलने, दौड़ने आदि के ज्ञान से संपन्न बना तथा नंदा पुष्करिणी में रमण करता हुआ रहने लगा।

जाति स्मरण ज्ञान की उत्पत्ति

(२४)

तए णं णंदाए पोक्खरिणीए बहुजणे ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४ - धण्णे णं देवाणुप्पिया! णंदे मणियारे जस्स णं इमेयारूवा णंदा पुक्खरिणी चाउक्कोणा जाव पडिरूवा जस्स णं पुरत्थिमिल्ले वणसंडे चित्तसभा अणेगखंभ० तहेव चत्तारि सहाओ जाव जम्मजीवियफले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नंदा पुष्करिणी में स्नान करते हुए, उसका जल पीते हुए उसमे से जल ले जाते हुए लोग कहते - देवानुप्रियो! नंद मणिकार धन्य है जिसने चतुष्कोण यावत् अति सुंदर पुष्करिणी का निर्माण करवाया। जिसके पूर्व दिशावर्ती वन खंड में अनेक खंभों पर अवस्थित चित्र सभा है। उसी प्रकार (इसके सहित) चारों सभाएं हैं यावत् नंद ने इन सबका निर्माण कर मनुष्य जन्म और जीवन का फल प्राप्त कर लिया।

(२५)

तए णं तस्स दद्दुरस्स तं अभिक्खणं २ बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए० समुप्पज्जित्था-से कहिं मण्णे मए इमेयारूवे सद्दे णिसंतपुव्वे त्तिकट्टु सुभेणं परिणामेणं जाव जाईसरणे समुप्पण्णे पुव्वजाइं सम्मं समागच्छइ।

भावार्थ - बार-बार बहुत से लोगों से यह बात सुनकर उस मेंढक के मन में ऐसा विचार यावत् मनोभाव उत्पन्न हुआ। यों सोचते हुए शुभ परिणाम यावत् कार्मिक क्षयोपशम से उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया-उसे अपना पूर्वभव भलीभांति स्मरण हो आया।

श्रावक धर्म का अन्तः स्वीकार

(२६)

तए णं तस्स दद्दुरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए०-एवं खलु अहं इहेव रायगिहे णयरे णंदे णामं मणियारे अड्ढे०। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे इह समोसढे। तए णं समणस्स ३ अंतिए पंचाणुव्वइए सत्त सिक्खावइए जाव पडिवण्णे। तए णं अहं अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण य जाव मिच्छत्तं विप्पडिवण्णे तए णं अहं अण्णया कयाई गिम्हे काल समयंसि जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरामि-एवं जहेव चिंता आपुच्छणा णंदा पुक्खरिणी वणसंडा सहाओ तं चेव सव्वं जाण णंदाए पोक्ख० दद्दुरत्ताए उववण्णे। तं अहो णं अहमं अहण्णे अपुण्णे अकयपुण्णे णिग्गंथाओ पावयणाओ णट्ठे भट्ठे परिब्भट्ठे। तं सेयं खलु ममं सयमेव पुव्व पडिवण्णाइं पंचाणुव्वयाइं० उवसंपिज्जत्ताणं विहरित्तए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - अहण्णे - अधन्य।

भावार्थ - तब उस मेंढक के मन में ऐसा विचार यावत् मनोभाव उत्पन्न हुआ - मैं इसी राजगृह में नंद नामक धनाढ्य मणिकार था। उस काल, उस समय भगवान् महावीर स्वामी पधारे। मैंने भगवान् महावीर स्वामी के पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत यावत् द्वादशविध श्रावकव्रत स्वीकार किए। तत्पश्चात् साधुओं का दर्शन यावत् सान्निध्य लाभ न रहने से मिथ्यात्व में विपरिणत हो गया-सम्यक्त्वी से मिथ्यात्वी हो गया। फिर ऐसा प्रसंग बना ग्रीष्म काल के समय मेरे मन में पुष्करिणी बनाने का भाव जागा। फिर मैंने अपने चिंतन के अनुरूप राजाज्ञा लेकर नंदा पुष्करिणी वनखण्ड तथा चतुर्विध शालाओं का निर्माण किया। तदनंतर मैं अत्यधिक रुग्ण हुआ, जिसकी चिकित्सा किसी भी तरह नहीं हो सकी।

अंत समय में मैं नंदा पुष्करिणी में मोहित, मूर्च्छित एवं आसक्त रहा, जिससे मेरा मेंढक के रूप में जन्म हुआ। अहो! मैं कितना अधन्य, पापिष्ठ और अकृतपुण्य हूं, जो निर्ग्रन्थ प्रवचन से हट गया, भ्रष्ट हो गया, परिभ्रष्ट हो गया, पृथक् हो गया। मेरे लिए यह उत्तम होगा कि मेरे द्वारा पूर्व में स्वीकार किए गए पांच अणुव्रतों एवं सात शिक्षाव्रतों को स्वीकार कर लूँ।

दर्दुर द्वारा तपश्चरण

(२७)

एवं संपेहेइ २ त्ता पुव्वपडिवण्णाइं पंचाणुव्वयाइं जाव आरुहेइ २ त्ता इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-कप्पइ मे जावजीवं छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए। छट्ठस्स वि य णं पारणगंसि कप्पइ मे णंदाए पोक्खरिणीए परिपेरंतेसु फासुएणं ण्हाणोदएणं उम्मद्दणोलोलियाहि य वित्तिं कप्पेमाणस्स विहरित्तए। इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं जाव विहरइ।

शब्दार्थ - अणिक्खित्तेणं - निरंतर, **उम्मद्दणोल्लोलियाहि -** लोगों द्वारा अपनी देह पर किए गए उबटन से गिरे हुए पिष्ठी कणों से।

भावार्थ - इस प्रकार संप्रेक्षण, चिंतन कर उसने पूर्व स्वीकृत पांच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत अंगीकार कर लिए। वैसा कर उसने अभिग्रह-अन्तः संकल्प किया कि आज से मैं यावज्जीवन बेले-बेले की तपस्या से आत्मभावित होता रहूँगा। बेले के पारणे में भी मैं नंदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्करिणी के तट पर प्रासुक-अचित्त स्नानोदक तथा उबटन से गिरे हुए यवादि पिष्ठी कणों से जीवन निर्वाह करूँगा। उसने इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार किया तथा यावज्जीवन बेले-बेले के निरंतर तप करता रहा।

भगवान् का समवसरण

(२८)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा! गुणसिलए चेइए समोसढे परिसा णिग्गया। तए णं णंदाए पुक्खरिणीए बहुजणो ण्हाय० ३ अण्णमण्णं० जाव समणे ३ इहेव गुणसिलए चेइए समोसढे। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं ३ वंदामो जाव पज्जुवासामो। एयं मे इहभवे परभवे य हियाए जाव आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

शब्दार्थ - आणुगामियत्ताए - अनुगमनार्थ।

भावार्थ - हे गौतम! उस काल, उस समय मैं राजगृह नगर में, गुणशील चैत्य में समवसृत हुआ। वंदन हेतु परिषद् निकली। उस समय नंदा पुष्करिणी में पानी पीते हुए, ले जाते हुए कुछ लोग यों वार्तालाप करने लगे यावत् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहीं-गुणशील चैत्य में पधारे हैं। हम उनकी वंदना, पर्युपासना करने हेतु जाएँ। ऐसा करना हमारे इस लोक एवं परलोक दोनों के लिए हितप्रद होगा। यह धार्मिक कृत्य परभव में भी हमारे साथ जाएगा।

भगवान् की वंदना हेतु दर्दुर का प्रस्थान

(२९)

तए णं तस्स दद्दुरस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए० समुप्पज्जित्था-एवं खलु समणे ३, ० समोसढे। तं गच्छामि णं वंदामि०। एवं संपेहेइ २ त्ता णंदाओ पुक्खरिणीओ सणियं २ उत्तरेइ २ त्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए ५ दद्दुरगईए वीईवयमाणे जेणेव ममं अंतिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - बहुत लोगों से यह सुनकर दर्दुर के मन में ऐसा चिंतन संकल्प हुआ - श्रमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर स्वामी यावत् गुणशील चैत्य में पधारे हुए हैं। मैं जाऊँ और उनको वंदना करूँ यावत् ऐसा चिंतन कर वह नंदा पुष्करिणी से धीरे-धीरे बाहर आया। राजमार्ग पर पहुँचा वहाँ उत्कृष्ट दर्दुर गति से चलता हुआ, उस ओर जाने लगा।

मारणान्तिक प्रत्यवाय

(३०)

इमं च णं सेणिए राया भंभसारे ण्हाए कयकोउय जाव सव्वालंकार विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामरा० हयगयरह० महया भडचडगर० चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे मम पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से दद्दुरे सेणियस्स रण्णो एगेणं आसकिसोरएणं वामपाएणं अक्कंते समाणे अंतणिग्घाइए कए यावि होत्था।

शब्दार्थ-अक्कंते- आक्रांत हुआ-कुचला गया, **अंतणिग्घाइए** - आंते बाहर निकल पड़ी।

भावार्थ - इधर राजा बिंबसार श्रेणिक ने स्नान किया। कौतुकमंगल यावत् प्रायश्चित्तादि नित्य कर्म किए। आभरणों से अलंकृत हुआ। हाथी पर सवार हुआ। उस पर कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र तना था। सफेद, उत्तम, चंवर डुलाए जा रहे थे। घोड़े, हाथी रथ तथा पदाति योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना से वह घिरा हुआ मेरे चरण-वंदन हेतु शीघ्रतापूर्वक आ रहा था।

इसी बीच वह मेंढक राजा श्रेणिक के एक युवा अश्व के बाएँ पैर से कुचल गया। उसकी आँतें बाहर निकल आईं।

संलेखना पूर्वक देह-त्याग

(३१)

तए णं से दद्दुरे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसकारपरक्कमे अधारणिज्जमितिकट्टु एगंतमवक्कमइ० करयल जाव एवं वयासी-णमोत्थुणं अरहंताणं (भगवंताणं) जाव संपत्ताणं। णमोत्थुणं समणस्स ३ मम धम्मायरियस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विंपि य णं मए समणस्स ३ अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव थूलए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिग्गहे पच्चक्खाए। तं इयाणिंपि तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवं सव्वं असणं ४ पच्चक्खामि जावज्जीवं जंपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं जाव मा फुसंतु एयंपि णं चरिमेहिं ऊसासेहिं वोसिरामि त्तिकट्टु।

शब्दार्थ - **अत्थामे** - अस्थिर, गमनशक्ति रहित, **ऊसासेहिं** - श्वासोच्छ्वास।

भावार्थ - वह दर्दुर अस्थिर-चलने-फिरने में असमर्थ, अबल पुरुषार्थ पराक्रमविहीन हो गया। यह सोचकर कि अब जीवन नहीं टिकेगा, वह सरकता हुआ एकांत में गया। हाथ-जोड़, मस्तक पर अंजलि कर, तीन बार घुमाकर वह बोला-उन अरहंत भगवन्तों को यावत् जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर स्वामी को यावत् जो मोक्ष प्राप्ति हेतु समुद्यत हैं, नमस्कार हो। पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास स्थूल रूप में प्राणातिपात हिंसा का यावत् परिग्रह पर्यंत प्रत्याख्यान किया। इस समय मैं उन्हीं को समुद्दिष्ट कर समस्त प्राणातिपात यावत् समग्र परिग्रह पर्यंत प्रत्याख्यान करता हूँ-जीवन भर के लिए समस्त अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। मेरा शरीर जो मेरे लिए प्रिय और कांत रहा है, रोगादि इसका स्पर्श भी न करें, ऐसा मैं चाहता रहा हूँ, उसका भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यंत प्रत्याख्यान-त्याग करता हूँ। इस तरह दर्दुर ने संपूर्ण प्रत्याख्यान किया।

विवेचन - तिर्यंच गति में अधिक से अधिक पांच गुणस्थान हो सकते हैं, अतएव देशविरति तो संभव है, किन्तु सर्वविरति-संयम की संभावना नहीं। फिर नंद के जीव मंडूक ने सर्वविरति रूप प्रत्याख्यान कैसे कर लिया? मूलपाठ में जिस प्रकार से इसका उल्लेख किया गया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि आगमकार को भी उसके प्रत्याख्यान में कोई अनौचित्य नहीं लगता।

इस विषय में प्रसिद्ध टीकाकार अभयदेवसूरि ने अपनी टीका में स्पष्टीकरण किया है। वे लिखते हैं -

'यद्यपि सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि' इत्यनेन सर्वग्रहणं तथापि तिरश्चां देशविरतिरेव।'

अर्थात् - यद्यपि मेंढ़क ने 'सम्पूर्ण प्राणातिपात (आदि) का प्रत्याख्यान करता हूँ' ऐसा कह कर प्रत्याख्यान किया है तथापि तिर्यंचों में देशविरति हो सकती है-सर्वविरति नहीं।

इस विषय में टीकाकार ने दो गाथाएं भी उद्धृत की हैं, जिनमें इस प्रश्न पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। गाथाएं ये हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरियाणं चारित्तं, निवारियं अह य तो पुणो तेसिं।

सुव्वइ बहुयाणं पि हु, महव्वयारोहणं समए॥१॥

न महव्वयसब्भावेवि, चरित्तपरिणामसंभवो तेसिं।

न बहुगुणाणंपि जओ, केवलसंभूइपरिणामो॥२॥

अर्थात् - तिर्यंचों में यद्यपि चारित्र (सर्वविरति) के होने का आगम में निषेध किया गया है, फिर भी बहुत-से तिर्यंचों ने महाव्रत ग्रहण किये ऐसा सुना जाता है - आगमों में ऐसा उल्लेख देखा जाता है किन्तु महाव्रतों के सद्भाव में भी तिर्यंचों में चारित्र परिणाम (भाव चारित्र) संभव नहीं होता है। जैसे बहुत गुणों से सम्पन्न जीवों को भी सम्पूर्ण संबोधि का परिणाम (चारित्र सहित) मनुष्य के सिवाय उत्पन्न नहीं हो सकता है। यहाँ पर महाव्रतों का अर्थ-बड़े व्रत नियम समझना चाहिए। किन्तु अहिंसा आदि सर्वविरति रूप महाव्रत नहीं समझना चाहिए।

देव के रूप में उत्पत्ति

(३२)

तए णं से दद्दुरे कालमासे कालं किच्चा जाव सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे उववाय सभाए दद्दुर देवत्ताए उववण्णे। एवं खलु गोयमा! दद्दुरेणं सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा ३।

भावार्थ - तदनंतर वह दर्दुर आयुष्य पूर्ण होने पर–मृत्युकाल आने पर देहत्याग कर, सौधर्म कल्प में, दर्दुरावतंसक नामक विमान में, उपपात सभा में, दर्दुर देव के रूप में उत्पन्न हुआ।

हे गौतम! दर्दुर देव ने इस प्रकार वह दिव्य-देव ऋद्धि यावत् द्युति, वैभव प्राप्त किया।

भविष्य-कथन

(३३)

दद्दुरस्स णं भंते! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं दद्दुरे देवे० महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव अंतं करेहिइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा-भगवन्! दर्दुरदेव की स्थिति कितने काल की प्रज्ञापित हुई है?

भगवान् बोले-गौतम! उसकी चार पल्योपम की स्थिति प्रज्ञापित की गई है। तदनंतर वह दर्दुर देव आयु क्षय, भव क्षय एवं स्थिति क्षय कर, वहाँ से च्यवन कर, महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध होगा यावत् समस्त दुःखों का अंत करेगा।

(३४)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तेरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तेरहवें ज्ञात अध्ययन का अर्थ कहा है। जैसा मैंने उनसे श्रवण किया है, वैसा कहता हूँ।

उवणय गाहाओ -

संपण्णगुणो वि जओ सुसाहुसंसग्गवज्जिओ पायं।
पावइ गुणपरिहाणिं दद्दुर जीवोव्व मणियारो॥१॥
तित्थयरवंदणत्थं चलिओ भावेण पावए सग्गं।
जहदद्दुरदेवेणं पत्तं वेमाणियसुरत्तं॥२॥

॥ तेरसमं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - उपनय गाथाएं - गुण संपन्न पुरुष भी यदि अच्छे साधुओं के संसर्ग से वंचित हो जाता है तो उसके गुणों की हानि उसी प्रकार हो जाती है, जिस प्रकार दर्दुर के जीव नंद मणिकार की हुई॥१॥

तीर्थंकर भगवान् की जो भाव पूर्वक वंदना करने जाता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है, जैसे दर्दुरदेव ने भगवान् के वंदनार्थ जाने के परिणाम स्वरूप वैमानिक देवत्व प्राप्त किया - वैमानिक देव के रूप में जन्म लिया॥२॥

॥ तेरहवां अध्ययन समाप्त॥

* * * *

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेतली णामं चोद्दसमं अज्झयणं

तेतली पुत्र नामक चौदहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भते! समणेणं जाव संपत्तेणं तेरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते चोद्दसमस्स० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा-भगवन्! श्रमण यावत् मोक्ष-प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने तेरहवें ज्ञात अध्ययन का यह भाव आख्यात किया है तो कृपया कहें, उन्होंने चवदहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है।

अमात्य तेतली-पुत्र

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं णामं णयरं। पमयवणे उज्जाणे।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल उस समय तेतलीपुर नामक नगर था। उसमें प्रमदवन नामक उद्यान था।

(३)

कणगरहे राया। तस्स णं कणगरहस्स पउमावई देवी। तस्स णं कणगरहस्स रण्णो तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंड०।

भावार्थ - तेतलीपुर का कनकरथ नामक राजा था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। राजा कनकरथ के तेतली पुत्र नामक अमात्य था। वह साम-दाम-दंड-भेद मूलक नीति से युक्त था, उनका प्रयोग करने में विज्ञ-विशेषज्ञ था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्णकार मूषिकारदारक एवं पोट्टिला

(४)

तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे णामं मूसियारदारए होत्था अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं भद्दा णामं भारिया। तस्स णं कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला णामं दारिया होत्था रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा।

शब्दार्थ - **कलादे** - स्वर्णकार।

भावार्थ - वहाँ मूषिकारदारक नामक स्वर्णकार निवास करता था। वह धन संपन्न यावत् जन सम्मानित था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। स्वर्णकार के, भद्रा की कोख से उत्पन्न पोट्टिला नामक पुत्री थी। वह रूप, यौवन एवं लावण्य में उत्कृष्ट थी। उसका शरीर अत्यंत सुंदर था।

विवेचन - कलाद का अर्थ स्वर्णकार (सुनार) है। यहाँ जिस कलाद का उल्लेख किया गया है उसके पिता का नाम 'मूषिकार' था। पिता के नाम पर ही उसे 'मूषिकारदारक' संज्ञा प्रदान की गई है। आगमों में अन्यत्र भी इस प्रकार की शैली अपनाई गई है।

(५)

तए णं सा पोट्टिला दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया सव्वालंकारविभूसिया चेडियाचक्कवालसंपरिवुडा उप्पिं पासायवरगया आगासतलगंसि कणगमएणं तिंदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ।

भावार्थ - एक बार का प्रसंग है, कन्या पोट्टिला स्नान कर, अलंकारों से विभूषित होकर, दासियों के समूह से घिरी हुई, अपने प्रासाद के ऊपर, अगासी पर स्वर्ण खचित गेंद से खेल रही थी।

तेतली पुत्र पोट्टिला पर मुग्ध

(६)

इमं च णं तेयलिपुत्ते अमच्चे ण्हाए आसखंधवरगए महया भडचडगर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसवाहणियाए णिज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

भावार्थ - इधर अमात्य तेतली पुत्र स्नान कर, उत्तम घोड़े पर सवार हुआ। वह बहुत से सुभट समूह के साथ घुड़सवारी हेतु निकला। मार्ग में वह मूषिकारदारक नामक स्वर्णकार के घर के पास से गुजरा।

(७)

तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे मूसियारदारगगिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे २ पोट्टिलं दारियं उप्पिं पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणीं पासइ २ त्ता पोट्टिलाए दारियाए रूवे य ३ जाव अज्झोववण्णे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया किं णामधेज्जा वा? तए णं कोडुंबिय पुरिसे तेयलिपुत्तं एवं वयासी-एस णं सामी! कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला णामं दारिया रूवेण य जाव सरीरा।

भावार्थ - मूषिकारदारक के घर के निकट से जाते हुए अमात्य तेतली पुत्र नें प्रासाद की छत पर, अगासी में, सोने की गेंद से क्रीड़ा करती हुई, कन्या पोट्टिला को देखा। देखते ही उसके रूप, यौवन तथा लावण्य उसके मन में समा गये। उसने अपने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो! यह किसकी कन्या है? इसका क्या नाम है?'

तब कौटुंबिक पुरुषों ने कहा - 'स्वामी! यह मूषिकारदारक नामक स्वर्णकार की पुत्री भद्रा की आत्मजा है। इसका नाम पोट्टिला यावत् वह अत्यंत रूपवती है।'

(८)

तए णं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिणियत्ते समाणे अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कलायस्स २ धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह। तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा तेयलिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ० करयल० तहत्ति जेणेव कलायस्स २ गिहे तेणेव उवागया। तए णं से कलाए मूसियारदारए पुरिसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एज्जमाणे पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ २ त्ता आसणेणं उवणिमंतेइ २ त्ता आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी-संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमागमणपओयणं?

शब्दार्थ - अब्भिंतरठाणिज्जा - व्यक्तिगत (आंतरिक) कार्य करने वाले, **पओयणं** - प्रयोजन।

भावार्थ - तेतलीपुत्र ने घुड़सवारी से लौटते ही अपने व्यक्तिगत कार्य करने वाले पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! तुम स्वर्णकार मूषिकारदारक के पास जाओ और उसकी पुत्री, भद्रा की आत्मजा, पोट्टिला को मुझे पत्नी के रूप में देने का अनुरोध करो। तेतली पुत्र द्वारा यों कहे जाने पर वे बड़े हृष्ट-पुष्ट हुए यावत् उन्होंने हाथ जोड़ अंजलि कर, उसके वचन को स्वीकार किया। मूषिकारदारक के घर की ओर चल पड़े। स्वर्णकार ने जब उन्हें आता हुआ देखा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ, आसन से उठा,उठकर अगवानी हेतु सात-आठ कदम सामने जाकर उनको लाया। उनसे आसन ग्रहण करने का निवेदन किया। वे सुखासन पर आसीन हुए, शाश्वत-विश्वस्त हुए-सुसताए तब स्वर्णकार उनसे बोला-देवानुप्रियो! किस प्रयोजन से आपका मेरे यहाँ आगमन हुआ है?

पाणिग्रहण का प्रस्ताव

(६)

तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा कलायं २ एवं वयासी-अम्हे णं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइ णं जाणसि देवाणुप्पिया! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो ता दिज्जउ णं पोट्टिला दारिया तेयलिपुत्तस्स, ता भण देवाणुप्पिया! किं दलामो सुक्कं?

भावार्थ - तब उन निजी आन्तरिक कार्य करने वाले पुरुषों ने स्वर्णकार मूषिकारदारक से कहा - देवानुप्रिय! हम तुम्हारी पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला की तेतली पुत्र की भार्या के रूप में मांग करते हैं। यदि तुम इसे उचित तथा प्रशंसनीय, दोनों के लिए एक जैसा समान,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितप्रद मानते हो तो तेतलीपुत्र के लिए अपनी पुत्री पोट्टिला को देना स्वीकार करो और बतलाओ इसके लिए क्या शुल्क-द्रव्य देय है?

विवेचन - तेतली-पुत्र राजा का मंत्री था। शासन सूत्र उसके हाथ में था। दूसरी ओर मूषिकारदारक एक सामान्य स्वर्णकार था। तेतली-पुत्र उसकी कन्या पर मुग्ध हो जाता है मगर मात्र उसे अपने भोग की सामग्री नहीं बनाना चाहता-पत्नी के रूप में वरण करने की इच्छा करता है। नियमानुसार उसकी मंगनी के लिए अपने सेवकों को उसके घर भेजता है। सेवक मूषिकारदारक के घर जाकर जिन शिष्टतापूर्ण शब्दों में पोट्टिला कन्या की मांगनी करते हैं, वे शब्द ध्यान देने योग्य हैं। राजमंत्री के सेवक न रौब दिखलाते हैं, न किसी प्रकार का दबाव डालते हैं, न धमकी देने का संकेत देते हैं। वे कलाद के समक्ष मात्र प्रस्ताव रखते हैं और निर्णय उसी पर छोड़ देते हैं। कहते हैं - 'यह सम्बन्ध यदि तुम्हें उचित प्रतीत हो, तेतली-पुत्र को यदि इस कन्या के लिए योग्य पात्र मानते हो और दोनों का सम्बन्ध यदि श्लाघनीय और अनुकूल समझते हो तो तेतली-पुत्र को अपनी कन्या प्रदान करो।'

निश्चय ही सेवकों ने जो कुछ कहा, वह राजमंत्री के निर्देशानुसार ही कहा होगा। इस वर्णन से तत्कालीन शासकों की न्यायनिष्ठा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। शुल्क देने का जो कथन किया गया है, वह उस समय की प्रचलित प्रथा थी। इसके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।

(१०)

तए णं कलाए २ ते अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे एवं वयासी - एस चेव णं देवाणुप्पिया! मम सुक्के जण्णं तेयलिपुत्ते मम दारियाणि मित्तेणं अणुग्गहं करेइ। ते ठाणिज्जे पुरिसे विपुलेणं असणेणं ४ पुप्फवत्थ जाव मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ० पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - तदनंतर स्वर्णकार मूषिकादारक ने अमात्य के व्यक्तिगत आंतरिक पुरुषों से कहा - देवानुप्रियो! मैं इसे ही शुल्क मानता हूँ, जो तेतलीपुत्र मेरी पुत्री को अपने लिए मांगने के निमित्त मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं। इस प्रकार कहकर उसने उन पुरुषों को विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य, वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, माला, अलंकार आदि द्वारा सत्कारित-सम्मानित कर विदा किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(११)

तए णं कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहाओ पडिणियत्तंति २ त्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तेयलिपुत्तं एयमट्ठं णिवेयंति।

भावार्थ - तदनंतर आभ्यन्तर स्थानीय पुरुष स्वर्णकार मूषिकारदारक के यहाँ से रवाना हुए, अमात्य तेतलीपुत्र के यहाँ पहुँचे और पूर्वोक्त वृत्तांत निवेदित किया।

भार्या-प्राप्ति

(१२)

तए णं कलाए २ अण्णया कयाइं सोहणंसि तिहि(करण)णक्खत्तमुहुत्तंसि पोट्टिलं दारियं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मित्तणाइ-संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता सव्विड्ढीए ४ तेयलिपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ० पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ।

भावार्थ - स्वर्णकार मूषिकारदारक ने एक दिन शुभ तिथि, नक्षत्र एवं मुहूर्त्त में अपनी पुत्री पोट्टिला को स्नान कराया, सर्व प्रकार के भूषणों से अलंकृत कर शिविका पर आरूढ़ किया।

फिर मित्रों एवं जातीय जनों से घिरा हुआ, अपने घर से रवाना हुआ। सर्वविध ऋद्धि, वैभव के साथ वह तेतलीपुर के बीचोंबीच होता हुआ, तेतलीपुत्र के घर आया और अपनी पुत्री पोट्टिला को उसे भार्या के रूप में प्रदान किया।

(१३)

तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ २ त्ता पोट्टिलाए सद्धिं पट्टयं दुरूहइ २ त्ता सेयापीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ २ त्ता अग्गिहोमं करेइ २ त्ता पाणिग्गहणं करेइ २ त्ता पोट्टिलाए भारियाए मित्तणाइ जाव परिजणं विउलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं पुप्फ (वत्थ) जाव पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - तेतलीपुत्र ने जब पोट्टिला को भार्या के रूप में लाया हुआ देखा तो वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोट्टिला के साथ पाटे पर बैठा। जल भरे चाँदी-सोने के कलशों से अपना मार्जन-अभिषेक करवाया। वैसा कर अग्निहोत्र किया। पाणिग्रहण विधि संपन्न कर अपनी भार्या के पारिवारिक जन यावत् संबंधी आदि को विपुल अशन-पान यावत् पुष्प, अलंकार आदि द्वारा सत्कार सम्मान कर विदा किया।

(१४)

तए णं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं जाव विहरइ।

शब्दार्थ - अविरत्त - अत्यंत अनुराग युक्त।

भावार्थ - तदुपरांत तेतलीपुत्र अपनी पत्नी पोट्टिला में अत्यधिक आसक्त तथा अत्यंत अनुरक्त हो कर भोग-भोगता हुआ रहने लगा।

सत्तालोलुप राजा कनकरथ

(१५)

तए णं से कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य अंतेउरे य मुच्छिए ४ जाए २ पुत्ते वियंगेइ। अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ। एवं पायंगुलियाओ पायंगुट्ठए। वि कण्णसक्कुलीए वि णासापुडाइं फालेइ अंगमंगाइं वियंगेइ।

शब्दार्थ - गढिए - गडा हुआ-अति आसक्त, **गिद्धे** - लोलुप, **अज्झोववण्णे** - सर्वथा तत्परायण, **वियंगेइ** - विकलांग करता, **छिंदइ** - छिन्न कर देता, **कण्णसक्कुलीए** - कान का बाह्य भाग, **फालेइ** - फड़वा देता, चिरवा देता।

भावार्थ - राजा कनकरथ अपने राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, खजाना, कोठार तथा अंतःपुर में अत्यंत मूर्च्छित, आसक्त, लोलुप तथा इनमें सर्वथा रचा-पचा था।

(कोई राजसिंहासन के योग्य न हो सके) इसलिए जो-जो पुत्र उत्पन्न होते, उनमें से किन्हीं को विकलांग करवा देता, कईयों के हाथ की अंगुलियाँ, कईयों के हाथ या पैर की अंगुलियाँ या अंगूठे कटवा देता। किन्हीं के कानों के बाह्य भाग और नथुने फड़वा देता, छिदवा देता। इस प्रकार वह सभी पुत्रों के किसी न किसी तरह अंग-विच्छिन्न करवा देता उनको विकलांग करवा देता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रानी की बुद्धिमत्ता

(१६)

तए णं तीसे पउमावई देवीए अण्णया (कयाइ) पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पज्जित्था-एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगेइ जाव अंगमंगाइं वियंगेइ। तं जइ णं अहं दारयं पयायामि सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स रहस्सि(य)यं चेव सारक्खमाणीए संगोवेमाणिए विहरित्तए-त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-

शब्दार्थ - पयायामि - जन्म दूं।

भावार्थ - एक बार अर्द्धरात्रि के समय रानी पद्मावती के मन में ऐसा विचार उठा-राजा कनकरथ राज्य में यावत् राष्ट्र निधान आदि में अत्यधिक मूर्च्छित और आसक्त है। अतः वह पुत्रों को विकलांग बना देता है यावत् उनके अंगों को विच्छिन्न करवा देता है। अतः मैं यदि आगे पुत्र को जन्म दूं तो मैं राजा कनकरथ से छिपा कर उसका संरक्षण, संगोपन करती रहूँ। यों विचार कर उसने अमात्य तेतलीपुत्र को बुलाया और कहा।

(१७)

एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ। तं जइ णं अहं देवाणुप्पिया! दारगं पयायामि तए णं तुमं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे संवड्ढेहि। तए णं से दारए उम्मुक्क बालभावे (जाव) जोव्वणगमणुप्पत्ते तव य मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ। तए णं से तेयलिपुत्ते पउमावईए एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता पडिगए।

शब्दार्थ - भिक्खाभायणं - भिक्षा भाजन-पालक-पोषक।

भावार्थ - देवानुप्रिय! राजा कनकरथ राज्य में यावत् राष्ट्र निधान आदि में अत्यधिक आसक्त तथा मूर्च्छित है यावत् वह इसीलिए अपने पुत्रों को विकलांग करवा देता है। अतः यदि मैं पुत्र को जन्म दूं तो तुम कनकरथ से छिपा कर क्रमशः संरक्षण, संगोपन करते हुए, उसे बड़ा करो, पालो-पोसो। जब वह शिशु बचपन को पारकर युवा हो जाएगा तब वह मेरे और तुम्हारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिये निर्वहन का आधारभूत होगा। तेतलीपुत्र ने पद्मावती देवी के इस विचार-कथन को स्वीकार किया और वापस लौट गया।

(१८)

तए णं पउमावई य देवी पोट्टिला य अमच्ची सममेव गब्भं गेण्हंति सममेव परिवहंति (सममेव गब्भं परिवड्ढंति) तए णं सा पउमावई णवण्हं मासाणं जाव पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाया। जं रयणिं च णं पउमावई देवी दारयं पयाया तं रयणिं च णं पोट्टिला वि अमच्ची णवण्हं मासाणं विणिहायमावण्णं दारियं पयाया।

शब्दार्थ - विणिहायमावण्णं - विनिघातापन्ना - मरी हुई।

भावार्थ - तदनंतर पद्मावती देवी ने और पोट्टिला नामक अमात्य पत्नी ने एक साथ ही गर्भ धारण किया, परिवहन किया। दोनों गर्भ साथ ही साथ बढ़ते रहे। नौ महीने पूर्ण होने पर यावत् रानी पद्मावती ने देखने में प्रिय और सुरूप शिशु को जन्म दिया।

जिस रात रानी पद्मावती के पुत्र-जन्म हुआ उसी रात अमात्य पत्नी पोट्टिला ने भी नौ मास पूर्ण होने पर मरी हुई कन्या को जन्म दिया।

सन्तति परिवर्तन की आयोजना

(१९)

तए णं सा पउमावई देवी अम्मधाइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुमे अम्मो! तेयलिपुत्तगिहे तेयलिपुत्तं रहस्सियं चेव सद्दावेह। तए णं सा अम्मधाई तहत्ति पडिसुणेइ २ त्ता अंतेउरस्स अवदारेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव तेयलिस्स गिहे जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! पउमावई देवी सद्दावेइ।

भावार्थ - रानी पद्मावती ने धायमाता को बुलाया और कहा - माता! तुम तेतलीपुत्र के यहाँ जाओ और गुप्त रूप में उसे बुला लाओ। तब धायमाता ने यह स्वीकार किया। वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतःपुर के पीछे के दरवाजे से निकली, तेतलीपुत्र के घर में आई और हाथ जोड़कर, मस्तक झुका कर बोली - देवानुप्रिय! रानी पद्मावती ने आपको बुलाया है।

(२०)

तए णं तेयलिपुत्ते अम्मधाईए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे अम्मधाईए सद्धिं साओ गिहाओ णिग्गच्छइ २ त्ता अंतेउरस्स अवदारेणं रहस्सिययं चेव अणुप्पविसइ २ त्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव एवं वयासी - संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।

भावार्थ - तेतलीपुत्र धायमाता से यह सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ, हर्षित हुआ। धायमाता के साथ अपने घर से निकला। अंतःपुर के पीछे के दरवाजे से (गुप्त रूप में) उसमें प्रविष्ट हुआ। हाथ जोड़कर यावत् मस्तक झुकाए उसने रानी से कहा - देवानुप्रिये! मुझे क्या करना है? कृपया आदेश दें।

(२१)

तए णं पउमावई देवी तेयलिपुत्तं एवं वयासी - एवं खलु कणगरहे राया जाव वियंगेइ। अहं च णं देवाणुप्पिया! दारगं पयाया। तं तुमं णं देवाणुप्पिया! तं (एयं) दारगं गेण्हाहि जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ-त्तिकट्टु तेयलिपुत्तस्स हत्थे दलयइ। तए णं तेयलिपुत्ते पउमावई हत्थाओ दारगं गेण्हइ उत्तरिज्जेणं पिहेइ २ त्ता अंतेउरस्स रहस्सिययं अवदारेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं एवं वयासी-

भावार्थ - तब रानी पद्मावती ने तेतलीपुत्र से कहा - राजा कनकरथ ज्यों ही पुत्र उत्पन्न होते हैं यावत् उन्हें विकलांग करवा देते हैं। देवानुप्रिय! मैंने पुत्र को जन्म दिया है। तुम बालक को ले लो यावत् यह तुम्हारे और मेरे लिये जीवन का आधार भूत होगा। यों कहकर बालक को तेतलीपुत्र के हाथ में देने लगी। तेतलीपुत्र ने पद्मावती के हाथ से बालक को लिया, उत्तरीय से उसे ढका एवं अन्तःपुर से गुप्त रूप में (पीछे के दरवाजे से) निकला। अपने घर आया तथा पत्नी पोट्टिला के पास आकर उससे कहने लगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२२)

एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ। अयं च णं दारए कणगरहस्स पुत्ते पउमावई अत्तए (तेणं) तण्णं तुमं देवाणुप्पिए! इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सियंयं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खाहि य संगोवेहि य संवड्ढेहि य। तए णं एस दारए उम्मुक्क बालभावे तव य मम य पउमावईए य आहारे भविस्सइ-त्तिकट्टु पोट्टिलाए पासे णिक्खिवइ (२) पोट्टिलाओ पासाओ तं विणिहायमावण्णियं दारियं गेण्हइ २ त्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ २ त्ता अंतेउरस्स अवदारेणं अणुप्पविसइ २ जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पउमावईए देवीए पासे ठावेइ जाव पडिणिग्गए।

भावार्थ - देवानुप्रिये! राजा कनकरथ अपने राज्य और राष्ट्र में यावत् अत्यंत आसक्त हैं। वह पुत्रों को जन्म लेते ही विकलांग करवा देता है। यह बालक पद्मावती देवी की कोख से उत्पन्न हुआ, राजा कनकरथ का पुत्र है। देवानुप्रिये! तुम इस तथ्य को कनकरथ से गुप्त रखते हुए, इस बालक का संरक्षण, संगोपन, संवर्द्धन करो। यह शिशु बाल्यावस्था के बाद युवा हो जाने पर तुम्हारा, मेरा और रानी पद्मावती का आधारभूत होगा। यों कहकर उसने पोट्टिला के पार्श्व में उस शिशु को रख दिया एवं मृत कन्या को ले लिया। उसे अपने उत्तरीय से ढका एवं अंतःपुर के उसी पीछे के दरवाजे से अन्दर प्रविष्ट हुआ। रानी पद्मावती के पास गया एवं मृत कन्या को उसके पार्श्व में रख दिया यावत् उसी गुप्त द्वार से वापस लौट गया।

(२३)

तए णं तीसे पउमावईए अंगपडियारियाओ पउमावइं देविं विणिहायमावण्णियं (च) दारियं पयायं पासंति २ त्ता जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु सामी! पउमावई देवी मएल्लियं दारियं पयाया।

शब्दार्थ - अंगपडियारियाओ - अंग प्रतिचारिका-दासियाँ।

भावार्थ - तत्पश्चात् पद्मावती की दासियों ने उस मृत जन्मा कन्या को देखा। देखकर वे राजा कनकरथ के पास आई। हाथ जोड़े यावत् मस्तक पर अंजलि बांधे राजा से निवेदन किया-स्वामी! रानी पद्मावती के मरी हुई कन्या जन्मी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२४)

तए णं कणगरहे राया तीसे मएल्लियाए दारियाए णीहरणं करेइ बहू(णि)इं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ २ कालेणं विगयसोए जाए।

शब्दार्थ - **मएल्लियाए** - मरी हुई, **णीहरणं** - निष्कासन-अंतिम संस्कार।

भावार्थ - राजा कनकरथ ने उस कन्या को श्मशान में ले जाकर अन्तिम संस्कार किया एवं मरणोपरांत किए जाने वाले लौकिक कृत्य किए। बीतते समय के साथ राजा विगत शोक हो गया।

अमात्य द्वारा पुत्र जन्मोत्सव

(२५)

तए णं से तेयलिपुत्ते कल्ले कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - खिप्पामेव चारगसोहणं जाव ठिइपडियं जम्हा णं अम्हं एस दारए कणगरहस्स रज्जे जाए तं होउ णं दारए णामेणं कणगज्झए जाव अलं भोगसमत्थे जाए।

शब्दार्थ - **चारगसोहणं** - कारागार से कैदियों की मुक्ति, **ठिइवडियं** - स्थितिपतितां-कुल मर्यादानुरूप जन्मोत्सव।

भावार्थ - तेतलीपुत्र ने अगले दिन कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! कारागृह से बंदीजनों को अविलंब मुक्त करवाओ यावत् हमारी कुल मर्यादानुरूप दस दिवसीय पुत्र जन्मोत्सव आयोजित करने की व्यवस्था करो। ऐसा कर मुझे सूचित करो। मेरा यह पुत्र राजा कनकरथ के राज्य में उत्पन्न हुआ है, इसलिए यह पुत्र कनकध्वज नाम से पुकारा जाय यावत् क्रमशः वह शिशु युवा हुआ, सांसारिक सुखभोग में समर्थ हुआ।

पोट्टिला से विरक्ति

(२६)

तए णं सा पोट्टिला अण्णया कयाइ तेयलिपुत्तस्स अणिट्ठा ६ जाया यावि होत्था णेच्छइ (य) णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए णामगोत्तमवि सवणयाए किंपुण दं(दरि)सणं वा परिभोग वा? तए णं तीसे पोट्टिलाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ जाव समुप्पज्जित्था - एवं खलु अहं तेयलिस्स पुव्विं इट्ठा ५ आसि इयाणिं अणिट्ठा ५ जाया। णेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम णामं जाव परिभोगं वा ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

भावार्थ - किसी समय पोट्टिला तेतलीपुत्र को (कारण विशेषवश) अनिष्ट, अप्रिय, अमनोरम, अकांत, अमनोहर, अप्रीतिकर हो गई। यहाँ तक कि तेतलीपुत्र को उसका नामगोत्र भी सुनना अच्छा नहीं लगता। उसकी ओर देखना या उसके साथ सुख भोगने की तो बात ही क्या?

पोट्टिला ने पति का यह व्यवहार देखा तो, एक दिन आधी रात के समय उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ - मैं पहले तेतलीपुत्र को इष्ट, प्रिय, मनोरम थी किंतु इस समय अमनोहर, अकांत, अप्रीतिकर हो गई हूँ। तेतलीपुत्र मेरा नाम तक नहीं सुनना चाहता यावत् सुख-भोग की तो बात ही क्या?

इस प्रकार उसका मन टूट गया यावत् वह निराश हो गई और हथेली पर मुँह रखे आर्त्तध्यान करने लगी।

(२७)

तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमण संकप्पं जाव झियायमाणं पासइ २ त्ता एवं वयासी - माणं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि, तुमं णं मम महाणसंसि विपुलं असणं ४ उवक्खडावेहि २ त्ता बहूणं समणमाहण जाव वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि। तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स अमच्चेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ० तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता कल्लाकल्लिं महाणसंसि विपुलं असणं ४ जाव दवावेमाणी विहरइ।

भावार्थ - तेतलीपुत्र ने जब देखा कि पोट्टिला का मन बड़ा खिन्न एवं निराश है यावत् आर्त्तध्यानरत है तो उसने उससे कहा - देवानुप्रिये! तुम निराश मत बनो। तुम मेरी पाक (भोजन) शाला में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाओ तथा बहुत से श्रमणों, ब्राह्मणों यावत् याचकों को स्वयं देती रहो, दिलवाती रहो।

तेतलीपुत्र द्वारा यों कहे जाने पर पोट्टिला प्रसन्न एवं परितुष्ट हुई। उसने उसका कथन स्वीकार किया एवं भोजनशाला में चतुर्विध आहार तैयार करवाकर यावत् अपेक्षित जनों को देती रही, दिलवाती रही।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्या सुव्रता का पदार्पण

(२८)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ णामं अज्जाओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं (चरमाणीओ) जेणामेव तेयलिपुरे णयरे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हंति २ त्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।

भावार्थ - उस काल उस समय सुव्रता नामक आर्या, जो ईया समिति यावत् भाषासमिति आदि सर्वविध आचार मर्यादाओं से युक्त, परम ब्रह्मचारिणी एवं बहुश्रुता थी, अपने बहुत-सी अन्तेवासिनियों के साथ क्रमशः विहार करती हुई तेतलीपुर नगर में आई। संयम एवं तप से स्वयं को आत्मानुभावित करती हुई, वहाँ अवस्थित रही।

(२९)

तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ जाव अडमाणीओ तेयलिस्स गिहं अणुपविट्ठाओ। तए णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ २ त्ता हट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ० वंदइ णमंसइ, वं० २ त्ता विपुलं असणं ४ पडिलाभेइ २ त्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - **संघाडए** - सिंघाडा-दो या तीन साध्वियों का समूह, **पोरिसीए** - पौरुषी-प्रहर, **अडमाणीओ** - भिक्षार्थ घूमती हुई।

भावार्थ - सुव्रता आर्या के एक सिंघाड़े ने अपनी दिनचर्यानुरूप प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया एवं तीसरे प्रहर में उस सिघाड़े की साध्वियाँ भिक्षाटन के लिए तेतलीपुत्र के घर में प्रविष्ट हुई। पोट्टिला ने उनको आते हुए देखा तो आसन से उठी तथा उन्हें यथेष्ट चतुर्विध आहार द्वारा प्रतिलाभित किया एवं वह उनसे कहने लगी।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र के **'पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ'** के पश्चात् 'जाव' शब्द से विस्तृत पाठ का संकेत दिया गया है, जिसमें साधु-साध्वी के दैवसिक कार्यक्रम के कुछ अंश का उल्लेख है, साथ ही भिक्षा सम्बन्धी विधि का भी उल्लेख किया गया है। उस पाठ का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आशय इस प्रकार है - 'साध्वियों ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, द्वितीय प्रहर में ध्यान किया, तीसरा प्रहर प्रारंभ होने पर शीघ्रता, चपलता और संभ्रम के बिना अर्थात् जल्दी से गोचरी के लिए जाने की उत्कंठा न रख कर निश्चिंत और सावधान भाव से मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन किया, पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना की, पात्रों का प्रमार्जन किया तत्पश्चात् पात्र ग्रहण करके अपनी प्रवर्त्तिका सुव्रता साध्वी के निकट गई। उन्हें वन्दन-नमस्कार किया और भिक्षाचर्या के लिए तेतलीपुर नगर के उच्च, नीच एवं मध्यम घरों में जाने की आज्ञा मांगी।

सुव्रता साध्वी ने उन्हें भिक्षा के लिए जाने की अनुमति दे दी। तत्पश्चात् वे आर्यिकाएँ उपाश्रय से बाहर निकलीं। धीमी, अचंचल और असंभ्रान्त गति से गमन करती हुई चार हाथ सामने की भूमि-मार्ग पर दृष्टि रखे हुए-ईर्यासमिति से नगर में श्रीमन्तों, गरीबों तथा मध्यम परिवारों में भिक्षा के लिए अटन करने लगीं। अटन करती-करती वे तेतली-पुत्र के घर पहुँची।''

इस वर्णन से स्पष्ट है कि भिक्षार्थ गमन करने से पूर्व साधु-साध्वी को वस्त्र-पात्रादि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन करना आवश्यक है, वे जिसकी निश्रा (नेश्राय) में हों, उनकी आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए तथा शीघ्र भिक्षाप्राप्ति के विचार से त्वरा या चपलता नहीं करनी चाहिए। भिक्षा के लिए धनी, निर्धन एवं मध्यम वर्ग के घरों में जाना चाहिए। भिक्षा का आगमोक्त समय तृतीय प्रहर है, यह भी इससे स्पष्ट हो जाता है, फिर भी इस विषय में देश-काल का विचार रखना चाहिए।

(३०)

एवं खलु अहं अज्जाओ! तेयलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा ५ आसि इयाणिं अणिट्ठा ५ जाव दंसणं वा परिभोगं वा, तं तुब्भे णं अज्जाओ सिक्खियाओ बहुणायाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागर जाव आहिंडह बहूणं राईसर जाव गिहाइं अणुपविसह तं अत्थियाइं भे अज्जाओ! केइ कहिंचि चुण्णजोए वा मंतजोगे वा कम्मणजोए वा हियउड्डावणे वा काउड्डावणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा भूइकम्मे वा मूले (वा) कंदे (वा) छल्ली वल्ली सिलिया वा गुलिया वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धपुव्वे जेणाहं तेयलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा ५ भवेज्जामि?

शब्दार्थ - चुण्णजोए - चूर्ण योग-स्तंभन आदि हेतु प्रयुक्त किया जाने वाला चूर्ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेष, **कम्मणजोए** - कामणयोग-उच्चाट-आदि हेतु प्रयोग में किया जाने वाला दूषित पदार्थ मिश्रित भैषज योग, **हियउड्डावणे** - चित्त एवं हृदय को आकर्षित करने वाली वस्तुओं के प्रयोग, **काउड्डावणे**- शरीर को आकर्षित करने वाले, **आभिओगिए** - पराभवकारी प्रयोग, **वसीकरणे** - वश में करने के प्रयोग, **कोउयकम्मे** - सौभाग्यवर्द्धक स्नानादि कृत्य, **भूइकम्मे**- अभिमंत्रित भस्म प्रक्षेपण रूप प्रयोग, **सिलिया**- शिलिका-तृण विरोध, **उवलद्धपुव्वे**-पूर्व प्राप्त।

भावार्थ - आर्याओ! मैं पहले तेतली पुत्र को इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोहर थी। अब मैं अनिष्ट, अप्रिय, अकांत, अमनोहर हो गई हूँ। तेतली पुत्र मेरा नाम-गोत्र भी सुनना नहीं चाहता, फिर मुझे देखने या सुख भोगने की तो बात ही क्या? आर्याओ! आप अत्यधिक शिक्षित, बहुपंडित एवं ज्ञानयुक्त हैं। बहुत से गांव, नगर यावत् बहुत से स्थानों में भ्रमण करती रही हैं। राजा, विशिष्ट वैभवयुक्त पुरुष यावत् सार्थवाह के घरों में प्रविष्ट होती रही हैं।

आर्याओ! बतलाएं कही कोई ऐसा चूर्ण योग, मंत्रयोग, कामण योग, चित्ताकर्षक, देहाकर्षक पराभवकारी, वशीकरण, सौभाग्य वर्द्धक योग या कोई अभिमंत्रित भस्म प्रक्षेप, मूलकंद, छाल, लता आदि से बनी औषधि विशेष, गुटिका, जड़ी-बूटी आदि कोई आपको पूर्व लब्ध है, जिसके प्रयोग से तेतलीपुत्र के लिए मैं पुनः इष्ट, प्रिय, कांत, मनोज्ञ मनोहर हो जाऊँ।

(३१)

तए णं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवं वुत्ताओ समाणीओ दोवि कण्णे ठाइंति २ त्ता पोट्टिलं एवं वयासी-अम्हे णं देवाणुप्पिए! समणीओ णिग्गंथीओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ। णो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पयारं कण्णेहि वि णिसामेत्तए किमंग पुण उवदिसित्तए वा आयरित्तए वा? अम्हे णं तव देवाणुप्पिया! विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिकहिज्जाओ।

शब्दार्थ - **एयप्पयारं** - इस प्रकार के।

भावार्थ - पोट्टिला द्वारा यों कहे जाने पर उन साध्वियों ने अपने दोनों कान बंद कर लिए और पोट्टिला से बोली - देवानुप्रिये! हम श्रमणियाँ हैं, निग्रन्थिनियाँ हैं। गुप्ति समिति यावत् ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने वाली हैं। हमें इस प्रकार का वचन कानों से सुनना भी नहीं कल्पता। फिर ऐसा उपदेश देने या आचरण करने की तो बात ही क्या? देवानुप्रिये! हम तुम्हें सर्वज्ञ प्ररूपित उत्तम धर्म का उपदेश कर सकती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोट्टिला द्वारा श्राविकाव्रत स्वीकार

(३२)

तए णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एवं वयासी-इच्छामि णं अज्जाओ! तुम्हं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं णिसामित्तए। तए णं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तं धम्मं परिकहेंति। तए णं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ० एवं वयासी-सद्दहामि णं अज्जाओ! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव धम्मं पडिवज्जित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - तब पोट्टिला ने उनसे कहा - आर्याओ! मैं आपसे केवलि प्ररूपित धर्म सुनना चाहती हूँ। तब साध्वियों ने पोट्टिला को विविध प्रकार से धर्म की शिक्षा दी।

पोट्टिला धर्मोपदेश सुनकर हर्षित और परितुष्ट हुई और बोली-आर्याओ! मुझे अर्हत सिद्धांत में श्रद्धा है। वह वैसा ही है, जैसा आप बतलाती हैं। आपका फरमाना यथार्थ है। मैं आपसे पांच अणुव्रत यावत् सात शिक्षा व्रत मय श्रावक धर्म स्वीकार करना चाहती हूँ। साध्वियों ने कहा-देवानुप्रिये! जिससे तुम्हें सुख मिले, वैसा करो।

(३३)

तए णं सा पोट्टिला तासिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव धम्मं पडिवज्जइ ताओ अज्जाओ वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता पडिविसज्जेइ। तए णं सा पोट्टिला समणोवासिया जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ।

भावार्थ - तदनंतर पोट्टिला ने उन साध्वियों से द्वादश लक्षण श्रावक धर्म स्वीकार किया। उन्हें वंदन, नमन कर विदा किया।

तत्पश्चात् पोट्टिला श्रमणोपासिका हो गई यावत् वह श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक-एषणीय आहार आदि देती हुई रहने लगी।

(३४)

तए णं तीसे पोट्टिलाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए० एवं खलु अहं तेयलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा ५ आसि इयाणिं अणिट्ठा ५ जाव परिभोगं वा, तं सेयं खलु मम सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए, एवं संपेहेइ २ त्ता कल्लं पाउ० जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! मए सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे णिसंते जाव अब्भणुण्णाया पव्वइत्तए।

भावार्थ - तत्पश्चात् पोट्टिला अर्द्धरात्रि के समय कुटुंब विषयक चिंता में जाग रही थी तो उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ, मैं पहले तेतली पुत्र के लिए इष्ट, कांत, मनोहर, प्रिय, मनोज्ञ थी। इस समय मैं अनिष्ट, अकांत, अमनोहर, अप्रिय, अमनोज्ञ हो गई हूँ। यावत् मुझे देखने और मेरे साथ सुख भोगना तो दूर की बात है, वह मेरा नाम तक नहीं सुनना चाहता। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं आर्या सुव्रता के पास दीक्षा स्वीकार कर लूँ। यों उसके मन में भावोद्वेलन होने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर वह तेतली पुत्र के पास गई। हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि घुमाते हुए, वह बोली-देवानुप्रिय! मैंने आर्या सुव्रता के पास धर्म-श्रवण किया है यावत् मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर उनसे दीक्षित होना चाहती हूँ।

अमात्य द्वारा सशर्त प्रव्रज्या की अनुज्ञा

(३५)

तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! मुंडा पव्वइया समाणी कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जिहिसि तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए! ममं ताओ देवलोयाओ आगम्म केवलिपण्णत्ते धम्मे बोहिहि तो हं विसज्जेमि, अह णं तुमं ममं ण संबोहेसि तो ते ण विसज्जेमि। तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ।

शब्दार्थ - बोहिहि - प्रतिबोध दो-समझाओ, विसज्जेमि - विसर्जित करूँ-आज्ञा दूँ।

भावार्थ - तेतलीपुत्र ने पोट्टिला को इस प्रकार कहा - देवानुप्रिये! यदि तुम मुण्डित, प्रव्रजित होकर, आयुष्यपूर्ण कर, किसी भी देवलोक में जन्म लो तो उस देवलोक से आकर मुझे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवली प्ररूपित धर्म का बोध कराओ तो मैं तुम्हें दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करूँ। यदि तुम मुझे आकर प्रतिबुद्ध न करो तो मैं तुम्हें इस प्रकार की आज्ञा नहीं देता।

इस पर पोट्टिला ने तेतली पुत्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

पोट्टिला प्रव्रजित

(३६)

तए णं तेयलिपुत्ते विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ २ त्ता मित्तणाइ जाव आमंतेइ जाव सम्माणेइ २ पोट्टिलं ण्हायं जाव पुरिस सहस्सवाहणीयं सीयं दुरूहित्ता मित्तणाइ जाव (सं)परिवुडे सव्विड्डिए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीयाओ पच्चोरुहइ २ त्ता पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव सुव्वया अज्जा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वंदइ णमंसइ, वं० २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा ५ एस णं संसारभउव्विगा जाव पव्वइत्तए, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणिभिक्खं दलयामि। अहासुहं मा पडिबंधं करेह।

शब्दार्थ - सिस्सिणिभिक्खं - शिष्या रूप भिक्षा।

भावार्थ - तब तेतली पुत्र ने विपुल मात्रा में चतुर्विध आहार तैयार करवाया। मित्र जातीय जन यावत् स्वजन को आमंत्रित किया यावत् सत्कारित, सम्मानित किया।

ऐसा करने के बाद पोट्टिला को स्नान करवाया। सभी अलंकारों से विभूषित करवाया तथा एक सहस्र पुरुषों द्वारा वहनीय शिविका पर आरूढ करा कर वह स्वजन जातीय जन यावत् मित्र संबंधी जन आदि से घिरा हुआ, अत्यंत ऋद्धि-वैभव के साथ यावत् गाजे-बाजों के साथ, तेतलीपुर के बीचों-बीच से निकलता हुआ, आर्या सुव्रता जहाँ विराजित थीं, उस स्थान पर आया। पोट्टिला को शिविका से उतारा। उसे आगे कर वह आर्या सुव्रता के समीप पहुँचा और वंदन, नमन कर कहने लगा-देवानुप्रिये! यह मेरी प्रिय पत्नी पोट्टिला है। यह संसार के भय से उद्विग्न है यावत् आपसे दीक्षा लेना चाहती है। देवानुप्रिय! मैं शिष्या के रूप में आपको भिक्षा दे रहा हूँ। आर्या सुव्रता ने तेतली पुत्र से कहा-जिससे तुम्हें सुख मिले, वैसा करो, किन्तु इसमें विलंब मत करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३७)

तए णं सा पोट्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ० उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता सयमेव आभरण मल्लालंकार ओमुयइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता एवं वयासी-आलित्ते णं भंते! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव एक्कारस अंगाइं बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ २ त्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाइं आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णा।

शब्दार्थ - आलित्ते - आदीप्त-जल रहा है।

भावार्थ - आर्या सुव्रता द्वारा यों कहे जाने पर पोट्टिला बहुत प्रसन्न हुई। उत्तर पूर्व दिशा भाग में-ईशान कोण में जाकर अपने आभरण, माला, अलंकार उतार दिए तथा स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया एवं आर्या सुव्रता के निकट आकर वंदन, नमस्कार किया और बोली-यह संसार दुःखों की अग्नि से जल रहा है। मैं प्रव्रज्या स्वीकार कर इससे छूटना चाहती हूँ।

इत्यादि वर्णन देवानंदा की दीक्षा विषयक वर्णन से ग्राह्य है जो भगवती सूत्र में आया है। यावत् पोट्टिला ने दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया। एक मासिक संलेखणा द्वारा साठ भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करते हुए, आलोचना, प्रतिक्रमण कर, समाधि पूर्वक उसने यथाकाल देहत्याग किया एवं किसी एक देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुई।

कनकरथ की मृत्यु : उत्तराधिकारी की गवेषणा

(३८)

तए णं से कणगरहे राया अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था। तए णं राईसर जाव णीहरणं करेंति २ त्ता अण्णमण्णं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था। अम्हे णं देवाणुप्पिया!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा। अयं च णं तेयली अमच्चे कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए दिण्णवियारे सव्वकज्जवट्टावए यावि होत्था। सेयं खलु अम्हं तेयलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तए-त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तेयलिपुत्तं एवं वयासी।

शब्दार्थ-कालधम्मुणा संजुत्ते - मरण प्राप्त, **रायाहीणा** - राजा के वशवर्ती, **रायाहिट्ठिया**- राजाधिष्ठित-राजा के आश्रम में अवस्थित, **लद्धपच्चए** - लब्धप्रत्यय-विश्वास पात्र, **दिण्णवियारे**- लोक हितकारी परामर्शक, **जाइत्तए** - याचना करें।

भावार्थ - किसी समय राजा का देहावसान हो गया। तब अधीनस्थ राजा ऐश्वर्यशाली सामंत, सार्थवाह आदि ने राजा की बड़े वैभव, सत्कार-समारोह के साथ अन्तिम क्रिया की और वे परस्पर कहने लगे-देवानुप्रियो! कनकरथ राजा ने राज्य आदि में आसक्त होने के कारण अपने पुत्रों को विकलाङ्ग कर दिया है। देवानुप्रियो! हम लोग राजा के अधीन, वशवर्ती एवं आश्रित रहे हैं। हमारे सभी कार्य राजा की अधीनता में होते रहे हैं। अमात्य तेतली पुत्र राजा कनकरथ के सभी कार्यों में, सभी भूमिकाओं में सुयोग्य परामर्शक रहा है। राजा के सभी कार्यों को उन्नतिशील बनाता रहा है। अतः यह श्रेयस्कर है कि हम अमात्य से राजकुमार की - राजा के उत्तराधिकारी की याचना करें। अर्थात् वह तेतलीपुत्र किसी राज लक्षण सम्पन्न पुरुष को चयनित कर सिंहासनासीन कराए। सभी ने इस बात को स्वीकार किया और वे अमात्य तेतली पुत्र के पास आए और उससे बोले।

(३९)

एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य जाव वियंगेइ, अम्हे (य) णं देवाणुप्पिया! रायहीणा जाव रायहीणकज्जा, तुमं च णं देवाणुप्पिया! कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेसु जाव रज्जधुरा चिंतए (होत्था) तं जइ णं देवाणुप्पिया! अत्थि केइ कुमारे रायलक्खण संपण्णे अभिसेयारिहे तण्णं तुमं अम्हं दलाहि जाणं अम्हे महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचामो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **अभिसेयारिहे** - अभिषेकार्ह-राज्याभिषेक योग्य।

भावार्थ - देवानुप्रिय! राजा कनकरथ राज्य में, राष्ट्र में अत्याधिक आसक्त होने से जन्मने वाले पुत्रों को विकलांग करवाता रहा। देवानुप्रिय! आज तक हम राजा के अधीन रहे हैं, यावत् हमारे सभी कार्य राजा के ही आदेश-निर्देश में होते रहे हैं। देवानुप्रिय! राजा के सभी कार्यों में यावत् राज्य विषयक समान दायित्वों के निर्वहण में चिंतनशील रहे हैं। देवानुप्रिय! राज लक्षण संपन्न, राज्याभिषेक योग्य उत्तराधिकारी हमें चयनित कर दें। जिसका हम बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक करे।

कनकध्वज का चयन : राज्याभिषेक

(४०)

तए णं तेयलिपुत्ते तेसिं ईसर जाव एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता कणगज्झयं कुमार ण्हायं जाव सस्सिसीरयं करेइ २ त्ता तेसिं ईसर जाव उवणेइ २ त्ता एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया! कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए कणगज्झए णामं कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खण संपण्णे मए कणगरहस्स रण्णो रहस्सिययं संवड्ढिए, एयं णं तुब्भे महया २ रायाभिसेणं अभिसिंचह। सव्वं च तेसिं उट्ठाणपरियावणियं परिकहेइ। तए णं ते ईसर जाव कणगज्झयं कुमारं महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचंति।

शब्दार्थ - **उट्ठाणपरियावणियं** - जन्म से लेकर पालन-पोषण तक का वृत्तान्त।

भावार्थ - तेतलीपुत्र ने तब उन सामंतों, राज्याधिकारियों, विशिष्टजनों का यह कथन सुन (उसने) राजकुमार कनकध्वज को स्नानादि करवाया यावत् वस्त्राभूषण द्वारा शोभा युक्त किया, उनके समक्ष उपस्थित किया और कहा-देवानुप्रियो! यह राजा पद्मावती देवी की कुक्षि से उत्पन्न कनकरथ का पुत्र राजकुमार कनकध्वज है। यह राज्याभिषेक के योग्य है, राजोचित लक्षणों से युक्त है। मैंने राजा कनकरथ से छिपाकर इसका संवर्द्धन किया। तुम लोग इसका बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक करो। यों कहते हुए तेतली पुत्र ने राजकुमार के जन्म से लेकर पालन-पोषण पर्यंत सारा वृत्तांत कह सुनाया। यह सुनकर सामंत आदि विशिष्ट पुरुषों ने राजकुमार कनकध्वज का बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(४१)

तए णं से कणगज्झए कुमारे राया जाए महयाहिमवंत मलय० वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ। तए णं सा पउमावई देवी कणगज्झयं रायं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-एस णं पुत्ता! तव रज्जे जाव अंतेउरे य तुमं च तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स पहावेणं, तं तुमं णं तेयलिपुत्तं अमच्चं आढाहि परिजाणाहि सक्कारेहि सम्माणेहि इंतं अब्भुट्ठेहि ठियं पज्जुवासाहि वच्चंतं पडिसंसाहेहि अद्धासणेणं उवणिमंतेहि भोगं च से अणुवड्ढेहि।

शब्दार्थ - **इंतं** - आते हुए, **वच्चंतं** - बोलते हुए, **पडिसंसाहेहि** - प्रशंसा करना।

भावार्थ - तब सामंत आदि विशिष्ट जनों ने उसका अभिषेक किया। कनकध्वज राजा हो गया। वह लोकमर्यादानुपालक होने से महा हिमवान् जैसा, यश और कीर्ति के संप्रसार के कारण महामलय सदृश तथा दृढ़ कर्त्तव्य निष्ठ होने के कारण मेरु के जैसा था। एतद्विषयक विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है यावत् कनकध्वज राज्य का प्रशासन करता हुआ रहने लगा। रानी पद्मावती ने राजा कनकध्वज को बुलाया और कहा-पुत्र! यह तुम्हारा राज्य यावत् राष्ट्र सेना, वाहन, निधान, कोठार, अन्तःपुर सब तुम्हें तेतली-पुत्र के प्रभाव से, अनुग्रह से प्राप्त हुए हैं। तुम अमात्य तेतली पुत्र का आदर करना। उसे अपना हितकर समझना, सत्कार-सम्मान करना। जब वे आएं तब खड़े होना। जब पास में खड़े हो तब विनय प्रदर्शित करना। जब वे बोलें तो वचनों की प्रशंसा करना, बैठने के लिए अपने आसन का अर्द्ध भाग प्रदान करना। उसके सुख-भोग के साधनों को अनुवर्द्धित करना, बढ़ाते रहना।

(४२)

तए णं से कणगज्झए पउमावईए देवीए तहत्ति वयणं पडिसुणेइ जाव भोगं च से संवड्ढेइ।

भावार्थ - राजा कनकध्वज ने राजमाता पद्मावती के कथन को "ऐसा ही करूँगा" यह कह कर स्वीकार किया यावत् उसने पद्मावती के कथनारूप तेतली पुत्र का सत्कार-सम्मान किया, उसके सुखोपभोग के साधनों को बढ़ाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिबोध का युक्तियुक्त प्रयास

(४३)

तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अभिक्खणं केवलि पण्णत्ते धम्मे संबोहेइ णो चेव णं से तेयलिपुत्ते संबुज्झइ। तए णं तस्स पोट्टिल देवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए० एवं खलु कणगज्झए राया तेयलिपुत्तं आढाइ जाव भोगं च संवड्ढेइ। तए णं से तेयली पुत्ते अभिक्खणं २ संबोहिज्जमाणे वि धम्मे णो संबुज्झइ। तं सेयं खलु कणगज्झयं तेयलिपुत्ताओ विप्परिणामेत्तए -त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता कणगज्झयं तेयलिपुत्ताओ विप्परिणामेइ।

भावार्थ - तदनंतर पोट्टिलदेव ने तेतली पुत्र को बार-बार केवलिप्रज्ञप्त धर्म का प्रतिबोध दिया किन्तु तेतली पुत्र संबुद्ध नहीं हुआ। तब पोट्टिल देव के मन में ऐसा विचार आया राजा- कनकध्वज तेतली पुत्र का आदर करता है, सत्कार सम्मान करता है। उसके सुखोपभोग की सामग्री को बढाता है। इसलिए तेतलीपुत्र बार-बार समझाए जाने पर भी धर्म को नहीं समझ पा रहा है, उस ओर आकृष्ट नहीं हो रहा है। इसलिए यही श्रेयस्कर है कि मैं राजा कनकध्वज को तेतलीपुत्र के विपरिणामित–विरुद्ध कर दूँ। यों सोच कर उसने राजा को तेतली पुत्र से विमुख कर दिया।

(४४)

तए णं तेयलिपुत्ते कल्लं ण्हाए जाव पायच्छित्ते आसखंधवरगए बहूहिं पुरिसेहिं (सद्धिं) संपरिवुडे साओ गिहाओ णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - तदनंतर तेतलीपुत्र दूसरे दिन स्नान कर यावत् प्रायश्चित्त-अमंगल निवारण मूलक कृत्य संपादित कर घोड़े पर सवार होकर बहुत से पुरुषों से घिरा हुआ अपने घर से निकला और राजा कनकध्वज जहाँ था, उसी ओर रवाना हुआ।

(४५)

तए णं तेयलिपुत्तं अमच्चं जे जहा बहवे राईसरतलवर जाव पभियओ पासंति

ते तहेव आढायंति परियाणंति अब्भुट्ठेति २ त्ता अंजलि परिग्गहं करेंति इट्ठाहिं कंताहि जाव वग्गूहिं आलवेमाणा य संलवमाणा य पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य समणुगच्छंति।

भावार्थ - अमात्य तेतली पुत्र को ज्यों ही बहुत से राजन्यगण सामंत यावत् राज्य सम्मानित पुरुषों ने देखा तो उन्होंने पूर्ववत उसका आदर किया। सम्मान की दृष्टि से देखा, खडे

संजायभए एवं वयासी-रुट्ठे णं मम कणगज्झए राया। हीणे णं मम कणगज्झए राया। अवज्झाए णं कणगज्झए (राया)। तं ण णज्जइ णं मम केणइ कुमारेण मारेहिइ त्तिकट्टु भीए तत्थे (य) जाव सणियं २ पच्चोसक्केइ २ त्ता तमेव आसखंधं दुरुहेइ २ त्ता तेयलिपुर मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - अवज्झाए - दुर्भाव युक्त, कु-मारेण - कुत्सित-वीभत्स मृत्यु से।

भावार्थ - तत्पश्चात् तेतली पुत्र कनकध्वज राजा के पास गया। कनकध्वज ने तेतलीपुत्र को आते हुए देखा। उसका जरा भी आदर नहीं किया। न कोई महत्त्व ही दिया और न उठकर सम्मान ही किया। वह इस प्रकार अनादर भाव पूर्वक, पराङ्मुख होकर बैठा रहा।

अमात्य तेतली पुत्र राजा कनकध्वज के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा रहा तो भी राजा ने उसका जरा भी आदर सम्मान नहीं किया। वह मुंह को दूसरी ओर किए चुपचाप बैठा रहा।

मारेहिइ त्तिकट्टु भीए तत्थे (य) जाव सणियं २ पच्चोसक्केइ २ त्ता तमेव आसखंधं दुरुहेइ २ त्ता तेयलिपुर मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - अवज्झाए - दुर्भाव युक्त, कु-मारेण - कुत्सित-वीभत्स मृत्यु से।

भावार्थ - तत्पश्चात् तेतली पुत्र कनकध्वज राजा के पास गया। कनकध्वज ने तेतलीपुत्र को आते हुए देखा। उसका जरा भी आदर नहीं किया। न कोई महत्त्व ही दिया और न उठकर सम्मान ही किया। वह इस प्रकार अनादर भाव पूर्वक, पराङ्मुख होकर बैठा रहा।

अमात्य तेतली पुत्र राजा कनकध्वज के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा रहा तो भी राजा ने उसका जरा भी आदर सम्मान नहीं किया। वह मुंह को दूसरी ओर किए चुपचाप बैठा रहा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेतलीपुत्र ने जब यह जाना कि राजा कनकध्वज मेरे प्रति विपरीत परिणाम युक्त है, मुझ पर नाराज है। यह जान वह भयभीत यावत् उद्विग्न हो गया और मन ही मन सोचने लगा-राजा कनकध्वज मुझसे रूष्ट हैं। मेरे प्रति उसके मन में हीन भाव है। वह मेरे संबंध में बुरा चिंतन लिए हुए है। इसलिए न जाने राजा मुझे कब कुमौत मरवा दे? यों विचार कर वह बहुत ही भयभीत यावत् त्रस्त हो गया यावत् वह धीरे-धीरे वापस लौट पड़ा, घोड़े पर सवार हुआ एवं तेतली नगर के बीचों बीच से होता हुआ अपने घर की ओर लौट पड़ा।

(४७)

तए णं तेयलिपुत्तं जे जहा ईसर जाव पासंति ते तहा णो आढायंति णो परियाणंति णो अब्भुट्ठेंति णो अंजलिं० इट्ठाहिं जाव णो संलवंति णो पुरओ य पिट्ठओ य पासओ (य मग्गओ य) समणुगच्छंति। तए णं तेयलिपुत्ते जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। जा वि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ तंजहा - दासेइ वा पेसेइ भाइल्लएइ वा सा वि य णं णो आढाइ ३। जा वि य से अब्भिंतरिया परिसा भवइ तंजहा - पियाइ वा मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा सा वि य णं णो आढाइ ३ तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सयणिज्जंसि णिसीयइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ णिग्गच्छामि तं चेव जाव अब्भिंतरिया परिसा णो आढाइ णो परियाणाइ णो अब्भुट्ठेइ।

शब्दार्थ - भाइल्लएइ - हाली-कृषि कर्मकारी सेवक।

भावार्थ - तब तेतली पुत्र को सामंत यावत् विशिष्ट राजपुरुषों ने देखा तो उन्होंने उसे कोई आदर या महत्त्व नहीं दिया। न उसके सामने उठे, न उसको हाथ जोड़े न इष्ट यावत् मधुर वाणी से बात की तथा न आगे-पीछे-अगल-बगल में चले ही।

तब तेतली पुत्र अपने घर में आया। उसकी बाहरी परिषद्-घर के बाहरी कार्य व्यवस्था में संलग्न दास, प्रेष्य तथा हाली आदि में से किसी ने उसका आदर नहीं किया। भीतरी परिषद् पिता, माता, पुत्र यावत् पुत्र वधू आदि ने भी उसका आदर नहीं किया और न सम्मान में कोई उठा ही।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्महत्या का असफल प्रयास

(४८)

तं सेयं खलु मम अप्पाणं जीवियाओ ववरोवित्तए - त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता तालउडं विसं आसगंसि पक्खिवइ, से य विसे णो संकमइ। तए णं से तेयलिपुत्ते (अमच्चे) णीलुप्पल जाव असिं खंधेसि ओहरइ, तत्थ वि य से धारा ओपल्ला। तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ २ पासगं गीवाए बंधइ २ त्ता रुक्खं दुरूहइ २ त्ता पासं रुक्खे बंधइ २ त्ता अप्पाणं मुयइ तत्थ वि य से रज्जू छिण्णा। तए णं से तेयलिपुत्ते महइ महालयं सिलं गीवाए बंधइ २ त्ता अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि अप्पाणं मुयइ, तत्थ वि से थाहे जाए। तए णं से तेयलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ २ त्ता अप्पाणं मुयइ, तत्थ वि य से अगणिकाए विज्झाए।

शब्दार्थ - **तालउडं** - अत्यंत तीव्र, **आसगंसि** - मुख में, **संकमइ** - प्रभाव किया, **ओहरइ** - प्रहार करता है, **ओपल्ला** - कुंठित, **पासगं** - फंदा, **अतारं** - न तीरे जा सकने योग्य, **अपोरिसियंसि** - पुरुष प्रमाण रहित-अपरिमित, **थाहे** - छिछला, **विज्झाए** - बुझ गई।

भावार्थ - ऐसी स्थिति में तेतली पुत्र ने विचार किया कि मैं अपने जीवन को समाप्त कर दूँ। यों सोच कर उसने अपने मुँह में तालपुट विष रखा किंतु विष ने कोई असर नहीं किया। तत्पश्चात् उसने नीले कमल यावत् अलसी पुष्प आदि के सदृश नील आभा युक्त तीक्ष्ण तलवार से अपने कंधे पर प्रहार किया किन्तु उसकी धार कुंठित हो गई। इसके पश्चात् तेतलीपुत्र अशोक वाटिका में गया। अपने गले में फंदा लगाया पेड़ पर चढ़ा, फंदे को पेड़ से बांधा, अपने आपको नीचे गिराया तो फंदे की रस्सी टूट गई। तेतली पुत्र ने एक बहुत बड़ी शिला को गले में बांधा एवं अथाह, अतरणीय, अपरिमित जल में अपने आपको डाल दिया तो वह जल उसके लिए छिछला बन गया। फिर तेतली पुत्र ने सूखे तिनकों के ढेर में आग लगाई और अपने आपको डाल दिया तो वह आग ही बुझ गई।

(४९)

तए णं से तेयलिपुत्ते एवं वयासी-सद्धेयं खलु भो समणा वयंति, सद्धेयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खलु भो माहणा वयंति, सद्धेयं खलु भो समणा माहणा वयंति, अहं एगो असद्धेयं वयामि, एवं खलु अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते, को मेदं सद्दहिस्सइ? सह मित्तेहिं अमित्ते, को मेदं सद्दहिस्सइ? एवं अत्थेणं दारेणं दासेहिं (पेसेहिं) परिजणेणं एवं खलु तेयलिपुत्तेणं अमच्चेणं कणगज्झएणं रण्णा अवज्झाएणं समाणेणं तेयलीपुत्तेणं अमच्चेणं तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते, से वि य णो संकमइ, को मेयं सद्दहिस्सइ? तेयलिपुत्ते णीलुप्पल जाव खंधंसि ओहरिए, तत्थ वि य से धारा ओपल्ला, को मेदं सद्दहिस्सइ? तेयलिपुत्तस्स पासगं गीवाए बंधेत्ता जाव रज्जू छिण्णा, को मेदं सद्दहिस्सइ? तेयलिपुत्ते महासिलयं जाव बंधित्ता अत्थाह जाव उदगंसि अप्पामुक्के, तत्थ वि य णं थाहे जाए, को मेयं सद्दहिस्सइ? तेयलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडे अग्गी विज्झाए, को मेयं सद्दहिस्सइ? ओहयमण-संकप्पे जाव झियाइ।

भावार्थ - तब तेतली पुत्र ने मन ही मन इस प्रकार सोचा–श्रमण जो कहते हैं, वह श्रद्धा योग्य है। माहण - ब्राह्मण-ब्रह्मवेता-ज्ञानीजन जो कहते हैं, वह श्रद्धा योग्य है। श्रमण और ब्राह्मण जो कहते हैं, वह निःसंदेह श्रद्धा योग्य है। मैं ही एक ऐसा हूँ, जिसका कथन अश्रद्धेय है। मैं पुत्र, मित्र तथा स्त्री युक्त होता हुआ भी इनसे रहित हूँ, इस पर कौन विश्वास करेगा? राजा कनकध्वज के विपरीत विचार युक्त होने पर तेतली पुत्र ने मुंह में तालपुट विष डाल लिया, इस बात पर कौन विश्वास करेगा?

तेतलीपुत्र ने नील आभायुक्त, तीक्ष्ण तलवार से कंधे पर प्रहार किया, तलवार की धार कुंठित हो गई, इसे कौन मानेगा?

तेतलीपुत्र ने गले में फंदा डालकर अपने को पेड़ पर लटका दिया, रस्सी टूट गई, ऐसा कौन स्वीकारेगा?

तेतलीपुत्र ने गले में शिला बांधकर यावत् अपार जल में अपने आपको डाल दिया, वह जल छिछला हो गया, इसे कौन सत्य मानेगा?

तेतली पुत्र ने शुष्क घास के ढेर में आग लगाकर स्वयं को उस में डाल दिया। आग शांत हो गई, इस पर कौन श्रद्धा करेगा?

इस पर टूटे हुए मन से निराश होता हुआ यावत् वह आर्तध्यान में लग गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोटिल देव द्वारा प्रतिबोधित

(५०)

तए णं से पोट्टिले देवे पोट्टिलारूवं विउव्वइ २ त्ता तेयलिपुत्तस्स अदूर-सामंते ठिच्चा एवं वयासी-हं भो तेयलिपुत्ता! पुरओ पवाए पिट्ठओ हत्थिभयं दुहओ अचक्खुफासे मज्झे सराणि वरिसयं (पतं) ति, गामे पलित्ते रण्णे झियाइ रण्णे पलित्ते गामे झियाइ, आउसो तेयलिपुत्ता! कओ वयामो?

शब्दार्थ - **पवाए** - गर्त्त-गड्ढा, **अचक्खुफासे** - अचक्षुस्पर्श-अंधकार, **सराणि** - बाण, **पलत्ते** - प्रज्वलित हो जाने पर, **रण्णे** - अरण्य।

भावार्थ - पोट्टिल देव ने विक्रिया द्वारा पोट्टिला का रूप बनाया। तेतली पुत्र से न अधिक दूर न अधिक समीप स्थित होते हुए कहा - तेतलीपुत्र आगे गड्ढा हो, पीछे हाथी का भय हो, दोनों और अंधेरा हो, मध्य में बाणों की वर्षा हो रही हो, गाँव में आग लगी हो, यह देखकर कोई व्यक्ति जंगल में जाने का सोचे तथा जंगल में लगी आग को देखकर यदि ग्राम में जाने का सोचे तो तेतली पुत्र! जरा सोचो, जब दोनों ओर ही आग लगी हो तो हम कहाँ जाएं?

(५१)

तए णं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-भीयस्स खलु भो! पव्वज्जा सरणं, उक्कंठियस्स सदेसगमणं छुहियस्स अण्णं तिसियस्स पाणं आउरस्स भेसज्जं माइयस्स रहस्सं अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं अद्धाण परिसंतस्स वाहणगमणं तरिउकामस्स पवहणं किच्चं परं अभिओजिउकामस्स सहायकिच्चं, खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो एगमवि ण भवइ।

शब्दार्थ - **उक्कंठियस्स** - उत्कंठित, **आउरस्स** - रोगी के लिए, **माइयस्स** - मायावी-छली के लिए, **अभिजुत्तस्स** - दोषापवाद युक्त के लिए, **पच्चयकरणं** - निराकरण द्वारा प्रतीति उत्पन्न करना, **अद्धाणपरिसंतस्स** - मार्ग में थके हुए के लिए, **परं अभिओजिउकामस्स** - शत्रु पर आक्रमण करने के लिए उद्यत पुरुष के लिए।

भावार्थ - तेतली पुत्र ने पोट्टिल देव से कहा - संसार भय से युक्त व्यक्ति के लिए निश्चय ही मुनि दीक्षा शरणभूत है। वह उसी तरह है, जिस तरह चिर प्रवासी व्यक्ति के लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वदेश गमन, भूखे के लिए अन्न, प्यासे के लिए पानी, रोगी के लिए दवा, मायावी के लिए गुप्त स्थान, दोषारोपित पुरुष के लिए निराकरण द्वारा पुनः विश्वास पैदा करना, मार्ग में थके व्यक्ति के लिए सवारी द्वारा गमन, समुद्र आदि को पार करने के लिए जहाज या नौका का मिलना, शत्रु पर आक्रमण करने के लिए उद्यत पुरुष के लिए सहायकों का होना।

किन्तु शांत-क्षमा युक्त, दांत, जितेन्द्रिय पुरुष के लिए इन सबका कोई भय नहीं होता।

(५२)

तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-सुट्ठु णं तुमं तेयलिपुत्ता! एयमट्ठं आयाणिहि त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

शब्दार्थ - आयाणिहि - जानो और क्रियान्वित करो।

भावार्थ - पोट्टिल देव ने अमात्य से कहा - तेतली पुत्र! तुम्हारे लिये यह श्रेयस्कर है। तुम इस तथ्य को जानो और क्रियान्वित करो। दो बार, तीन बार कह कर वह देव जिस दिशा से आया था, उसी ओर लौट गया।

तेतलीपुत्र को जातिस्मरण ज्ञान

(५३)

तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स सुभेणं परिणामेणं जाईसरणे समुप्पण्णे। तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए० समुप्पण्णे - एवं खलु अहं इहेव जंबुद्दीवे २ महाविदेहे वासे पोक्खलावई विजए पोंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था। तए णं (अ)हं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव चोद्दसपुव्वाइं० बहूणि वासाणि सामण्ण परियाए पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए महासुक्के कप्पे देवे।

भावार्थ - तेतली पुत्र को शुभ परिणामों के कारण जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसके मन में यह भाव उदित हुआ यावत् चिंतन आया कि मैं इसी जंबू द्वीप में महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी राजधानी में महापद्म नामक राजा था। वहाँ मैं स्थविर मुनियों के पास मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुआ। चवदह पूर्वों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रामण्य पर्याय का पालन किया। अंत में एक मास की संलेखना कर देह त्याग कर महाशुक्र कल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ।

तेतली पुत्र को केवलज्ञान

(५४)

तए णं हं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं इहेव तेयलिपुरे तेयलिस्स अमच्चस्स भद्दाए भारियाए दारगत्ताए पच्चायाए। तं सेयं खलु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं संपेहेइ २ त्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ २ त्ता जेणेव पमयवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहणिसण्णस्स अणुचिंतेमाणस्स पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं सयमेव अभिसमण्णागयाइं। तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं जाव तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरय-विकरणकरं अपुव्वकरणं पविट्ठस्स केवलवरणाण दंसणे समुप्पण्णे।

शब्दार्थ - पच्चायाए - प्रत्यायात-जन्मा, **पुव्वदिट्ठाइं** - पूर्व भव में परिपालित, **पुव्वाहीयाइं** - पूर्व भव में अधीन-पठित, **अभिसमण्णागयाइं** - स्मृति में आ गए, **विकरणकरं**- मिटाने वाले।

भावार्थ - तत्पश्चात् आयुक्षय होने के उपरांत मैं उस देवलोक से च्यवन कर, यहां तेतलीपुर में भद्रा भार्या की कोख से तेतली नामक अमात्य के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं पूर्वभव में स्वीकृत, परिपालित महाव्रतों को स्वयं ही स्वीकार कर जीवनयापन करूँ। यों सोच कर वह स्वयं महाव्रतों पर आरूढ हुआ, महाव्रत स्वीकार किये। प्रमदवन नामक उद्यान में आया। आकर अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्ट पर सुखासन में स्थित हुआ, चिंतन, अनुचिंतन में संलग्न होते हुए उसको पूर्व भव में अधीत सामायिक आदि चवदह पूर्व स्मृति में आ गए। तदनंतर अनगार तेतलीपुत्र शुभ परिणाम यावत् प्रशस्त अध्यवसाय, विशुद्ध होती लेश्याएं, ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से कर्म रज विनाशक अपूर्वकरण-अष्टम् गुणस्थान, क्षपक श्रेणी पर आरूढ हुआ। क्रमशः उसने चारों घाति कर्मों का नाश कर अनुत्तर (श्रेष्ठ) केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(५५)

तए णं तेयलिपुरे णयरे अहासण्णिहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहि य देवदुंदुभीओ समाहयाओ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए दिव्वे गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

शब्दार्थ - **अहासण्णिहिएहिं** - निकटवर्ती, **समाहयाओ** - बजाई गई, **णिवाइए** - निपातित किए-वर्षाए।

भावार्थ - तब तेतली पुत्र नगर के समीपवर्ती वानव्यंतर देवों और देवियों ने देव-दुंदुभियाँ बजाते हुए पांच वर्ण के पुष्प बरसाते हुए दिव्य गीत-संगीत पूर्वक केवलज्ञान विषयक महोत्सव मनाया।

कनकध्वज द्वारा क्षमायाचना

(५६)

तए णं से कणगज्झए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं वयासी-एवं खलु तेयलिपुत्ते मए अवज्झाए मुंडे भवित्ता पव्वइए तं गच्छामि णं तेयलिपुत्तं अणगारं वंदामि णमंसामि वं० २ त्ता एयमट्ठं विणएणं भुज्जो २ खामेमि। एवं संपेहेइ २ त्ता ण्हाए चाउरंगिणीए सेणाए जेणेव पमयवणे उज्जाणे जेणेव तेयलिपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तेयलिपुत्तं अणगारं वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता एयमट्ठं च (णं) विणएणं भुज्जो २ खामेइ (२) णच्चासण्णे जाव पज्जुवासइ।

शब्दार्थ - **णच्चासण्णे** - न अति निकट।

भावार्थ - राजा कनकध्वज को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वह बोला—तेतली पुत्र मेरे द्वारा अवहेलना किए जाने पर, मुंडित होकर प्रव्रजित हो गया। इसलिए मैं अनगार तेतली पुत्र के पास जाऊँ, वंदन नमस्कार कर मेरे द्वारा किए गए विपरीत व्यवहार के लिए विनय पूर्वक बार-बार क्षमायाचना करूँ।

यों सोचकर उसने स्नान किया, तैयार हुआ और चतुरंगिणी सेना के साथ प्रमदवन उद्यान में आया। तेतलीपुत्र अनगार के पास पहुँचा। उनको वंदन, नमन कर विनय पूर्वक अपने व्यवहार के लिए बार-बार क्षमायाचना की। न उनके अति निकट यावत् न उनसे अधिक दूर, उनके सान्निध्य में बैठा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(५७)

तए णं से तेयलिपुत्ते अणगारे कणगज्झयस्स रण्णो तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ। तए णं से कणगज्झए राया तेयलिपुत्तस्स केवलिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं पडिवज्जइ २ त्ता समणोवासए जाए जाव अहिगयजीवाजीवे।

भावार्थ - तदनंतर तेतलीपुत्र ने कनकध्वज राजा तथा बहुत बड़ी परिषद्-उपस्थित जनसमुदाय को धर्मोपदेश दिया। राजा कनकध्वज ने केवली तेतली पुत्र से धर्मोपदेश सुनकर द्वादश लक्षण श्रावक धर्म स्वीकार किया। श्रमणोपासक हुआ यावत् उसने जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया।

(५८)

तए णं तेयलिपुत्ते केवली बहूणि वासाणि केवलि परियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे।

भावार्थ-इस प्रकार तेतली पुत्र बहुत वर्षों तक केवलि पर्याय का पालन कर यावत् सिद्ध हुए।

(५९)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोद्दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले-हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चवदहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने श्रवण किया, वैसा ही कहता हूँ।

गाहा- जाव ण दुक्खं पत्ता माणब्भंसं च पाणिणो पायं।
ताव ण धम्मं गेण्हंति भावओ तेयलिसुउव्व॥१॥

॥ चोद्दसमं अज्झयणं समत्तं॥

गाथा - जब तक प्राणी मानभ्रंश-अपमान रूप या तिरस्कार जनित दुःख नहीं पाते, तब तक वे धर्म को ग्रहण नहीं करते। जैसे तेतली पुत्र के साथ घटित हुआ-राजा द्वारा अपमान किए जाने पर ही उसकी धर्म की ओर प्रवृत्ति हुई॥१॥

॥ चौदहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णंदीफले णामं पण्णरसमं अज्झयणं

नंदी फल नामक पन्द्रहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं० चोद्दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते पण्णरसमस्स णं० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया - भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चवदहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्ररूपित किया है तो कृपया फरमायें उन्होंने पन्द्रहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था पुण्णभद्दे चेइए जियसत्तू राया। तत्थ णं चंपाए णयरीए ध(ण)णे णामं सत्थवाहे होत्था अड्ढे जाव अपरिभूए।

भावार्थ - सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया - हे जंबू! उस काल, उस समय चंपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। वहाँ जितशत्रु नामक राजा था। चंपा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था, जो धन संपन्न यावत् अपराभूत-सर्वमान्य था।

(३)

तीसे णं चंपाए णयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अहिच्छत्ता णामं णयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा वण्णओ। तत्थ णं अहिच्छत्ताए णयरीए कणगकेऊ णामं राया होत्था महया वण्णओ।

भावार्थ - उस चंपानगरी के उत्तर पूर्वी दिशा भाग में समृद्धि, वैभव एवं सुख पूर्ण अहिच्छत्रा नामक नगरी थी। कनककेतु नामक वहाँ का राजा था, जो राजकीय महिमा, गरिमा और वैभव से युक्त था। राजा का विस्तृत वर्णन यहाँ औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन्य सार्थवाह की व्यापारार्थ यात्रा

(४)

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-सेयं खलु मम विपुलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं णयरिं वाणिज्जाए गमित्तए। एवं संपेहेइ २ त्ता गणिमं च ४ चउव्विहं भंडं गेण्हइ० सगडीसागडं सज्जेइ २ त्ता सगडीसागडं भरेइ २ त्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-

भावार्थ - किसी एक दिन आधी रात के समय धन्य सार्थवाह के मन में ऐसा विचार, चिन्तन, संकल्प उत्पन्न हुआ। मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं विपुल, विक्रेय, विविध सामान लेकर वाणिज्य हेतु अहिच्छत्रा नगरी में जाऊं। यह सोचकर उसने गणिम, धरिम, मेय एवं परिच्छेद्य-चार प्रकार का सामान लिया, गाड़े - गाड़ी तैयार करवाए, उन पर माल लदवाया तथा कौटुंबिक पुरुषों को बुलाकर कहा।

(५)

गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! चंपाए सिंघाडग जाव पहेसु (एवं वयह) एवं खलु देवाणुप्पिया! धणे सत्थवाहे विपुले पणिय० इच्छइ अहिच्छत्तं णयरिं वाणिज्जाए गमित्तए। तं जो णं देवाणुप्पिया! चरए वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुंडे वा पंडुरगे वा गोयमे वा गोवतीए वा गिहिधम्मे वा गिहिधम्मचिंतए वा अविरुद्धविरुद्ध-वुड्ढसावगरत्तपडणिग्गंथप्पभिइपासंडत्थे वा गिहत्थे वा तस्स णं धण्णेणं सद्धिं अहिच्छत्तं णयरिं गच्छइ तस्स णं धणे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलायइ अणुवाहणस्स उवाहणाउ दलयइ अकुंडियस्स कुंडियं दलयइ अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयइ अंतरा वि य से पडियस्स वा भग्गलुग्गसाहेज्जं दलयइ सुहंसुहेण य णं अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसेह २ त्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - चरए - चरक मतानुयायी (विचरणशील) भिक्षु, **चीरिए** - फटे-पुराने जुड़े हुए वस्त्र धारण करने वाला, **भिच्छुण्डे** - दूसरे के द्वारा आनीत भिक्षा-भोजी, **पंडुरंगे** - भस्मलिप्त शरीर युक्त, **गोयमे** - बेल को साथ लिए भिक्षाटन करने वाले, **गोवतीए** - गोचर्यानुगामी-गाय की चर्चा का अनुसरण करने वाला, **अविरुद्ध** - विनयवान्-विनयवादी, **विरुद्ध** - अक्रियावादी, **वुड्ढसावग** - वृद्ध श्रावक, **रत्तपड** - रक्तपट-गैरिक वस्त्रधारी परिव्राजक, **पासंडत्थे** - इतरमत अनुयायी, **उवाहणाओ** - उपानह-जूते, **अपत्थेयणस्स** - पाथेय रहित के लिए, **पक्खेवं** - पूर्ति द्रव्य, **पडियस्स** - गिरे हुए का, **भग्गलुग्गसाहेज्जं** - हाथ पैर आदि टूटे हुए जनों की चिकित्सारूप सहायता।

भावार्थ - देवानुप्रियो! चंपा नगरी के तिराहों, चौराहों, चौकों और मार्गों पर ऐसी घोषणा करो- देवानुप्रिय! धन्य सार्थवाह विपुल विक्रेय सामग्री लेकर व्यापार हेतु अहिच्छत्रानगरी जा रहा है। कोई भी चरक, चीरिक, चर्म खंडिक, अन्य द्वारा आनीत भिक्षासेवी, भस्मलिप्त शरीर वाले, वृषभ के साथ भिक्षाटन करने वाले, गोव्रती, गृहधर्मी, विनयवादी, अक्रियावादी, वृद्ध श्रावक, गैरिक वस्त्रधारी संन्यासी, इतरेतर मतानुयायी, गृहस्थ इत्यादि में जो भी धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहते हों, उनमें जिनके पास छाते नहीं होंगे, उन्हें छत्र, पथ्य रहितों को पथ्य, पादरक्षिका रहितों को पादरक्षिका, जलपात्र रहित को जल पात्र, पाथेयरहित को पाथेय देगा तथा जिनको और भी जिस किसी वस्तु की कमी होगी, उन्हें धन्य सार्थवाह पूरा करेगा। यात्रा के बीच दुर्घटना वश अंग भंग एवं रुग्णजनों की चिकित्सा व्यवस्था करेगा तथा सुखपूर्वक सभी को अहिच्छत्रा नगरी पहुँचायेगा। दो बार-तीन बार यह घोषणा करो एवं मेरे आज्ञानुरूप किए जाने की सूचना दो।

(६)

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव एवं वयासी - हंदि सुणंतु भगवंतो चंपाणयरीवत्थव्वा बहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - तदनंतर कौटुंबिक पुरुषों ने यावत् सार्थवाह के आदेशानुसार घोषणा करते हुए कहा - चंपानगरी में रहने वाले बहुत से चरक यावत् गृहस्थ आदि आप सभी महानुभाव सुनो यावत् धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी की यात्रा पर चलो। ऐसा कर वे वापस लौटे, सार्थवाह को सूचित किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(७)

तए णं (से) तेसिं कोडुंबिय(घोस)पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सुच्चा चंपाए णयरीए बहवे चरगा य जाव गिहत्था य जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति। तए णं धणे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण य अच्छत्तगस्स छत्तं दलयइ जाव पत्थयणं दलाइ २ एवं वयासी - गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! चंपाए णयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि ममं पडिवालेमाणा चिट्ठह।

शब्दार्थ - पडिवालेमाणा - प्रतीक्षा करते हुए।

भावार्थ - कौटुंबिक पुरुषों द्वारा की गई इस घोषणा को सुनकर बहुत से चरक यावत् गृहस्थ धन्य सार्थवाह के आवास पर आए। धन्य सार्थवाह ने चरक यावत् गृहस्थ सभी को जिनके पास छत्र नहीं थे, उन्हें छत्र दिए यावत् पाथेय दिया। वैसा कर वह बोला - देवानुप्रियो! चंपा नगरी के बाहर, मुख्य उद्यान में मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो।

(८)

तए णं ते चरगा य० धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा जाव चिट्ठंति। तए णं धणे सत्थवाहे सोहणंसि तिहिकरणणक्खत्तंसि विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ २ त्ता मित्तणाई आमंतेइ २ त्ता भोयणं भोयावेइ २ त्ता आपुच्छइ २ त्ता सगड़ी सागडं जोयावेइ २ त्ता चंपाणयरीओ णिग्गच्छइ० णाइविप्पगिट्ठेहिं अद्धाणेहिं वसमाणे २ सुहेहिं वसहिपायरासेहिं अंगं जणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सगडी सागडं मोयावेइ २ त्ता सत्थणिवेसं करेइ २ त्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - णाइविप्पगिट्ठेहिं - अतिदूर नहीं-यथोचित दूरी पर, **अद्धाणेहिं वसमाणे** - मार्ग में पड़ाव डालते हुए, **पायरासेहिं** - प्रातःकालीन अल्पाहार, **देसग्गं** - देश की सीमा, **सत्थणिवेसं** - काफिले का ठहराव।

भावार्थ - तब चरक यावत् गृहस्थादि सभी सार्थवाह द्वारा यों कहे जाने पर यावत् मुख्य उद्यान में, यथा स्थान रुक गए। धन्य सार्थवाह ने उत्तम तिथि, करण एवं मुहूर्त्त में विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि तैयार करवाया। मित्र, स्वजातीयजन, परिजन आदि को आमंत्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया उन्हें भोजन कराया, यात्रार्थ जाने हेतु उनसे पूछा-अनुज्ञा ली। फिर उसने गाड़े-गाड़ी जुतवाए, चंपानगरी के बीचोंबीच होता हुआ निकला। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पड़ाव डालता हुआ, प्रातःकाल के अल्पाहार आदि की सभी व्यवस्थाओं के साथ, अंग जनपद के बीचोंबीच होता हुआ, उसके सीमावर्ती स्थान पर पहुँचा। गाड़े-गाड़ी खुलवाए, काफिले को वहीं ठहराया तथा कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा।

सहयात्रियों को चेतावनी

(६)

तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सत्थणिवेसंसि महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह - एवं खलु देवाणुप्पिया! इमीसे आगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए (एत्थ णं) बहवे णंदिफला णामं रुक्खा पण्णत्ता किण्हा जाव पत्तिया पुप्फिया फलिया हरिया रेरिज्जमाणा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति मणुण्णा वण्णेणं ४ जाव मणुण्णा फासेणं मणुण्णा छायाए। तं जो णं देवाणुप्पिया! तेसिं णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंद० तयपत्तपुप्फ-फलबीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ छायाए वा वीसमइ तस्स णं आवाए भद्दए भवइ तओ पच्छा परिणममाणा २ अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति। तं मा णं देवाणुप्पिया! केइ तेसिं णंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए वा वीसमउ मा णं सेऽवि अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सइ। तुब्भे णं देवाणुप्पिया! अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव हरियाणि य आहारेह छायासु वीसमह त्ति घोसणं घोसेह जाव पच्चप्पिणंति।

शब्दार्थ - छिण्णावायाए - आवागमन रहित, **दीहमद्धाए** - अत्यंत लंबे मार्ग से युक्त।

भावार्थ - देवानुप्रियो! तुम लोग मेरे इस काफिले के पड़ाव में सहयात्रियों के बीच जोर-जोर से यह घोषणा करते हुए कहो - देवानुप्रियो! यहाँ से आगे एक घोर वन है, जहाँ लोगों का आवागमन नहीं है। उसका रास्ता बहुत लंबा है। उस वन के ठीक बीचोंबीच नंदी फल वाले वृक्ष हैं। वे नील यावत् कृष्ण आभा, पत्र, पुष्प एवं फलयुक्त हैं, हरे-भरे हैं, बहुत ही सुहावने हैं। उनका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, छाया बहुत मनोज्ञ, मनोहर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवानुप्रियो! उन वृक्षों के मूल, कंद, पत्ते, बीज, कोंपल आदि को जो खा लेता है, उनकी छाया में विश्राम करता है, उसे एक बार तो यह सब बहुत ही सुखप्रद प्रतीत होता है किंतु पश्चात् उनकी परिणति अकाल मृत्यु के रूप में हो जाती है।

इसलिए देवानुप्रियो! उन नंदीफल नामक वृक्षों के मूल यावत् फलादि का आहार न करे यावत् उनकी छाया में विश्राम न करे। अन्यथा जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

अतएव देवानुप्रियो! तुम किन्हीं दूसरे वृक्षों के मूल, फल आदि खाना, उनकी छाया में विश्राम करना। ऐसी घोषणा कर मुझे सूचित करो।

(१०)

तए णं धणे सत्थवाहे सगडीसागडं जोएइ २ त्ता जेणेव णंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तेसिं णंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थणिवेसं करेइ, करेत्ता दोच्चंपि तच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सत्थ णिवेसंसि महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह-एए णं देवाणुप्पिया! ते णंदिफला (रुक्खा) किण्हा जाव मणुण्णा छायाए। तं जो णं देवाणुप्पिया! एएसिं णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंद० पुप्फ-तया-पत्त- फलाणि जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ। तं मा णं तुब्भे जाव दूरं दूरेणं परिहरमाणा वीसमह मा णं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविस्संति अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमह त्तिकट्टु घोसणं जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने अपने गाड़ी-गाड़े जुतवाए। चलते हुए उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ नंदीफल नामक वृक्ष थे। उनसे न दूर न निकट पड़ाव डलवाया। दूसरी बार-तीसरी बार कौटुंबिक पुरुषों को बुला कर कहा कि मेरे काफिले के पड़ाव में तुम जोर-जोर से पूर्ववत् घोषणा करो कि इन पत्रित, पुष्पित, फलित, हरित शोभायुक्त नंदीफल वृक्षों के फल आदि का कोई भी सेवन नहीं करे और न छाया में विश्राम ही करे। जो वैसा करेगा, वह मृत्यु को प्राप्त होगा। पूर्ववत् घोषणा में यह भी कहा गया कि उन नंदी वृक्षों से दूर रहते हुए अन्यत्र विश्राम करो, जिससे अकाल में ही प्राण त्याग न करना पड़े। तुम अन्य वृक्षों के मूल यावत् फल आदि का आहार करो, उन्हीं के नीचे विश्राम करो।

सार्थवाह ने कौटुंबिक पुरुषों को यह घोषित कर वापस सूचित करने की आज्ञा दी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(११)

तत्थ णं अत्थेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सद्दहंति जाव रोयंति एयमट्ठं सद्दहमाणा ३ तेसिं णंदि फलाणं दूरं दूरेणं परिहरमाणा २ अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमंति। तेसि णं आवाए णो भद्दए भवइ तओ पच्छा परिणममाणा २ सुहरूवत्ताए ५ भुज्जो २ परिणमंति।

शब्दार्थ - आवाए - खाने के समय।

भावार्थ - उनमें से कई पुरुषों ने धन्य सार्थवाह के इस कथन पर श्रद्धा एवं विश्वास किया तथा रुचिपूर्वक उसे स्वीकार किया। यों हृदय में श्रद्धा लिए हुए उन्होंने नंदी फलों को दूर से ही त्याग दिया तथा दूसरे वृक्षों के बीज यावत् मूल का आहार किया, जो खाने के समय स्वादिष्ट प्रतीत नहीं हुए। तदनंतर ज्यों-ज्यों उनका आमाशय में परिपाक हुआ, वे सुखप्रद प्रतीत होने लगे।

(१२)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा २ जाव पंचसु कामगुणेसु णो सज्जेइ णो रज्जेइ से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे परलोए णो आगच्छइ जाव वीईवइस्सइ-जहा व ते पुरिसा।

शब्दार्थ - कामगुणेसु - इन्द्रियभोगों में।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमणो! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी यावत् प्रव्रजित होकर, पाँच इन्द्रिय भोगों में आसक्त नहीं होते, अनुरक्त नहीं होते वे इस भव में बहुत से श्रमण-श्रमणियों यावत् श्रावक-श्राविकाओं के लिए अर्चनीय, पूजनीय होते हैं उन्हें परलोक में भी दुःख नहीं होता यावत् संसार सागर में नहीं भटकते, जिस प्रकार पूर्ववर्णित पुरुष नहीं भटके।

(१३)

तत्थ णं जे से अप्पेगइया पुरिसा धणस्स एयमट्ठं णो सद्दहंति ३ धणस्स एयमट्ठं असद्दहमाणा ३ जेणेव ते णंदिफला तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तेसि णंदिफलाणं मूलाणि य जाव वीसमंति तेसि णं आवाए भद्दए भवइ तओ पच्छा परिणममाणा जाव ववरोवेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उनमें से कतिपय पुरुष, जिन्होंने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा एवं प्रतीति नहीं की थी, नंदी फल के वृक्षों के पास आए। उनके मूल यावत् फल आदि का आहार किया, उनके नीचे विश्राम किया। खाते समय तो उनको वे फल आदि सुखप्रद प्रतीत हुए किंतु परिपाक होने के पश्चात् उन्होंने उनकी जान ले ली।

(१४)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा २ पव्वइए पंचसु कामगुणेसु सज्जइ जाव अणुपरियट्टिस्सइ जहा व ते पुरिसा।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार जो निर्ग्रंथ या निर्ग्रंथिनी प्रव्रजित होकर पाँच इन्द्रिय भोगों में आसक्त हो जाते हैं यावत् वे पूर्वोक्त दुःखों को पाते हुए चतुर्गतिमय संसार रूप घोर कांतार में भटकते रहते हैं।

धन्य का अहिच्छत्रा आगमन, क्रय-विक्रय

(१५)

तए णं से धणे सगडी सागडं जोयावेइ २ त्ता जेणेव अहिच्छत्ता णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अहिच्छत्ताए णयरीए बहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेसं करेइ २ त्ता सगडी सागडं मोयावेइ। तए णं से धणे सत्थवाहे महत्थं ३ रायारिहं पाहुडं गेण्हइ २ त्ता बहुपुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं णयरं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ २ त्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव वद्धावेइ २ त्ता तं महत्थं ३ पाहुडं उवणेइ।

भावार्थ - तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने अपने गाड़ी-गाड़े जुतवाए एवं अहिच्छत्रा नगरी पहुँचा। नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में अपना पड़ाव डाला, गाड़ी-गाड़े खुलवाए। फिर उसने महत्त्वपूर्ण, बहुमूल्य, बड़े लोगों, राजाओं को भेंट करने योग्य उपहार लिए। बहुत से पुरुषों से घिरा हुआ, वह अहिच्छत्रा नगरी के बीचोंबीच होता हुआ, राजा कनककेतु जहाँ था, वहाँ पहुँचा।

उसने हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि लगाकर राजा को वर्धापित किया तथा महत्त्वपूर्ण उपहार भेंट किए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१६)

तए णं से कणगकेऊ राया हट्टतुट्ठ० धणस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं ३ जाव पडिच्छइ २ त्ता धण्णं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता उस्सुक्कं वियरइ २ त्ता पडिविसज्जेइ भंडविणिमयं करेइ २ त्ता पडिभंडं गेण्हइ २ त्ता सुहं सुहेणं जेणेव चंपा णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मित्तणाइ अभिसमण्णागए विपुलाइं माणुस्सगाइं जाव विहरइ।

भावार्थ - राजा कनककेतु उपहार प्राप्त कर हर्षित एवं परितुष्ट हुआ। उसने धन्य सार्थवाह से महत्त्वपूर्ण यावत् बहुमूल्य उपहार स्वीकार किए। धन्य सार्थवाह का सत्कार, सम्मान किया और उसका शुल्क-चुंगी या व्यापारिक कर माफ कर दिया। ऐसा कर उसे वहाँ से विदा किया। धन्य सार्थवाह ने अपने माल का विनिमय किया-अपने माल के बदले दूसरा माल लिया तथा सुखपूर्वक चंपानगरी की ओर रवाना हुआ। वहाँ पहुँचा। मित्र, स्वजातीयजन आदि से मिला। उन सबके साथ मनुष्य जीवन संबंधी सुखभोग करता हुआ रहने लगा।

(१७)

तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। धणे धम्मं सोच्चा जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेत्ता जाव पव्वइए सामाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि जाव मासियाए संलेहणाए० जाव अण्णयरेसु देवत्ताए उववण्णे महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं करेहिइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय चंपा नगरी में स्थविर मुनियों का आगमन हुआ। धन्य सार्थवाह उनके दर्शन-वंदन हेतु गया। उसने उनका धर्मोपदेश सुना। अपने बड़े पुत्र को कुटुंब का उत्तरदायित्व सौंपकर वह प्रव्रजित हो गया। उसने सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्ष पर्यन्त साधु-जीवन का पालन किया। अंत में उसने एक मास की संलेखना कर, साठ भक्तों का छेदन कर, कर्म क्षय करते हुए प्राण त्याग किये। वह किसी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ, आयुष्य पूर्ण कर वहाँ से च्यवन कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् आवागमन का अंत करेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१८)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं पण्णरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पन्द्रहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्ररूपित किया है। जैसा मैंने श्रवण किया वैसा कहता हूँ।

गाहाओ - चंपा इव मणुयगई धण्णोव्व भयवं जिणो दएक्करसो।
अहिछत्ताणयरिसमं इह णिव्वाणं मुणेयव्वं॥ १॥
घोसणया इव तित्थंकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्घं।
चरगाइणोव्व इत्थं सिवसुहकामा जिया बहवे॥ २॥
णंदिफलाइव्व इहं सिवपह-पडिवण्णगाण विसया उ।
तब्भक्खणाओ मरणं जह तह विसएहिं संसारो॥ ३॥
तव्वज्जणेण जह इट्ठपुरगमो विसयवज्जणेण तहा।
परमाणंद-णिबंधण-सिवपुर-गमणं मुणेयव्वं॥ ४॥

॥ पण्णरसमं अज्झयणं समत्तं॥

गाथा-भावार्थ - मनुष्य गति यहाँ चंपानगरी से, परम दयालु जिनेश्वर देव धन्य सार्थवाह से उपमित किए गए हैं तथा अहिच्छत्रा नगरी को निर्वाण के सदृश जानना चाहिए॥ १॥

तीर्थंकर देव की मोक्षमार्ग मूलक महत्त्वपूर्ण देशना यहाँ सार्थवाह की घोषणा द्वारा उपमित की गई है। सार्थवाह के साथ अटवी में जाने वाले लोग शिवसुख की कामना वाले जीवों के सदृश हैं॥ २॥

उस वन में स्थित नंदीफल मोक्ष सुख के परिपंथी या प्रतिकूल विषय हैं। उनको खाने से प्राप्त हुआ 'मरण' विषय भोग युक्त संसार के समान है॥ ३॥

जिन्होंने नंदीफल का वर्जन किया, वे अपने अभीप्सित नगर में चले गए। इसे वासना रहित, परमानंदप्रदायक शिवपुर मोक्ष गमन सदृश समझना चाहिए॥ ४॥

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपरकंका णामं सोलसमं अज्झयणं

अपरकंका (द्रौपदी) नामक सोलहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं ३ जाव संपत्तेणं पण्णरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोलसमस्स णं भंते! णायज्झयणस्स० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - श्री जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - भगवन्! यदि भगवान् महावीर स्वामी ने पन्द्रहवें ज्ञाताध्ययन की विषयवस्तु का इस प्रकार निरूपण किया है तो सोलहवें ज्ञाताध्ययन का क्या विश्लेषण किया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था। तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे णामं उज्जाणे होत्था।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले - हे जम्बू! उस काल, उस समय चंपा नगरी थी। उसके बाहर उत्तर पूर्वी दिशा भाग में-ईशान कोण में सुभूमिभाग नामक उद्यान था।

तीन धनी, विद्वान् ब्राह्मण

(३)

तत्थ णं चंपाए णयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति तंजहा - सोमे सोमदत्ते सोमभूई अड्ढा जाव अपरिभूया रिउव्वेयजउव्वेय सामवेय अथव्वणवेय जाव सुपरिणिट्ठिया। तेसि णं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था तंजहा - णागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी सुकुमाल जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ विपुले माणुस्सए जाव विहरंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस चंपा नगरी में सोम, सोमदत्त एवं सोमभूति नामक तीन ब्राह्मण-बंधु रहते थे। वे धनाढ्य थे यावत् ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद यावत् अन्यान्य ब्राह्मण शास्त्रों में सुपरिनिष्ठित-अत्यंत निष्णात थे।

उन तीनों ब्राह्मणों के क्रमशः नागश्री, भूतश्री, यक्षश्री नामक पत्नियाँ थीं। उनके हाथ पैर आदि समस्त अंग सुकुमार थे यावत् वे उन ब्राह्मण बन्धुओं को इष्ट-प्रिय थीं। वे ब्राह्मण मनुष्य जीवन संबंधी काम भोगों को भोगते हुए सुख पूर्वक निवास करते थे।

एक साथ भोजन का निर्णय

(४)

तए णं तेसिं माहणाणं अण्णया कयाइ एगयओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था-एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमे विउले धणे जाव सावएज्जे अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! अण्णमण्णस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेउं २ परिभुंजेमाणाणं विहरित्तए।

शब्दार्थ - **सावएज्जे** - पद्मराज, पुखराज आदि द्रव्य, **अलाहि** - पर्याप्त।

भावार्थ - वे ब्राह्मण बंधु किसी समय जब आपस में मिले तो उनके मन में ऐसा भाव समुत्पन्न हुआ। वे परस्पर इस प्रकार बात करने लगे - देवानुप्रियो! हमारे पास विपुल धन है यावत् पद्मराग आदि विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्न हैं। हमारी संपत्ति इतनी अधिक है कि आने वाली सात पीढ़ियों तक प्रचुर मात्रा में दान, भोग, पारिवारिकों में वितरण इत्यादि करते रहें तो भी कम न पड़े। इसलिए कितना अच्छा हो हम एक दूसरे के घर में प्रतिदिन बारी-बारी से अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि बनवाकर एक साथ खाने का आनंद लें।

(५)

अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति कल्लाकल्लिं अण्णमण्णस्स गिहेसु विपुलं असणं ४ उवक्खडावेंति २ त्ता परिभुंजेमाणा विहरंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उन ब्राह्मणों ने परस्पर यह बात स्वीकार की। तदनुसार वे हर रोज एक दूसरे के घर में प्रचुर मात्रा में चतुर्विध आहार बनवाने लगे यावत् भोजन का आनंद लेने लगे।

खारे, कडुवे तूंबे का शाक

(६)

तए णं तीसे णागसिरीए माहणीए अण्णया (कयाइ) भोयणवारए जाए यावि होत्था। तए णं सा णागसिरी विपुलं असणं ४ उवक्खडेवेइ २ त्ता एगं महं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंजुत्तं णेहावगाढं उवक्खडावेइ एगं बिंदुयं करयलंसि आसाएइ २ तं खारं कडुयं अखज्जं (अभोज्जं) विसब्भूयं जाणित्ता एवं वयासी- धिरत्थु णं मम णागसिरीए अधण्णाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगणिंबोलियाए जीए णं मए सालएइ बहुसंभारसंभिए णेहावगाढे उवक्खडिए सुबहुदव्वक्खए (णं) णेहक्खए य कए।

शब्दार्थ - **सालइयं** - शरद् ऋतु में उत्पन्न या प्रचुर रस युक्त, **तित्तालाउयं** - खारा तूंबा, **बहुसंभारसंजुत्तं** - मसालों से युक्त, **णेहावगाढं** - घृतलिप्त, **दूभगसत्ताए** - व्यर्थ परिश्रम करने वाली, **दूभगणिंबोलियाए** - निम्बोली की तरह अनादरणीय।

भावार्थ - ब्राह्मण पत्नी नागश्री की एक बार भोजन की बारी आई। उसने प्रचुर चतुर्विध आहार तैयार किए। फिर उसने एक बड़ा रसयुक्त तूंबा लिया। उसमें बहुत से मसाले डालकर, उसका घी में परिपाक किया। उसकी एक बूंद हथेली पर लेकर उसे चखा तो ज्ञात हुआ, यह खारा, कडुआ, अखाद्य, अभोज्य एवं विषवत् है, यह जानकर वह मन ही मन कहने लगी, मुझ नागश्री को धिक्कार है। मैं अधन्या, अपुण्या, व्यर्थ परिश्रम करने वाली हूँ। नीम की निंबोली की तरह अनादरणीय हूँ, जिसने तूंबे का बहुत से मसालों और घृत के साथ परिपाक किया। अनेक मसाले एवं घृत व्यर्थ ही नष्ट किया।

(७)

तं जइ णं ममं जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिंसिस्सति। तं जाव ताव ममं जाउयाओ ण जाणंति ताव मम सेयं एयं सालइयं तित्तालाउयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुसंभारणेहकयं एगंते गोवेत्तए अण्णं सालइयं महुरालाउयं जाव णेहावगाढं उवक्खडेत्तए। एवं संपेहेइ २ त्ता तं सालइयं जाव गोवेइ २ अण्ण सालइयं महुरालाउयं उवक्खडेउ।

शब्दार्थ - **जाउयाओ** - यालकाएँ-देवरानियाँ।

भावार्थ - यदि मेरी देवरानियों को इस बात का पता चलेगा तो वे निंदा करेंगी। अतएव जब तक वे इसे जान पाए, उससे पूर्व ही घृत एवं मसालों से तैयार किए गए इस खारे तूंबे को एकांत में छिपा दूँ तथा दूसरे मीठे तूंबे को यावत् घृत एवं मसालों के साथ तैयार करूँ। यों सोचकर उसने उस तूंबे को यावत् गुप्त रूप में छिपा दिया और दूसरे मीठे तूंबे को तैयार किया।

(८)

उवक्खडेउ तेसिं माहणाणं ण्हायाणं जाव सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असणं ४ परिवेसेइ। तए णं ते माहणा जिमियभुत्तुत्त रागया समाणा आयंता चोक्खा परम सुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था। तए णं ताओ माहणीओ ण्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं ४ आहारेंति २ त्ता जेणेव सयाइं २ गिहाइं तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ।

भावार्थ - स्नानादि से निवृत्त होकर सुखासनों पर बैठे हुए ब्राह्मण बंधुओं को नागश्री ने चतुर्विध आहार परोसा। इन्होंने आनंद पूर्वक भोजन किया, हाथ-मुँह धोकर शुद्धि की एवं अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो गए।

ब्राह्मण-पत्नियाँ जो स्नानादि कर यावत् वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर वहाँ आई थीं, उनको भी अशन-पान आदि का भोजन कराया। भोजन कर वे भी अपने-अपने घर चली गईं।

स्थविर धर्मघोष का आगमन

(९)

तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा णाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा णामं णयरी जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अहापडिरूवं जाव विहरंति। परिसा णिग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस काल उस समय धर्म घोष नामक स्थविर अनगार यावत् अपने बहुत से साधुओं के साथ चंपानगरी में आए। सुभूमिभाग नामक उद्यान में यथा प्रति रूप, शास्त्रानुमोदित, विहित स्थान प्राप्त कर वहाँ विराजित हुए। धर्म श्रवणार्थ परिषद् आई। उन्होंने धर्मोपदेश दिया। परिषद् सुनकर वापस लौट गई।

(१०)

तए णं तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई णामं अणगारे ओराले जाव तेउलेस्से मासं मासेणं खममाणे विहरइ। तए णं से धम्मरुई अणगारे मासखमण पारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ २ त्ता बीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव उग्गाहेइ २ त्ता तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ जाव चंपाए णयरीए उच्चणीय-मज्झिमकुलाइं जाव अडमाणे जेणेव णागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे।

शब्दार्थ - **उग्गाहेइ** - पात्र लिए, **तेउलेस्से** - तेजोलेश्या।

भावार्थ - स्थविर धर्मघोष के धर्मरुचि अनगार नामक शिष्य था, जो उदार चेता यावत् घोर तपस्वी थे। तपस्या के कारण उनको विपुल तेजोलेश्या प्राप्त थी जो अनेक योजन परिमित क्षेत्र स्थित वस्तुओं को भी भस्मसात करने में समर्थ थी। वे मासखमण तपश्चरण में निरत थे। एक बार धर्मरुचि अणगार ने अपने मासखमण पारणे के दिन पहले प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर आदि में सूत्रार्थ चिन्तन रूप ध्यान किया इत्यादि वर्णन गौतम स्वामी के वृत्तांत की तरह यहाँ ग्राह्य है। तीसरे प्रहर में अपने पात्रों का प्रतिलेखन कर, उन्हें ग्रहण किया एवं अपने गुरुवर्य धर्मघोष अनगार के पास आए। उनसे भिक्षार्थ जाने की आज्ञा प्राप्त की यावत् चंपा नगरी में उच्च, नीच मध्यम कुलों में भिक्षा लेने हेतु घूमते-घूमते नागश्री नामक ब्राह्मणी के घर पहुँचे।

नागश्री का दूषित दान

(११)

तए णं सा णागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ २ त्ता तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहु० णेहाव गाढस्स णिसिरणट्ठयाए हट्ठतुट्ठा (उट्ठाए)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उट्ठेइ २ त्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुणे(हं)हावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव णिसिरइ।

शब्दार्थ - णिसिर णट्ठयाए - निकाल देने हेतु, **भत्तघरे** - रसोईघर, **पडिग्गहंसि** - पात्र में।

भावार्थ - तब नागश्री ने धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखा। उसने घृत एवं मसालों के साथ बनाए हुए कडुवे तूंबे को निकालने का अवसर जाना एवं प्रसन्नता पूर्वक उठी। वह अपने रसोइघर में गई और तिक्त, अतिघृत युक्त तूंबा मुनि के पात्र में सारा का सारा डाल दिया।

(१२)

तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमितिकट्टु णागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता चंपाए णयरीए मज्झं मज्झेणं पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता (जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छइ २) धम्मघोसस्स अदूरसामंते अण्णपाणं पडि(दंसे)लेहेइ २ त्ता अण्णपाणं करयलंसि पडिदंसेइ।

शब्दार्थ - अहापज्जत्तं - यथा पर्याप्त-आहार के लिए पर्याप्त।

भावार्थ - तब धर्मरुचि अनगार उसे अपने आहार के लिए पर्याप्त मान कर नागश्री ब्राह्मणी के घर से निकले। चंपा नगरी के बीचों-बीच होते हुए सुभूमिभाग उद्यान में स्थविर धर्मघोष के पास आए। उनसे न अधिक दूर न अधिक निकट होते हुए ईर्यापथिक प्रतिक्रमण किया एवं आहार पानी का प्रतिलेखन किया एवं हाथ में लेकर स्थविर भगवंत को दिखलाया।

विषाक्त तूंबे को परठने का आदेश

(१३)

तए णं ते धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स णेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ णेहावगाढाओ एगं बिदुगं गहाय करयलंसि आसादेंति तित्तगं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइं अणगारं एवं वयासी - जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! एयं सालइयं जाव णेहावगाढं आहारेसि तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं सालइयं जाव आहारेसि मा णं तुमं अकाले चेवं जीवियाओ ववरोविज्जसि। तं गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं सालइयं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले परिट्ठवेहि २ त्ता अण्णं फासुयं एसणिज्जं असणं ४ पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि।

भावार्थ - स्थविर धर्मघोष ने उस घृत पूरित तूंबे की गंध से अभिभूत दुष्प्रभावित होकर उसकी एक बूँद हाथ में ली एवं चखा। उन्होंने जाना कि यह तूंबा तीखा, खारा, कड़ुआ, अभोज्य एवं विषभूत है। अतः उन्होंने धर्मरुचि अनगार से इस प्रकार कहा - देवानुप्रिय! इस घृतलिप्त तूंबे को यदि तुम खा लेते हो तो अकाल में ही जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। देवानुप्रिय! तुम इस तूंबे का आहार कर अकाल में ही मौत के ग्रास मत बनो।

देवानुप्रिय! जाओ, इस शाक को एकांत, निर्जीव भूमि में परठ दो तथा दूसरा प्रासुक, एषणीय आहार-पानी-खाद्य-स्वाद्य ग्रहण कर, आहार करो।

(१४)

तए णं से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता सुभूमिभागओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिल्लं पडिलेहेइ २ त्ता तओ सालइयाओ एगं बिदुगं गहेइ २ त्ता थंडिलंसि णिसिरइ।

भावार्थ - स्थविर धर्मघोष द्वारा यों कहे जाने पर अनगार धर्मरुचि वहाँ से निकले। सुभूमिभाग उद्यान के निकट एक भू भाग का प्रतिलेखन किया और वहाँ इस शाक की एक बूँद को डाला।

हिंसा-भय से स्वदेह में परिष्ठापन

(१५)

तए णं तस्स सालइस्स तित्तकडुयस्स बहुणेहावगाढस्स गंधेणं बहुणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भू० जा जहा य णं पिपीलिगा आहारेइ सा तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ। तए णं तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अज्झत्थिए० जइ ताव इमस्स सालइयस्स जाव एगंमि बिंदुगंमि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलिगासहस्साइं ववरोविज्जंति तं जइ णं अहं एयं सालइयं थंडिल्लंसि सव्वं णिसिरामि (तए) तो णं बहूणं पाणाणं ४ वहकरणं भविस्सइ। तं सेयं खलु मम एयं सालइयं जाव णेहावगाढं सयमेव आहारेत्तए मम चेव एएणं सरीरेणं णिज्जाउ - त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता मुहपोत्तियं २ पडिलेहेइ २ त्ता ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ २ त्ता तं सालइयं त्तित्तकडुयं बहुणेहावगाढं बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठंसि पक्खिवइ।

शब्दार्थ - पिपीलिगा - चींटियाँ, **मुहपोत्तियं** - मुखवस्त्रिका, **पण्णगभूएणं** - सर्प की तरह।

भावार्थ - तब उस तिक्त, कटु, घृत लिप्त तूंबे की गंध से हजारों चींटियाँ वहाँ आ गई। जिन-जिन चींटियों ने उसे खाया, वे असमय में ही काल-कवलित हो गई। यह देखकर धर्मरुचि अनगार के मन में ऐसा चिंतन यावत् मनोभाव उत्पन्न हुआ-यदि इस तूंबे के व्यंजन की एक बूँद मात्र डालने से हजारों चींटियाँ मर गईं, तो यदि मैं इस तूंबे के व्यंजन को सारा का सारा इस भूमि में डालूंगा को बहुत से प्राणों, भूतों, जीवों एवं सत्त्वों का वध होगा। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि घृतलिप्त, मसालों से पूरित तूंबे के शाक को मैं स्वयं ही खा लूँ। यह मेरे शरीर में ही परिष्ठापित हो जाए। यों विचार कर अपनी मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया। मस्तक सहित अपने शरीर का प्रमार्जन किया। वैसा कर उस तिक्त, कटुक, स्नेहल्पित व्यंजन को उसी तरह अपने शरीर रूपी प्रकोष्ठ में डाल दिया मानों साँप अपने बिल में सीधा प्रवेश कर गया हो।

(१६)

तए णं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं जाव णेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा।

शब्दार्थ - दुरहियासा - असह्य।

भावार्थ - धर्मरुचि ने जब उस घृतलिप्त तूंबे का यावत् आहार कर लिया तब मुहूर्त्तभर के अनंतर उसका शरीर पर प्रभाव पड़ा। शरीर में बड़ी तीव्र यावत् असह्य वेदना उत्पन्न हो गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संलेखना पूर्वक समाधिमरण

(१७)

तए णं से धम्मरुई अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कार परक्कमे अधारणिज्जमितिकट्टु आयारभंडगं एगंते ठवेइ २ त्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ २ त्ता दब्भसंथारगं संथारेइ २ त्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ २ त्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियं-कणिसण्णे करयल परिग्गहियं एवं वयासी -

शब्दार्थ - **संपलियंकणिसण्णे** - संपल्यंकनिषण्ण-पर्यंकासन में सन्निविष्ट।

भावार्थ - तब धर्मरुचि अनगार अस्थिर, उठने-बैठने की शक्ति से रहित, बलहीन, अन्तःशक्ति रहित तथा पौरुष-पराक्रम विहरित हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि अब यह शरीर टिक नहीं पाएगा। तब उन्होंने मुनि आचार में प्रयुक्त होने वाले उपकरण एक स्थान पर रख दिये। वैसा कर उन्होंने स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन किया। वैसा कर डाभ का आसन बिछाया एवं उस पर पर्यंकासन में आसीन हुए। फिर मस्तक पर अंजलि बांधकर इस प्रकार कहा।

(१८)

णमोत्थुणं णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं णमोत्थुणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं पुव्विं पि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव परिग्गहे इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव भगवंताणं अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामि - त्तिकट्टु आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए।

भावार्थ - अरहंत भगवंतों को यावत् सिद्धि प्राप्त सिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक स्थविर धर्मघोष को नमस्कार हो। मैंने पहले भी स्थविर धर्मघोष के पास समस्त प्राणातिपात यावत् परिग्रह के प्रत्याख्यान लिए थे। अब भी मैं उन्हीं स्थविर भगवंत की साक्षी से समस्त प्राणातिपात यावत् परिग्रह का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करता हूँ। (यहाँ प्रत्याख्यान विषयक वर्णन स्कंदक मुनि की तरह योजनीय है) यावत् मैं अंतिम श्वासोच्छ्वास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्यंत इस शरीर का व्युत्सर्जन-परित्याग करता हूँ। इस प्रकार कह कर आलोचना एवं प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक देह त्याग किया।

(१९)

तए णं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइं अणगारं चिरंगयं जाणित्ता समणे णिग्गंथे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स मासखमणपारणगंसि सालइयस्स जाव णेहावगाढस्स णिसिरणट्ठयाए बहिया णिग्गए चिरा(वे)इ, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेह।

शब्दार्थ - चिरावेइ - देर हो रही है।

भावार्थ - तदनंतर स्थविर धर्मघोष ने 'अनगार धर्मरुचि को गए हुए बहुत समय हो गया है' यह सोचकर निर्ग्रन्थ श्रमणों को बुलाया और उनसे कहा - देवानुप्रियो! धर्मरुचि अनगार को (आज) मासखमण के पारणे के दिन कडुवे तूंबे का व्यंजन भिक्षा में मिला यावत् उस घृतलिप्त तूंबे को परठने हेतु वे बाहर गए। उनको गए बहुत देर हो गई है। देवानुप्रियो! तुम जाओ धर्मरुचि अनगार की सब ओर खोज-खबर करो, तलाश करो।

(२०)

तए णं ते समणा णिग्गंथा जाव पडिसुणेंति २ त्ता धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छंति २ त्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं णिप्पाणं णिच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति २ त्ता हा हा! अहो! अकज्जमि तिकट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिणिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति० धम्मरुइस्स आयारभंडगं गेण्हंति २ त्ता जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता गमणागमणं पडिक्कमंति २ त्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - णिप्पाणं - निष्प्राण, **परिणिव्वाणवत्तियं** - मरणोपरांत करणीय।

भावार्थ - श्रमण निर्ग्रन्थों ने यावत् स्थविर भगवंत के कथन को यावत् स्वीकार किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनके पास से वे चले। धर्मरुचि अनगार की सब ओर खोज करते हुए, जहाँ स्थंडिल परठने की भूमि थी, वहाँ आए। वहाँ आकर उन्होंने धर्मरुचि अनगार के शरीर को निष्प्राण, निश्चेष्ट एवं निर्जीव देखा। देखते ही उनके मुँह से निकल पड़ा-हाय! कैसा अकृत्य हो गया? उन्होंने धर्मरुचि अनगार का परिनिर्वाणवर्ती-मृत शरीर व्युत्सर्जन रूप कायोत्सर्ग किया। वैसा कर धर्मरुचि अनगार के आचारोपयोगी पात्रों को लिया तथा स्थविर धर्मघोष के पास आए एवं ईर्यापथिक-गमनागमन प्रतिक्रमण किया और इस प्रकार कहा।

(२१)

एवं खलु अम्हे तुब्भं अंतियाओ पडिणिक्खमामो २ त्ता सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वं जाव करेमाणे जेणेव थंडिल्ले तेणेव उवागच्छामो जाव इहं हव्वमागया, तं कालगए णं भंते! धम्मरुई अणगारे इमे से आयारभंडए।

भावार्थ - हम आपकी आज्ञानुसार चलकर सुभूमिभाग उद्यान में आए। धर्मरूचि अणगार की चारों ओर खोज करते हुए स्थंडिल भूमि के पास आए यावत् उनके शरीर को मृत पाया। यहाँ शीघ्र ही आपके पास लौट आए। भगवन्! धर्मरुचि अनगार कालंगत हो गए हैं। ये उनके दैनंदिन प्रयोग में आने वाले पात्र आदि उपकरण हैं।

(२२)

तए णं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति २ त्ता समणे णिग्गंथे णिग्गंथीओ य सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी - एवं खलु अज्जो! मम अंतेवासी धम्मरुई णाम अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं जाव णागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे। तए णं सा णागसिरी माहणी जाव णिसिरइ। तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमि-तिकट्टु जाव कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - अणिक्खित्तेणं - निरंतर।

भावार्थ - स्थविर धर्मघोष ने पूर्वश्रुत में चतुर्दश पूर्व से संबद्ध ज्ञान में उपयोग लगाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैसा कर उन्होंने श्रमण निर्ग्रंथों एवं निर्ग्रन्थिनियों को बुलाया। उनसे कहा - आर्यो! मेरा अंतेवासी धर्मरुचि अनगार स्वभाव से ही बड़ा भद्र यावत् विनीत था। वह निरंतर मासखमण तपः कर्म में लगा था यावत् वह नागश्री ब्राह्मणी के घर में भिक्षार्थ प्रविष्ट हुआ। नागश्री ने उसे खारे तूंबे का व्यंजन भिक्षा में दिया यावत् वह भिक्षा लेकर निकला यावत् उसे पर्याप्त आहार मानते हुए, वह अन्यत्र नहीं गया इत्यादि सारा वृत्तांत धर्मघोष ने निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनियों को बताया।

(२३)

से णं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता आलोइय पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं सोहम्म जाव सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं धम्मरुइस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं धम्मरुई देवे ताओ देवलोगाओ जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

भावार्थ - धर्मघोष अनगार ने यों सारा वृत्तांत बतलाते हुए कहा - धर्मरुचि अनगार ने इस प्रकार बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया अंततः उसने आलोचना-प्रतिलेखना कर समाधिमरण प्राप्त किया।

ऊपर सौधर्म यावत् देवलोकों को लांघ कर वह सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ सभी देवों की जघन्य उत्कृष्ट भेद रहित तेतीस सागरोपम की स्थिति प्रज्ञप्त की गई है। धर्मरुचि देव की भी वहाँ इतनी ही स्थिति बतलाई गई है। वह धर्मरुचि देव आयु क्षय होने पर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा तथा सिद्ध होगा।

नागश्री की भर्त्सना

(२४)

तं धिरत्थु णं अज्जो! णागसिरीए माहणीए अधण्णाए अपुण्णाए जाव णिंबोलियाए जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं जाव गाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।

भावार्थ - आर्यो! इस अधन्या, अपुण्या यावत् निम्बोली के समान कटु नागश्री ब्राह्मणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को धिक्कार है, जिसने तथारूप अति तपस्वी अनगार धर्मरुचि को खारे तूंबे का यावत् घृतलिप्त व्यंजन भिक्षा में दिया, जिसे उदरगत कर वे अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हुए।

(२५)

तए णं ते समणा णिग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म चंपाए सिंघाडग-तिग जाव बहुजणस्स एवमाइक्खंति ४-धिरत्थु णं देवाणुप्पिया! णागसिरीए माहणीए जाव णिंबोलियाए जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे सालइएणं जीवियाओ ववरोविए।

भावार्थ - स्थविर धर्मघोष से निर्ग्रन्थों ने यह सुन कर चंपानगरी के तिराहे, चौराहे यावत् चौक मार्ग इत्यादि पर बहुत से लोगों से यह कहा - देवानुप्रियो! नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार है यावत् वह निंबोली के समान कटुतायुक्त है जिसने वैसे महान् तपस्वी, साधुत्व के जीवित प्रतीक धर्मरुचि को खारा तूंबा बहरा कर मौत के घाट उतार दिया।

विवेचन - स्थविर धर्मघोष से धर्मरुचि अनगार की मृत्यु के संबंध में जब साधुओं ने सुना तो वे चंपानगरी के तिराहे, चौराहे, चौक आदि में जाकर नागश्री द्वारा किए गए कुकृत्य के बारे में कहने लगे कि उस अधन्या, अपुण्या ब्राह्मणी ने कितना निकृष्ट कार्य किया, जो साधुत्व के प्रतीक, तपश्चरणशील धर्मरुचि अनगार को जानते-बूझते हुए खारा तूंबा बहरा कर मार डाला। इसकी जो प्रतिक्रिया हुई उसका आगे के सूत्रों में वर्णन है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है, साधुओं को ऐसा करने की क्या आवश्यकता थी? जिसका परिणाम नागश्री का गृह से निष्कासन एवं विविध प्रकार से कष्ट देने के रूप में प्रकट हुआ और वह घोर दुर्दशा को प्राप्त हुई।

यह सही है कि वह अत्यंत पापिष्ठा और निकृष्ट महिला थी किंतु शत्रु और मित्र में समभाव रखने का आदर्श रखने वाले साधुओं द्वारा उक्त रूप में कहा जाना कहाँ तक संगत है?

इस प्रश्न पर गहराई से, सूक्ष्मता से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि नागश्री द्वारा यह जानते हुए भी कि यह खारा तूंबा ग्रहण करने वाले की जान ले लेगा, केवल देवरानियों एवं पारिवारिक जनों के उपहास से बचने के लिए साधु को बहरा दिया जाना कलुषित निन्द्य और पापपूर्ण कृत्य है। अपने थोड़े से बचाव के लिए अत्यंत त्यागी, तपस्वी साधु के जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं आंकना जघन्य कृत्य है। कोई भी व्यक्ति ऐसा घोर पाप पूर्ण कृत्य नहीं करे, यह प्रेरणा देना उन द्वारा असंगत, अनुचित नहीं कहा जा सकता। नहीं कहने पर लोगों को ऐसे दुष्कृत्य से दूर रहने की प्रेरणा कैसे प्राप्त होती?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधुओं द्वारा उपर्युक्त रूप में कहे जाने का अभिप्राय नागश्री को घर से निकलवाना या ताड़ित, प्रताड़ित करवाना नहीं था। उन्होंने तो केवल उसके कृत्य की जघन्यता को ही प्रकाशित किया, जिससे भविष्य में वैसे कार्य की पुनरावृत्ति न हो।

धर्मघोष अनगार ने नागश्री की बात प्रकट क्यों की? इस सम्बन्ध में गुरु भगवन्त इस प्रकार फरमाते हैं -

धर्मघोष आचार्य आगम व्यवहारी थे। अपने आगमज्ञान में उचित अनुचित समझ कर प्रवृत्ति करने वाले होने से श्रुतव्यवहार की विधियाँ (शास्त्रों के विधि निषेध) उन पर लागू नहीं होती हैं। आगम व्यवहारी ही उनकी प्रवृत्ति को उचित अनुचित बता सकते हैं एवं उसका प्रायश्चित्तादि दे सकते हैं। श्रुत व्यवहारी नहीं। वर्तमान् में भरतक्षेत्र में आगम व्यवहारी प्रायः नहीं हैं।

धर्मरुचि अनगार की कड़वे तुम्बे के कारण मृत्यु हो जाने से कभी लोग ऐसी कल्पना न कर लें कि - साधुओं ने विष देकर तपस्वी साधु को मार दिया। इसलिए पहले से ही लोगों के सामने सही स्थिति रख देनी चाहिए। ताकि लोगों को दूसरी कल्पना का मौका ही नहीं मिले इत्यादि कारणों से आचार्य धर्मघोष ने साधु साध्वियों को भेज कर लोगों को इस घटना की सही जानकारी दिला दी।

(२६)

तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ-धिरत्थु णं णागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए।

भावार्थ - उन श्रमणों का यह कथन सुनकर बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे - इस नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार है यावत् इसने विषैला तूंबा बहरा कर मुनि को मार डाला।

नागश्री का गृह से निष्कासन, घोर दुर्गति

(२७)

तए णं ते माहणा चंपाए णयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव णागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्ता णागसिरीं माहणीं एवं वयासी - हं भो णागसिरी! अपत्थिय पत्थिए! दुरंतपंतलक्खणे! हीणपुण्ण चाउद्दसे! धिरत्थु णं तव अधण्णाए अपुण्णाए जाव णिंबोलियाए जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहुरूवे मासखमणपारणगंसि सालइएणं जाव ववरोविए उच्चावयाहिं अक्कोसणाहिं अक्कोसंति उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेंति उच्चावयाहिं णिब्भत्थणाहिं णिब्भत्थंति उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं णिच्छोडेंति तज्जेंति तालेंति तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ गिहाओ णिच्छुंभंति।

शब्दार्थ - **दुरंतपंतलक्खणे** - घोर कुलक्षणी, **हीणपुण्ण चाउद्दसे** - पुण्य रहित कृष्णा चतुर्दशी के दिन जन्मी हुई, **उद्धंसणाहिं** - फटकार, **णिब्भत्थणाहिं** - निर्भत्सना, **णिच्छोडणाहिं**- घर से निकल जाने के रोष पूर्ण वचनों से।

भावार्थ - उन तीनों ब्राह्मण बंधुओं ने बहुत से लोगों से यह सुना तो वे अत्यंत क्रुद्ध होते हुए यावत् तमतमाते हुए जहाँ नागश्री थी, वहाँ आए और बोले -

मौत को चाहने वाली! घोर कुलक्षणी! पुण्य हीन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में जन्मीं नागश्री! तुम्हें धिक्कार है। तुम बड़ी ही अधन्य, अपुण्य और दुर्भाग्ययुक्त हो। निंबोली के समान कटुतापूर्ण हो। तुमने साधुत्व के सजीव प्रतीक-तपस्वी मुनि को मासखमण के पारणे में कड़ुवा तूंबा बहरा कर यावत् उनके प्राण हर लिए। उन्होंने कठोर वचनों द्वारा इस पर आक्रोश करते हुए, उसे फटकारते हुए, उसकी निर्भत्सना करते हुए, घर से निकल जाने की धमकियाँ देते हुए उसे तर्जित और ताड़ित किया और घर से निकाल दिया।

(२८)

तए णं सा णागसिरी सयाओ गिहाओ णिच्छूढा समाणी चंपाए णयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिंसिज्जमाणी णिंदिज्जमाणी गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा णिलयं वा अलभमाणी २ दंडीखंडणिवसणा खंडमल्लयखंडघडगहत्थगया फुट्टहडाहडसीसा मच्छिया-चडगरेणं अण्णिज्जमाणमग्गा गेहंगिहेणं देहं बलियाए वित्तिं कप्पेमाणी विहरइ।

शब्दार्थ - **पव्वहिज्जमाणी** - लकड़ी आदि से पीटी जाती हुई, **दंडीखंडणिवसणा** - टुकड़ों-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

टुकड़ों से जुड़े वस्त्र धारण करने वाली, **खंडमल्लय** - टूटा हुआ शिकोरा, **खंडघड** - फूटे हुए घड़े का टुकड़ा, **फुट्टहडाहडसीसा** - सिर पर बिखरे हुए बालों से युक्त, **मच्छियाचडगरेणं** - मक्खियों के समूह द्वारा, **अणिज्जमाणमग्गा** - पीछा किया जाती हुई, **देहं बलियाए** - देह निर्वाह हेतु।

भावार्थ - नागश्री को जब घर से निकाल दिया गया तो चंपानगरी के तिराहे, चौराहे, चौक, विशाल, राजमार्ग, छोटे मार्ग इत्यादि में बहुत से लोग उसकी अवहेलना, कुत्सा, गर्हा, तर्जना, ताड़ना करने लगे। धिक्कारने लगे। उस पर थूकने लगे। उसे टिकने को कहीं भी कोई स्थान नहीं मिला। वह जीर्ण वस्त्र पहने, खाने के लिए फूटा शिकोरा, पानी पीने के लिए फूटे हुए घड़े के खंड को हाथ में लिए हुए भटकने लगी। उसके सिर के बाल बिखरे थे। गंदगी के कारण मक्खियों का समूह उसका पीछा करता था। वह शरीर निर्वाह हेतु घर-घर भीख मांगकर पेट पालने लगी।

(२९)

तए णं तीसे णागसिरीए माहणाए तब्भवंसि चेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया तंजहा - सासे कासे जोणिसूले जाव कोढे। तए णं सा णागसिरी माहणी सोलसहिं रोगायंकेहि अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीस सागरोवमट्ठिइएसु णरएसु णेरइयत्ताए उववण्णा।

भावार्थ - उस नागश्री ब्राह्मणी के उसी भव में वर्तमान जीवन में श्वास, कास, योनिशूल यावत् कुष्ठ आदि सोलह भीषण रोग उत्पन्न हुए। नागश्री उन रोगों से पीड़ित होती हुई आर्त्तध्यान में मृत्यु प्राप्त कर छठी नरक भूमि में उत्कृष्टतः बाईस सागरोपम स्थिति युक्त नारकों में, नारक के रूप में उत्पन्न हुई।

उत्तरवर्ती भवों में भीषण वेदना

(३०)

सा णं तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववण्णा। तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तित्तीस सागरोवमट्ठिईएसु णेरइएसु उववण्णा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - सत्थवज्झा - शस्त्र द्वारा मृत्यु प्राप्त, **दाहवक्कंतीए** - दाह-जलन से पीड़ित।

भावार्थ - उसके पश्चात् वह उस नरक से निकल कर मछलियों की योनि में उत्पन्न हुई। वहाँ शस्त्र द्वारा आहत, विद्ध होती हुई अत्यंत दाह पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुई। वह नीचे सातवीं पृथ्वी-सातवीं नरक भूमि में उत्कृष्टतः तैंतीस सागरोपम स्थिति युक्त नारकों में नारक के रूप में उत्पन्न हुई।

(३१)

सा णं तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चंपि मच्छेसु उववज्जइ। तत्थ विं य णं सत्थवज्जा दाहवक्कंतीए दोच्चंपि अहे सत्तमाए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीस सागरोवमट्ठिइएसु णेरइएसु उववज्जइ।

भावार्थ - तदनंतर वह नागश्री वहाँ से सातवीं नरक भूमि से निकलकर फिर मछलियों की योनि में उत्पन्न हुई। वहाँ भी उसने शस्त्र द्वारा आहत, विद्ध होकर दाहपूर्वक प्राण त्यागे।

पुनः अधस्तन सातवीं नरक भूमि में उत्पन्न हुई, जहाँ नारकों की उत्कृष्टतम आयु तैंतीस सागरोपम है।

(३२)

सा णं तओहिंतो जाव उव्वट्टित्ता तच्चंपि मच्छेसु उववण्णा। तत्थ वि य णं सत्थवज्झा जाव कालमासे कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं०।

भावार्थ - वहाँ से यावत् निकलकर तीसरी बार भी वह मछली की योनि में पैदा हुई। वहाँ उसका पूर्वोक्त रूप में वध हुआ यावत् वह मृत्यु को प्राप्त कर दूसरी बार छठी नारक भूमि में उत्पन्न हुई जहाँ के नारकों का उत्कृष्ट आयुष्य बाईस सागरोपम है।

(३३)

तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता उरएसु एवं जहा गोसाले तहा णेयव्वं जाव रयणप्पभाए (पुढवीओ उव्वट्टित्ता) सत्तसु उववण्णा। तओ उव्वट्टित्ता जाव इमाइं खहयर विहाणाइं जाव अदुत्तरं च णं खरबायरपुढविकाइयत्ताए तेसु अणेगसय-सहस्सखुत्तो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - उरएसु - उरग-सरिसृप या पेट के बल चलने वाले प्राणियों में, **खहयर विहाणाइं** - खेचर-पक्षियों की योनियों में, **खरबायरपुढविकाइय** - कठोर, बादर पृथ्वीकाय के रूप में, **अणेगसय-सहस्सखुत्तो** - लाखों बार।

भावार्थ - इसके पश्चात् वह वहाँ से निकल कर सरीसृप योनियों में उत्पन्न हुई। यहाँ का विस्तृत वृत्तान्त भगवती सूत्र में वर्णित गोशालक के वृत्तांत की तरह है यावत् वह रत्नप्रभा आदि सातों नरक भूमियों में उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर वह अनेक गगनचारी पक्षियों की योनि में उत्पन्न हुई यावत् उसके बाद वह कठोर बादर पृथ्वीकाय में लाखों बार उत्पन्न हुई।

सार्थवाह कन्या के रूप में जन्म

(३४)

सा णं तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए णयरीए सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया। तए णं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं दारियं पयाया सुकुमाल कोमलियं गयतालुयसमाणं।

शब्दार्थ - गयतालुयसमाणं - हाथी के तालु के समान।

भावार्थ - पृथ्वीकाय से निकलकर वह इसी जंबूद्वीप में, भारत वर्ष में, सागरदत्त श्रेष्ठी की भद्रा नामक भार्या की कोख में कन्या के रूप में आई। नौ मास पूर्ण होने पर भद्रा सार्थवाही ने कन्या को जन्म दिया। वह कन्या हाथी के तालु के समान अत्यंत सुकुमार तथा कोमल अंग युक्त थी।

(३५)

तीसे दारियाए णिव्वत्ते बारसाहियाए अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं गुणणिप्फण्णं णामधेज्जं करेंति-जम्हा णं अम्हं एसा दारिया सुकुमाला गयतालुयसमाणा तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए णामधेज्जे सुकुमालिया २। तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो णामधेज्जं करेंति सूमालियत्ति।

शब्दार्थ - गोण्णं - गुणानुरूप।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस बालिका के जन्म के पश्चात् बारह दिन व्यतीत हो जाने पर माता-पिता ने उसका गुणानुरूप, गुण निष्पन्न नाम रखते हुए कहा - हमारी यह कन्या हाथी के तालु के सदृश सुकुमार है, इसलिए हम इसका नाम सुकुमालिका रखें। तदनुसार उन्होंने उसका नाम सुकुमालिका रखा।

(३६)

तए णं सा सूमालिया दारिया पंचधाई परिग्गहिया तंजहा - खीरधाईए जाव गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपकलया णिव्वाए णिव्वाघायंसि जाव परिवड्ढइ। तए णं सा सूमालिया दारिया उम्मुक्कबालभावा जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ सरीरा जाया यावि होत्था।

भावार्थ - वह कन्या सुकुमालिका दूध पिलाने वाली आदि पाँच धायमाताओं द्वारा पालित-पोषित होती हुई, तेजवायु से तथा अन्यान्य बाधाओं से रहित, गिरी कंदरा में उत्पन्न चंपकलता की तरह वह सुख पूर्वक बढने लगी। वह सुकुमालिका बचपन को पार कर रूप-लावण्यमय यौवन को प्राप्त हुई। उसकी सम्पूर्ण देह सौंदर्य युक्त थी।

सार्थवाह जिनदत्त

(३७)

तत्थ णं चंपाए णयरीए जिणदत्ते णामं सत्थवाहे अड्ढे०। तस्स णं जिणदत्तस्स भद्दा भारिया सूमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पच्चणुब्भवमाणा विहरइ। तस्स णं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए णामं दारए सुकुमाले जाव सूरूवे।

भावार्थ - उसी चंपानगरी में जिनदत्त नामक एक अन्य धनाढ्य सार्थवाह निवास करता था। उसकी भार्या का नाम भद्रा था। वह बहुत ही सुकुमार यावत् जिनदत्त को प्रिय थी। वे मनुष्य जीवन संबंधी सुखों का आनंद लेते हुए रहते थे। जिनदत्त की भद्रा भार्या की कोख से उत्पन्न सागर नामक पुत्र था। उसके हाथ-पैर आदि सुकुमार थे यावत् वह रूपवान् था।

(३८)

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ सयाओ गिहाओ पडिणिक्खिमइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२ त्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामंतेण वीईवयइ। इमं च णं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडिया संघपरिवुडा उप्पिं आगासतलगंसि कणगतेंदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ।

भावार्थ - एक बार सार्थवाह जिनदत्त अपने घर से निकल कर सागरदत्त के घर के पास से गुजर रहा था। उस समय सुकुमालिका स्नानादि कर अपनी दासियों से घिरी हुई भवन की छत पर सोने के तारों से मढी हुई गेंद से क्रीड़ा कर रही थी।

(३६)

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ २ त्ता सूमालियाए दारियाए रूवे य ३ जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया किं वा णामधेज्जं से? तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ० करयल जाव एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! सागरदत्तस्स स० धूया भद्दाए अत्तया सूमालिया णामं दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किट्ठा।

भावार्थ - सार्थवाह जिनदत्त की दृष्टि उस कन्या सुकुमालिका पर पड़ी जो रूप यौवन एवं लावण्य युक्त थी। उसे देखकर वह विस्मित हो उठा। उसने अपने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! यह किसकी कन्या है? इसका क्या नाम है?

जिनदत्त सार्थवाह द्वारा यों कहे जाने पर कौटुंबिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट हुए और हाथों को मस्तक पर लगाकर अंजलि बांधे यावत् मस्तक झुका कर उससे कहा - देवानुप्रिय! यह भद्रा की कोख से उत्पन्न सागरदत्त सार्थवाह की कन्या सुकुमालिका है। यह सर्वांग सुंदरी है यावत् उत्कृष्ट शरीरा है।

सुकुमालिका के विवाह का प्रस्ताव

(४०)

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कोडुंबियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ण्हाए जाव मित्तणाइ परिवुडे चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ। तए णं सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं स० एज्जमाणं पासइ २ त्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता आसणेणं उवणिमंतेइ २ त्ता आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी - भण देवाणुप्पिया! किमागमणपओयणं?

भावार्थ - जिनदत्त सार्थवाह उन कौटुंबिक पुरुषों से यह सुनकर अपने घर आया। स्नानादि किया। मित्र, स्वजातीयजन आदि से घिरा हुआ, वह चंपानगरी के बीचोंबीच होता हुआ, सागरदत्त के घर आया। सार्थवाह सागरदत्त ने जब जिनदत्त सार्थवाह को आते हुए देखा, वह आसन से खड़ा हुआ, बैठने का आसन दिया। सुखासन में बैठने के अनंतर सागरदत्त ने जिनदत्त से कहा - देवानुप्रिय! आपके आने का क्या प्रयोजन है?

(४१)

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी - एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि। जइ णं जाणह देवाणुप्पिया! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो ता दिज्जउ णं सूमालिया सागर(दारग)स्स। तए णं देवाणुप्पिया! किं दलयामो सुंकं सूमालियाए?

भावार्थ - जिनदत्त ने सार्थवाह सागरदत्त से कहा - देवानुप्रिय! तुम्हारी पुत्री, भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका को मेरे पुत्र सागर के लिए भार्या के रूप में चाहता हूँ। देवानुप्रिय! यदि आप इसे उपयुक्त, समुचित और श्लाघनीय समझें और यदि दोनों के लिए कुलानुरूप, गुणानुरूप, सदृश संयोग माने तो सुकुमालिका सागर के लिए दें।

देवानुप्रिय! उसके लिए शुल्क रूप में हम क्या दें?

विवाह की शर्त

(४२)

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! सूमालिया दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा ५ जाव किमंग पुण पासणयाए। तं णो खलु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं जइ णं देवाणुप्पिया! सागरदारए मम घरजामाउए भवइ तो णं अहं सागरस्स दारगस्स सूमालियं दलयामि।

शब्दार्थ - **घरजामाउए** - घर जमाई।

भावार्थ - तब सागरदत्त ने जिनदत्त से कहा - देवानुप्रिय! सुकुमालिका मेरी इकलौती पुत्री है, वह मुझे बहुत ही प्रिय है यावत् अधिक क्या कहूँ, उसका नाम श्रवण मात्र ही सुखद है। इसलिए मैं अपनी पुत्री सुकुमालिका का क्षण भर के लिए भी वियोग नहीं चाहता। यदि आपका पुत्र सागर घर जमाई हो जाए तो मैं उसके लिए अपनी कन्या दे दूँ।

(४३)

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सागरदारगं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - एवं खलु पुत्ता। सागरदत्ते स० मम एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! सूमालिया दारिया इट्ठा तं चेव, तं जइ णं सागरदारए मम घर जामाउए भवइ ता दलयामि। तए णं से सागरए दारए जिणदत्तेणं स० एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए।

भावार्थ - सार्थवाह सागरदत्त द्वारा यों कहे जाने पर जिनदत्त सार्थवाह अपने घर आया। वहाँ आकर अपने पुत्र सागर को बुलाया और कहा - सार्थवाह सागरदत्त ने मुझे ऐसा कहा है कि पुत्री सुकुमालिका मुझे बहुत प्रिय है, इसलिए यदि सागर मेरा घर जमाई हो जाय तो मैं उसे सुकुमालिका भार्या रूप में दे दूं।

सार्थवाह जिनदत्त द्वारा यों कहे जाने पर उसका पुत्र सागर मौन रहा।

(४४)

तए णं जिणदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ सोहणंसितितिहिकरणे विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ २ त्ता मित्तणाई आमंतेइ जाव सम्माणेत्ता सागरं दारगं ण्हाय जाव सव्वालंकार विभूसियं करेइ २ त्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहावेइ २ त्ता मित्तणाइ जाव संपरिवुडे सव्विड्ढीए सयाओ गिहाओ णिग्गच्छइ २ त्ता चंपाणयरी मज्झंमज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीयाओ पच्चोरुहइ ३ त्ता सागरं दारगं सागरदत्तस्स स० उवणेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सार्थवाह जिनदत्त ने एक दिन उत्तम तिथि, करण, नक्षत्र एवं मुहूर्त में प्रचुर मात्रा में चतुर्विध आहार तैयार करवाए। मित्र स्वजातीयजन, पारिवारिकजन, संबंधी एवं परिजन वृंद को आमंत्रित किया यावत् उन्हें भोजन कराया, सम्मानित किया।

अपने पुत्र सागर को स्नानादि करवाकर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। उसे एक हजार पुरुषों द्वारा वहनीय शिविका पर आरूढ किया यावत् मित्र, पारिवारिक आदि से घिरा हुआ अत्यंत वैभव और ठाठ बाट के साथ अपने घर से निकला। चंपानगरी के बीचोंबीच होता हुआ सागरदत्त सार्थवाह के घर पहुँचा। अपने पुत्र सागर को शिविका से उतारा और सागरदत्त सार्थवाह के यहाँ ले आया।

सुकुमालिका एवं सागर का पाणिग्रहण

(४५)

तए णं से सागरदत्ते स० विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ २ त्ता जाव सम्माणेत्ता सागरं दारगं सूमालियाए दारियाए सद्धिं पट्टयंसि दुरूहावेइ २ त्ता सेयापीतएहिं कलसेहिं मज्जावेइ २ त्ता होमं करावेइ २ त्ता सागरं दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गेण्हावेइ।

भावार्थ - सार्थवाह सागरदत्त ने प्रचुर मात्रा में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाए यावत् जिनदत्त आदि सभी का सम्मान किया। सागर और सुकुमालिका को एक साथ पाटे पर बिठाया। जल से मार्जन-अभिषेक करवाया, हवन करवाया। ये सब संपादित कर सागर का सुकुमालिका के साथ पाणिग्रहण-हस्तमिलाप करवाया।

(४६)

तए णं सागरदारए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं पाणिफासं पडिसंवेदेइ से जहाणामए असिपत्तेइ वा जाव मुम्मुरेइ वा, एत्तो अणिट्ठतराए चेव पाणिफासं संवेदेइ। तए णं से सागरए अकामए अवसव्वसे तं मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ।

शब्दार्थ - **पाणिफासं** - हस्तस्पर्श, **मुम्मुरेइ** - अग्निकणयुक्त भस्म।

भावार्थ - श्रेष्ठी पुत्र सागर ने ज्यों ही सुकुमालिका के हाथ का स्पर्श किया, उसे ऐसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगा मानो कोई तलवार हो यावत् अग्निकणों से परिपूर्ण उष्ण भस्म हो। इतना ही नहीं यह हस्त स्पर्श उसे अनिष्ट-अकाम्य, असह्य प्रतीत हुआ, सागर न चाहता हुआ भी विवशता पूर्वक कुछ देर उस स्थिति में बैठा रहा।

सुकुमालिका की देह का अग्निकणोपमस्पर्श

(४७)

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स दारगस्स अम्मापियरो मित्तणाइ विपुलं असणं ४ पुप्फवत्थ जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ। तए णं सागरए दारए सूमालियाए सद्धिं जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि णिवज्जइ।

शब्दार्थ - **तलिगंसि** - शय्या पर।

भावार्थ - सागरदत्त सार्थवाह ने सागर के माता-पिता, मित्र, जातीयजन आदि को भोजन कराया, पुष्प, वस्त्र यावत् माला अलंकार आदि से सम्मानित कर विदा किया। तत्पश्चात् सागर सुकुमालिका के साथ अपने वासगृह-शयनकक्ष में आया। सुकुमालिका के साथ वह शय्या पर लेटा।

(४८)

तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ से जहाणामए असिपत्तेइ वा जाव अमणामयं रागं चेव अंगफासं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ। तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए अंगफासं असहमाणे अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ। तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ २ त्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सयणीयंसि णिवज्जइ।

भावार्थ - सार्थवाह पुत्र सागर ने सुकुमालिका के शरीर का ज्यों ही स्पर्श किया उसे अनुभूत हुआ जैसे कोई तलवार हो यावत् अग्निकण युक्त राख हो। इतना ही नहीं उसका अंग स्पर्श उससे भी कहीं अधिक अमनोज्ञ, अप्रिय प्रतीत हुआ। वह उसके अंग स्पर्श को सह नहीं सका। विवश होकर कुछ समय वहाँ स्थित रहा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब जिनदत्तपुत्र सागर ने देखा कि सुकुमालिका को गाढ़ी नींद आ गई है तो वह उसके पास से उठा। जहाँ अपनी पृथक् शय्या थी, वहाँ आकर लेट गया।

(४६)

तए णं सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइं वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्ठेइ २ त्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सागरस्स पासे णुवज्जइ।

शब्दार्थ - पइमणुरत्ता - पति के प्रति अनुराग युक्त।

भावार्थ - सुकुमालिका मुहूर्त भर पश्चात् जाग उठी। वह पतिव्रता थी, पति के प्रति उसके मन में बड़ा अनुराग था। जब उसने अपने पति को पार्श्व-बगल में नहीं देखा तो वह शय्या से उठी। उठकर वहाँ आई जहाँ उसके पति की शय्या थी। वह उस शय्या पर पति के पार्श्व में लेट गई।

सुकुमालिका का परित्याग

(५०)

तए णं से सागरदारए सूमालियाए दारियाए दोच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अकामए अवसव्वसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ। तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ २ त्ता वासघरस्स दारं विहाडेइ २ त्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

शब्दार्थ - मारामुक्के - वध्य स्थान से मुक्त।

भावार्थ - सार्थवाह पुत्र सागर को दूसरी बार भी पुनः सुकुमालिका का वैसा ही ताप जनक अंग स्पर्श अनुभव हुआ। न चाहते हुए भी वह थोड़ी देर वहाँ स्थित रहा। जब उसने देखा सुकुमालिका सुखपूर्वक सो गई है तो वह अपनी शय्या से उठा, उठकर शयनागार का द्वार खोला तथा वध स्थान से छूटे हुए कौवे की तरह शीघ्रता से जिस ओर से आया था, उसी ओर चला गया। अर्थात् अपने घर वापस लौट गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(५१)

तए णं सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पइंवया जाव अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ सागरस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणी २ वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ २ त्ता एवं वयासी - गए णं से सागरए - त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

भावार्थ - कुछ देर बाद सुकुमालिका जग गई। वह पतिव्रता थी यावत् पति के प्रति उसे बड़ा अनुराग था। वह शय्या से उठी। सार्थवाह पुत्र सागर को चारों ओर देखा। सागर को नहीं पाया। शयनागार के दरवाजे को खुला देखा तब उसने मन ही मन कहा - मेरा पति सागर चला गया। उसकी मनोभावना पर गहरा आघात पहुँचा। वह हथेली पर मुँह रखकर आर्त्तध्यान में निमग्न हो गई।

(५२)

तए णं सा भद्दा सत्थवाही कल्लं पाउप्पभायाए दासचेडियं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! वहुवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि। तए णं सा दासचेडी भद्दाए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ २ मुहधोवणियं गेण्हइ २ त्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ० सूमालियं दारियं जाव झियायमाणिं पासइ २ त्ता एवं वयासी - किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयणमण संकप्पा जाव झियाहि।

शब्दार्थ - मुहधोवणियं - मुखधावनिका- दातुन।

भावार्थ - तदनंतर भद्रा सार्थवाही ने प्रातःकाल होने पर दासी को बुलाया और कहा - जाओ वधू और वर के लिए दातुन ले जाओ। भद्रा द्वारा यों कहे जाने पर दासी ने-'ऐसा ही करूँगी'-कहकर आज्ञा स्वीकार की। वह दातुन लेकर शयनगृह में गई। सुकुमालिका को आर्त्तध्यान में निमग्न देखा। वह बोली - देवानुप्रिये! तुम ऐसी नैराश्यपूर्ण मनोदशा में, क्यों चिंतन कर रही हो?

(५३)

तए णं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडीयं एवं वयासी - एवं खलु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवाणुप्पिया! सागरए दारए मम सुहपसुत्तं जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ २ त्ता वासघर दुवारं अवगुण्डइ जाव पडिगए। तए णं (हं) तओ (अहं) मुहुत्तंतरस्स जाव विहाडियं पासामि २ गए णं से सागरए - त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायामि।

शब्दार्थ - **अवगुण्डइ** - खोला।

भावार्थ - सुकुमालिका ने दासी से कहा - देवानुप्रिये! सार्थवाह पुत्र सागर मुझे गहरी निद्रा में देखकर उठा, शयनगृह के द्वार को खोला यावत् चला गया। अतएव इससे मेरा मनः संकल्प ध्वस्त हो गया यावत् उसी चिन्ता में आर्तध्यान में संलग्न हूँ।

(५४)

तए णं सा दास चेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते सत्थ० तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठं णिवेदेइ।

भावार्थ - वह दासी सुकुमालिका का यह कथन सुनकर सागरदत्त के पास पहुँची और उसे इस प्रकार निवेदित किया।

(५५)

तए णं से सागरदत्ते दास चेडीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते० जेणेव जिणदत्त सत्थवाह गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी- किण्णं देवाणुप्पिया! एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरूवं वा कुलसरिसं वा जण्णं सागरदारए सूमालियं दारियं अदिट्ठदोसं पइवयं विप्पजहाय इहमागओ? बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंटणियाहि य उवालभइ।

शब्दार्थ - **अदिट्ठदोसं** - सर्वथा निर्दोष, **रुंटणियाहि** - रूंधे हुए गले से।

भावार्थ - सुकुमालिका का कथन सुनकर दासी उसके पिता सागरदत्त के पास गई और उसे वह बात बतलाई। सार्थवाह सागरदत्त दासी का कथन सुनकर बहुत ही क्रुद्ध और रुष्ट हुआ। वह जिनदत्त सार्थवाह के पास आया और उससे यों बोला - देवानुप्रिय! क्या यह उचित है कि निर्दोष एवं पतिव्रता मेरी पुत्री सुकुमालिका को तुम्हारा पुत्र छोड़-भागा। क्या यह न्याय-संगत एवं कुलानुरूप है? उसने रूंधे हुए गले से बड़े ही खिन्नतापूर्ण वचनों से उपालंभ दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(५६)

तए णं जिणदत्ते सागरदत्तस्स सत्थ० एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सागरयं दारयं एवं वयासी - दुट्ठु णं पुत्ता! तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इहं हव्वमागए, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता! एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे।

शब्दार्थ - दुट्ठु - अशोभनीय।

भावार्थ - जिनदत्त सागरदत्त का यह कथन सुनकर अपना पुत्र सागर जहाँ था, वहाँ आया और बोला - पुत्र! तुमने बड़ा अशोभनीय एवं बुरा कार्य किया है, जो तुम सागरदत्त के घर से अचानक एकदम चले आए। पुत्र! तुम सागरदत्त के घर जाओ।

(५७)

तए णं से सागरए जिणदत्तं एवं वयासी - अवि याइं अहं ताओ! गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धपिट्ठं वा पव्वज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि णो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा।

शब्दार्थ - मरुप्पवायं - निर्जल मरुभूमि में रहना, **वेहाणसं** - गले में फांसी लगाना, **सत्थोवाडणं** - शस्त्र से देह को विदीर्ण करवाना।

भावार्थ - सागर ने जिनदत्त से यों कहा - तात! मुझे पर्वत से गिरना, वृक्ष से गिरना, जल से रहित रेगिस्तान में खो जाना, जल में डूब जाना, अग्नि में प्रवेश कर जाना, विष खा लेना, फांसी पर लटक जाना, शस्त्र द्वारा शरीर को विदीर्ण करवाना, गिद्धों का भोजन बनने के लिए उष्ट आदि की मृत देह में प्रविष्ट कर जाना, प्रव्रज्या ग्रहण करना या विदेश में चले जाना—ये सब स्वीकार हैं, किंतु मैं सागरदत्त के घर नहीं जाऊंगा।

(५८)

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्ठं णिसामेइ २ त्ता लज्जिए विलीए विड्ढे जिणदत्तस्स सत्थवाहस्स गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सुकुमालियं दारियं सद्दावेइ २ त्ता अंके णिवेसेइ २ त्ता एवं वयासी - किण्णं तव पुत्ता! सागरएणं दारएणं मुक्का? अहं णं तुमं तस्स दाहामि जस्स णं तुमं इट्ठा जाव मणामा भविस्ससित्ति सूमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहि समासासेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ।

शब्दार्थ - **कुड्डंतरिए** - दीवार के पीछे से, **विलिए** - विशेष रूप से शर्मिन्दा, **विड्डे** - अन्तर्व्यथित।

भावार्थ - सागरदत्त सार्थवाह ने दीवार की आड़ से जिनदत्त के पुत्र सागर का यह कथन सुना। सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ, शर्म से गड़ गया और मन ही मन व्यथा से भर गया। वह जिनदत्त के घर से चलकर अपने घर आया। अपनी पुत्री सुकुमालिका को बुलाया, उसे अपनी गोदी में बिठाया और कहा - पुत्री! सागरदत्त ने तुम्हारा परित्याग कर दिया है। मैं तुम्हें ऐसे वर को दूंगा, जिसे तुम मनःप्रिय यावत् मनोरम लगोगी। इस प्रकार उसने सुकुमालिका को इष्ट, प्रिय वाणी द्वारा आश्वासन दिया और उसे अपने स्थान पर जाने को कहा।

(५६)

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे अण्णया उप्पिं आगासतलगंसि सुहणिसण्णे रायमग्गं ओलोएमाणे २ चिट्ठइ। तए णं से सागरदत्ते एगं महं दमगपुरिसं पासइ दंडिखंडणिवसणं खंडगमल्लगखंडघडग हत्थगयं मच्छियासहस्सेहिं जाव अण्णिज्जमाणमग्गं।

शब्दार्थ - **दमगपुरिसं** - दरिद्र पुरुष को।

भावार्थ - तदनंतर सार्थवाह सागरदत्त किसी समय अपने प्रासाद की छत पर सुखपूर्वक बैठा हुआ बार-बार राजमार्ग का अवलोकन कर रहा था। तब सागरदत्त को अत्यंत दरिद्र पुरुष दिखाई दिया। वह परस्पर जुड़े हुए, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने था। उसके हाथ में फूटा हुआ घड़े का हिस्सा था, सिर के बाल बिखरे थे। हजारों मक्खियाँ यावत् उसका पीछा कर रही थीं।

(६०)

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुब्भे णं देवाणुप्पिया! एयं दमगपुरिसं विपुलेणं असण ४ पलोभेह० गिहं अणुप्पवेसेह २ त्ता खंडगमल्लगं खंडघडगं च से एगंते एडेह २ त्ता अलंकारियकम्मं कारेह २ त्ता ण्हायं कयबलिकम्मं जाव विभूसियं करेह २ त्ता मणुण्णं असणं ४ भोयावेह० मम अंतियं उवणेह।

शब्दार्थ - एडेह - फेंक दो।

भावार्थ - सागरदत्त ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें आज्ञा दी - देवानुप्रियो! इस दरिद्र पुरुष को विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य का प्रलोभन दो। प्रलोभित कर इसे घर में प्रवेश कराओ। फिर इसके टूटे हुए शिकोरे और फूटे हुए घड़े के टुकड़े को एकांत में फेंक दो। वैसा कर इसकी हजामत बनवाओ। स्नान, मांगलिक कृत्य संपादित कर यावत् इसे मनोभिलषित अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि का भोजन कराओ, भोजन करवाकर मेरे पास लाओ।

(६१)

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेंति २ त्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं दमगं असण ४ उवप्पलोभेंति २ त्ता सयं गिहं अणुप्पवेसिंति २ त्ता तं खंडगमल्लगं खंडगघडगं च तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडेंति। तए णं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य (एगंते) एडिज्जमाणंसि महया २ सद्देणं आरसइ।

भावार्थ - तब कौटुंबिक पुरुषों ने यावत् सार्थवाह का कथन स्वीकार किया और वे वहाँ आए जहाँ वह दीन पुरुष था। आकर उन्होंने उसे चतुर्विध आहार का प्रलोभन दिया, घर में लाए। फिर उसके फूटे हुए घड़े के टुकड़े एवं शिकोरे को एकांत में फेंकने को उद्यत हुए।

वह दरिद्र पुरुष उन द्वारा ऐसा किया जाने पर जोर-२ से रोने-चीखने लगा।

(६२)

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे तस्स दमगपुरिसस्स तं महया २ आरसियसद्दं सोच्चा णिसम्म कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी - किण्णं देवाणुप्पिया! एस दमगपुरिसे महया २ सद्देणं आरसइ? तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा एवं वयासी - एस णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामी! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि (एगंते) य एडिज्जमाणंसि महया २ सद्देणं आरसइ। तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी - मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एयस्स दमगस्स तं खंड जाव एडेह पासे ठवेह जहा णं पत्तियं भवइ। तेवि तहेव ठविंति।

भावार्थ - तब सागरदत्त ने उस दीन पुरुष को जोर-जोर से रोते हुए सुना तो उन्होंने अपने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! यह दरिद्र जोर-जोर से क्यों चिल्ला रहा है? इस पर कौटुंबिक पुरुष सार्थवाह से बोले - स्वामिन्! जब हम इसके टूटे हुए शिकोरे एवं फूटे हुए घड़े के टुकड़े को एकांत में फेंकने लगे तो यह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

तब सागरदत्त बोला - देवानुप्रियो! तुम इसके टूटे हुए शिकोरे यावत् फूटे हुए घड़े के टुकड़े को एकांत में मत डालो। उसके पास ही रख दो, जिससे उसको आश्वासन बना रहे। कौटुंबिक पुरुषों ने सार्थवाह के कथनानुसार उन्हें उसी के पास रख दिया।

(६३)

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेंति २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वट्टणेणं गायं उव्वट्टिंति उव्वट्टित्ता उसिणोदगगंधोदएणं ण्हाणेंति सीओदगेणं ण्हाणेंति० पम्हल सुकुमालगंधकासाईए गायाइं लूहंति २ त्ता हंसलक्खणं पट्टसाडगं परिहंति २ त्ता सव्वालंकार विभूसियं करेंति २ त्ता विपुलं असणं ४ भोयावेंति २ त्ता सागरदत्तस्स उवणेंति।

भावार्थ - तदुपरांत उन कौटुंबिक पुरुषों ने उस दीन-हीन पुरुष का क्षौर कर्म करवाया। शतपाक, सहस्त्रपाक तेलों द्वारा मालिश करवाई। सुगंधित पदार्थों से उबटन करवाया। गर्म एवं ठण्डे जल से क्रमशः स्नान करवाया, स्नान करवा कर सुंदर गंध प्रसाधित रोम युक्त सुकुमार तौलिये द्वारा शरीर को पुंछवाया। हंस के समान श्वेत वस्त्र पहनाए। सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। प्रचुर अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य पदार्थों से भोजन करवाया। ऐसा कर वे उसे सार्थवाह सागरदत्त के समक्ष ले गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६४)

तए णं (से) सागरदत्ते (२) सूमालियं दारियं ण्हाय जाव सव्वालंकार विभूसियं करित्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! मम धूया इट्ठा ५ एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलयामि भद्दियाए भद्दओ भविज्जासि।

भावार्थ - फिर सागरदत्त ने अपनी पुत्री सुकुमालिका को स्नानादि करवा कर सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत किया। वैसा कर उस दरिद्र पुरुष से कहा - देवानुप्रिय! यह मेरी प्रिय पुत्री है। मैं तुम्हें पत्नी के रूप में देता हूँ। तुम इस भाग्यशालिनी के लिये कल्याणप्रद होना।

द्रमक द्वारा भी परित्याग

(६५)

तए णं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि णिवज्जइ। तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ सेसं जहा सागरस्स जाव सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता वासघराओ णिग्गच्छइ २ त्ता खंडमल्लगं खंडघडं च गहाय मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णं सा सूमालिया जाव गए णं से दमगपुरिसे-त्तिकट्टु ओहयमण संकप्पा जाव झियायइ।

भावार्थ - उस दीनहीन पुरुष ने सागरदत्त का यह कथन स्वीकार किया। दोनों परिणय बद्ध हुए। सुकुमालिका के साथ वह शयनगृह में प्रविष्ट हुआ। उसके साथ शय्या पर लेटा।

उस दरिद्र पुरुष ने भी सुकुमालिका का अंग स्पर्श करने से वैसा ही अनुभव किया जैसा सागरदत्त ने किया। यहाँ सागरदत्त का तद्विषयक वृत्तांत योजनीय है। यावत् वह शय्या से उठा, शयनगृह से बाहर निकला, टूटे हुए शिकोरे एवं फूटे हुए घड़े के टुकड़े को उठा लिया एवं वध-स्थान से मुक्त हुए कौवे की तरह जिधर से आया उधर ही भाग गया।

वह दरिद्र पुरुष चला गया, यों सोचकर सुकुमालिका के मन में गहरा आघात लगा यावत् वह दुःखित, उद्विग्न होती हुई आर्त्तध्यान में लग गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६६)

तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभायाए दासचेडिं सद्दावेइ २ एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमट्ठं णिवेदेइ। तए णं से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सूमालियं दारियं अंके णिवेसेइ २ त्ता एवं वयासी - अहो णं तुमं पुत्ता! पुरापोराणाणं जाव पच्चणुब्भवमाणी विहरसि, तं मा णं तुमं पुत्ता! ओहयमण संकप्पा जाव झियाहि, तुमं णं पुत्ता! मम महाणसंसि विपुलं असणं ४ जहा पोट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि।

शब्दार्थ - **संभंते** - उद्विग्न-हक्का-बक्का, **पुरापोराणाणं** - पूर्व जन्म में किए हुए।

भावार्थ - तदुपरांत भद्रा सार्थवाही ने प्रभातकाल होने पर दासी को बुलाया और पूर्ववत् उसे दातुन आदि देने के लिए कहा यावत् यहाँ एतद्विषयक संपूर्ण वृत्तांत योजनीय है। दासी ने समग्र वृत्तांत सागरदत्त से निवेदित किया। सुनकर सागरदत्त बड़ा ही उद्विग्न हुआ। वह शयनागार में आया। अपनी पुत्री सुकुमालिका को गोद में लिया और कहा - पुत्री! पूर्वजन्म में किए गए यावत् पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप तुम यह दुःख अनुभव कर रही हो। इसलिए पुत्री अपने मन को व्यथित, दुःखित मत करो यावत् आर्त्तध्यान-दुश्चिंतन मत करो।

मेरी पाकशाला से तुम प्रचुर मात्रा में चतुर्विध आहार का पोट्टिला की तरह दान करते हुए यावत् अपनी आत्मा को धर्मानुप्राणित करो।

सुकुमालिका द्वारा दान-धर्म का आश्रय

(६७)

तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता महाणसंसि विपुलं असणं ४ जाव दलमाणी विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव समोसढाओ तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तहेव जाव सूमालिया पडिलाभित्ता एवं वयासी - एवं खलु अज्जाओ! अहं सागरस्स अणिट्ठा जाव अमणामा, णेच्छइ णं सागरए दारए मम णामं वा जाव परिभोगं वा, जस्स-जस्स वि य णं दिज्जामि तस्स-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्स वि य णं अणिट्ठा जाव अमणामा भवामि, तुब्भे य णं अज्जाओ! बहुणायाओ एवं जहा पोट्टिला जाव उवलद्धे जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि।

भावार्थ - सार्थवाह पुत्री सुकुमालिका ने पिता का यह कथन स्वीकार किया एवं पाकशाला में से अशन-पान आदि पदार्थों का दान करती हुई रहने लगी।

उस काल उस समय गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या वहाँ पधारी। यहाँ तेतलीपुत्र अध्ययन में सुव्रता आर्या के संबंध में आया हुआ वर्णन ग्राह्य है। उसी की तरह गोपालिका आर्या के एक सिंघाडे ने यावत् उसकी पाकशाला में प्रवेश किया यावत् सुकुमालिका ने उसी प्रकार उन्हें आहार-दान द्वारा प्रतिलाभित किया और बोली - आर्याओ! मैं सार्थवाह पुत्र सागर के लिए अनिष्ट यावत् अमनोरम हूँ। वह मेरा नाम तक सुनना नहीं चाहता यावत् सुखभोग की तो बात ही क्या? जिस किसी को भी मैं दी जाती रही, उस-उस के लिए मैं अमनोरम होती रही। आर्याओ! आप अत्यंत ज्ञानवती है। यहाँ पोट्टिला के प्रसंग में आया हुआ वर्णन योजनीय है यावत् कोई ऐसा उपाय बताएँ, जिससे मैं श्रेष्ठी पुत्र सागर के लिए इष्ट, कांत यावत् प्रिय सिद्ध हो सकूं।

प्रव्रज्या ग्रहण

(६८)

अज्जाओ तहेव भणंति तहेव साविया जाया तहेव चिंता तहेव सागरदत्तं स० आपुच्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया। तए णं सूमालिया अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी बहूहिं चउत्थछट्टट्ठम जाव विहरइ।

भावार्थ - आर्याओं ने वैसा ही कहा जैसा सुव्रता की आर्याओं ने तेतलीपुत्र के अध्ययन में पोट्टिला को कहा था। सुकुमालिका श्राविका बनी। पोट्टिला की तरह उसका वैराग्योन्मुख चिंतन आगे बढ़ा यावत् वह अपने पिता सागरदत्त सार्थवाह से दीक्षा की अनुज्ञा लेकर आर्या गोपालिका के पास प्रव्रजित हुई।

इस प्रकार सुकुमालिका साध्वी हो गई। ईर्यासमिति से संपन्न यावत् ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों का भलीभाँति पालन करती हुई उपवास, बेले एवं तेले आदि की तपस्याएँ करती हुई यावत् आत्मानुभावित होती हुई अपना साधनामय जीवन व्यतीत करने लगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६९)

तए णं सा सूमालिया अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वंदइ णमंसइ वं०२ एवं वयासी - इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी चंपाओ बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए।

शब्दार्थ - **सूराभिमुही** - सूर्य के सम्मुख, **आयावेमाणी** - आतापना लेती हुई।

भावार्थ - आर्या सुकुमालिका किसी दिन आर्या गोपालिका के पास आई। आकर वंदन, नमस्कार किया और बोली - आर्या! मैं आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर सुभूमिभाग उद्यान के निकट निरंतर बेले-बेले की तपस्या करती हुई, सूर्य के सम्मुख आतापना लेना चाहती हूँ।

(७०)

तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं एवं वयासी - अम्हे णं अज्जे! समणीओ णिग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ, णो खलु अम्हं कप्पइ बहिया गामस्स वा जाव सण्णिवेसस्स वा छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरित्तए, कप्पइ णं अम्हं अंतो उवस्सयस्स वइपरिक्खित्तस्स संघाडिबद्धियाए णं समतलपइयाए आयावित्तए।

शब्दार्थ - **वइपरिक्खित्तस्स** - बाड़ या चारदीवारी से युक्त, **संघाडिबद्धियाए** - वस्त्र से आच्छादित देहयुक्त, **समतलपइयाए** - भूमि पर दोनों चरणों को बराबर स्थापित करते हुए।

भावार्थ - आर्या गोपालिका ने सुकुमालिका से कहा - आर्ये! ईर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्यादि आचार युक्त हम श्रमणियों को गाँव के या सन्निवेश के बाहर बेले-२ की तपस्या के साथ यावत् आतापना लेना नहीं कल्पता है। हमारे लिए तो बाड़ या चारदीवारी से घिरे हुए उपाश्रय में, देह को वस्त्राच्छादित करते हुए, पैरों को भूमि पर समतल टिकाए हुए, आतापना लेना कल्पता है।

(७१)

तए णं सा सूमालिया गोवालियाए अज्जाए एयमट्ठं णो सद्दहइ णो पत्तियइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो रोएइ एयमट्ठं असद्दहमाणे ३ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरइ।

भावार्थ - साध्वी सुकुमालिका ने आर्या गोपालिका के इस कथन में श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं दिखलाई। इस प्रकार उनके वचन में अश्रद्धा करती हुई, वह सुभूमिभाग उद्यान के न अधिक निकट न अधिक दूर बेले-बेले की तपस्या करती हुई यावत् आतापना लेने लगी।

विपुल भोगाकांक्षामय निदान

(७२)

तत्थ णं चंपाए ललिया णाम गोट्ठी परिवसइ णरवइदिण्ण(वि)पयारा अम्मापिइणिययणिप्पिवासा वेसविहारकयणिकेया णाणाविहअविणयप्पहाणा अड्ढा जाव अपरिभूया।

शब्दार्थ - **ललिया** - ललित क्रीड़ा, मनोरंजन आदि में निरत, **णरवइदिण्णपयारा** - राजा द्वारा प्रदत्त स्वच्छन्द विहार के स्वातन्त्र्य से युक्त, **णिप्पिवासा** - अभिरुचिरहित-निरपेक्ष, **वेस** - वेश्या, **णिकेया** - निवास-घर।

भावार्थ - उस चंपा नगरी में ललित क्रीड़ा विनोद एवं मनोरंजन में संलग्न रहने वाली विलासीजनों की एक टोली थी। अपनी विशिष्ट सेवा से उन्होंने राजा को प्रसन्न कर रखा था। अतः राजा ने उन्हें स्वच्छंद विहार की छूट दे रखी थी। उन विलास प्रियजनों की माता-पिता एवं पारिवारिकजनों में कोई रुचि नहीं थी। वेश्या का आवास ही उनका घर था। वे विविध प्रकार के अविनय पूर्ण कार्यों में लगे रहते थे। वे धनाढ्य थे यावत् किसी के कुछ कहने, सुनने की परवाह नहीं करते थे।

(७३)

तत्थ णं चंपाए० देवदत्ता णामं गणिया होत्था सुकुमाला जहा अंडणाए। तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए अण्णया (कयाइ) पंच गोट्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति। तत्थ णं एगे गोट्ठिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरेइ एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ एगे पुप्फदूरयं रएइ एगे पाए रएइ एगे चामरुक्खेवं करेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - चामरुक्खेवं - चँवर डुलाना।

भावार्थ - उस चंपा नगरी में देवदत्ता नामक वेश्या निवास करती थी। वह बहुत ही सुकुमार एवं सुंदर थी। एतद्विषयक विस्तृत वृत्तांत इसी सूत्र के अण्ड नामक तीसरे अध्ययन से ग्राह्य है। किसी समय उस लालित्यप्रिय गोष्ठी के पाँच पुरुष इस देवदत्ता वेश्या के साथ सुभूमिभाग उद्यान में, उसकी शोभा का आनंद ले रहे थे। एक पुरुष ने देवदत्ता को गोद में बिठा रखा था। दूसरे ने पीछे छत्र धारण कर रखा था। तीसरा उसे पुष्पों से सजा रहा था। चौथा उसके पैरों के महावर रच रहा था। पाँचवाँ चँवर डुला रहा था।

(७४)

तए णं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं तेहिं पंचहिं गोट्ठिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणिं पासइ २ त्ता इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था-अहो णं इमा इत्थिया पुरापोराणाणं कम्माणं जाव विहरइ। तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तवणियमबंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं जाव विहरिज्जामि-त्तिकट्टु णियाणं करेइ २ त्ता आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ।

भावार्थ - उस समय आर्या सुकुमालिका ने देवदत्ता गणिका को पाँच गोष्ठी पुरुषों के साथ मनुष्य भव संबंधी विपुल भोग भोगते हुए देखा। उसके मन में ऐसा संकल्प उत्पन्न हुआ। यह स्त्री अपने पूर्वकृत या पुण्य कर्मों के परिणाम स्वरूप यों सुखपूर्वक विहार कर रही है। इसलिए यदि मेरे द्वारा आचरित तप, नियम, ब्रह्मचर्यादि व्रतों का कल्याण रूप फल विशेष हो तो मैं भी अपने आगामी भव में मनुष्य भव संबंधी विपुल कामभोग करूँ।

इस प्रकार निदान कर वह अपनी आतापना भूमि में आ गई।

सुकुमालिका की देह संस्कारपरायणता

(७५)

तए णं सा सूमालिया अज्जा सरीरबउसा जाया यावि होत्था अभिक्खणं २ हत्थे धोवेइ पाए धोवेइ सीसं धोवेइ मुहं धोवेइ थणंतराइं धोवेइ कक्खंतराइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धोवेइ गोज्झंतराइं धोवेइ जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेएइ तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा ३ चेएइ।

शब्दार्थ - सरीरबउसा - शरीर बकुसा-शरीर संस्कार परायणा।

भावार्थ - आर्या सुकुमालिका शरीर संस्कार परायणा हो गई। शरीर को स्वच्छ रखने में आसक्त हो गई। वह बार-बार अपने हाथ, पैर, सिर, मुँह, स्तन मध्यवर्ती भाग, काँख तथा गुप्तांग को प्रक्षालित करती। जिस स्थान पर कायोत्सर्ग हेतु खड़ी होती, सोती, स्वाध्याय हेतु बैठती, उसको भी पहले जल छिड़क कर साफ करती तदनंतर ही वह उपरोक्त सभी कार्य करती।

(७६)

तए णं ताओ गोव्वालियाओ अज्जाओ सुमालियं अज्जं एवं वयासी - एवं खलु देवा०! अज्जे! अम्हे समणीओ णिग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव बंभचेरधारिणीओ, णो खलु कप्पइ अम्हं सरीरबाउसियाए होत्तए, तुमं च णं अज्जे! सरीरबाउसिया अभिक्खणं २ हत्थे धोवेसि जाव चेएसि, तं तुमं णं देवाणुप्पिए! एय(त)स्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।

भावार्थ - आर्या गोपालिका ने सुकुमालिका से कहा - देवानुप्रिये! हम निर्ग्रन्थ परंपरानुवर्तिनी श्रमणियाँ हैं। ईर्या समिति यावत् ब्रह्मचर्यादि व्रतों को स्वीकार किए हुए हैं। इसलिए हमें दैहिक स्वच्छता कल्पनीय नहीं है। आर्ये! तुम देह संस्कार से अभिभूत होकर बार-बार हाथ धोती हो यावत् स्वाध्याय आदि करती हो। देवानुप्रिये! तुम बकुश चारित्ररूप स्थान-साधुत्वगत दूषणीय आचार की आलोचना करो यावत् तदर्थ उसके लिए प्रायश्चित्त लो।

(७७)

तए णं सूमालियाणं गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्ठं णो आढाइ णो परिजाणइ अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ। तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं २ अभिहीलंति जाव परिभवंति अभिक्खणं २ एयमट्ठं णिवारेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सुकुमालिका ने आर्या गोपालिका के इस कथन को न आदर दिया और न उसका महत्त्व ही समझा। वह पूर्ववत् ही आचरण करने लगी। तब दूसरी साध्वियाँ भी सुकुमालिका की बार-बार अवहेलना यावत् तिरस्कार करती हुई, उसे उस प्रवृत्ति से निवृत्त करने का प्रयास करने लगी।

श्रमणी संघ का परित्याग

(७८)

तए णं तीसे सूमालियाए समणीहि णिग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणी इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-जया णं अहं अगारवासमज्झे वसामि तया णं अहं अप्पवसा। जया णं अहं मुंडे भवित्ता पव्वइया तया णं अहं परवसा। पुव्विं च णं ममं समणीओ आढायंति इयाणिं णो आढायंति। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए गोवालियाणं अंतियाओ पडिणिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए-त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता कल्लं पा० गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

शब्दार्थ - **अप्पवसा** - स्वाधीना, **पाडिएक्कं** - पार्थक्य।

भावार्थ - साध्वियों द्वारा यों अवहेलना यावत् तिरस्कार किए जाने पर सुकुमालिका के मन में ऐसा विचार यावत् मनोभाव उत्पन्न हुआ - जब मैं घर में थी तब स्वाधीन थी। जब से मुंडित होकर दीक्षित हुई हूँ, तब से परतंत्र हूँ। पहले साध्वियाँ मेरा आदर करती थी, अब वैसा नहीं करती। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि प्रातःकाल होने पर गोपालिका के पास से प्रतिनिष्क्रांत होकर पृथक् उपाश्रय में रहूँ।

यों सोचकर वह अगले दिन सवेरे आर्या गोपालिका के पास से निकल गई।

(७९)

तए णं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं २ हत्थे धोवेइ जाव चेएइ तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थविहारीणी ओसण्णा २ कुसीला २ संसत्ता २ बहुणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अद्धमासियाए संलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइय अपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि विमाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा। तत्थेगइयाणं देवीणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं सूमालियाए देवीए णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

शब्दार्थ - **अणोहट्टिया** - उच्छृंखल, **सच्छंदमई** - स्वच्छंद बुद्धियुक्त, **ओसण्णा** - आलस्य या प्रमाद युक्त।

भावार्थ - आर्या सुकुमालिका उच्छृंखल, निरंतर अपनी दूषणीय प्रवृत्ति से अनिवृत्त तथा स्वच्छंद रहती हुई, बार-बार हाथ धोती यावत् स्वाध्याय करती। वह इस प्रकार शिथिलाचारिणी हो गई। संयम, चारित्राराधना में आलस्य युक्त रहने लगी। उसने साध्वाचार के विपरीत, देह संस्कार में आसक्त रहते हुए बहुत वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। पन्द्रह दिन की संलेखना की किंतु अपने संयम विपरीत आचार का आलोचन, प्रतिक्रमण नहीं किया। फलस्वरूप वह आयुष्य पूर्ण होने पर, मृत्यु को प्राप्त कर ईशान कल्प में किसी एक देव विमान में देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई। वहाँ किन्ही-किन्ही देवों की तो नौ पल्योपम स्थिति बतलाई गई है। तदनुसार सुकुमालिका देवी की भी इतनी ही स्थिति हुई।

विवेचन - यहाँ सुकुमालिका का ईशान कल्प में, किसी एक विमान में देवगणिका के रूप में उत्पन्न होने का उल्लेख हुआ है। सहज ही शंका उठती है कि किसी विशेष विमान का नामोल्लेख न कर किसी एक विमान में उत्पन्न होने का यहाँ अनिश्चय मूलक उल्लेख कैसे हुआ?

पीछे के सूत्रों में भी कहीं-२ इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है - माथुरी तथा वलभी में हुई आगम वाचनाओं में जब आगमों का विविध बहुश्रुत मुनियों द्वारा पाठ-मेल नहीं किया गया तब संभवतः उनकी स्मृति में इन प्रसंगों के विमानों के नाम न रहे हों। अतएव "**अण्णयरंसि विमाणंसि - अन्यतर-किसी एक विमान में**" ऐसा उल्लेख कर पाठ-पूर्ति कर दी गई हो।

द्रौपदी-वृत्तांत

(८०)

तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्दीवे २ भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कंपिल्लपुरे णामं णयरे होत्था वण्णओ। तत्थ णं दुवए णामं राया होत्था वण्णओ। तस्स णं चुलणी देवी धट्ठज्जुणे कुमारे जुवराया।

भावार्थ - उस काल, उस समय इसी जंबू द्वीप में भारत वर्ष में, पांचाल जनपद में, कांपिल्यपुर नामक नगर था। वहाँ के राजा का नाम द्रुपद था। नगर और राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार यहाँ योजनीय है। द्रुपद की पटरानी चुलनीदेवी थी। कुमार धृष्टद्युम्न युवराज था।

(८१)

तए णं सा सूमालिया देवी ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव चइत्ता इहेव जंबूद्दीवे २ भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे णयरे दुवयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया। तए णं सा चुलणी देवी णवण्हं मासाणं जाव दारियं पयाया।

भावार्थ - देवी सुकुमालिका आयु क्षय यावत् भव क्षय होने पर, उस देवलोक से च्यवन कर, इसी जंबूद्वीप, भारतवर्ष पांचाल जनपद-कांपिल्यपुर नगर में रानी चुलनीदेवी की कोख में, राजा द्रुपद की पुत्री के रूप में आई। वहाँ नौ महीने पूरे होने पर यावत् उसने कन्या के रूप में जन्म लिया।

(८२)

तए णं तीसे दारियाए णिव्वत्तबारसाहियाए इमं एयारूवं० णामं० - जम्हा णं एसा दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए णामधिज्जे दोवई। तए णं तीसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गुण्णं गुणणिप्फण्णं णामधेज्जं करेंति दोवई।

भावार्थ - तदनंतर जन्म के बारहवें दिन उसके नाम के संबंध में विचार चला - यह बालिका चुलनी की आत्मजा, राजा द्रुपद की पुत्री है। अतः पिता के नामानुरूप इसका नाम द्रौपदी रखा जाए। यह सोचकर उसके माता-पिता ने उसका उत्तम, गुण निष्पन्न 'द्रौपदी' नाम रखा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(८३)

तए णं सा दोवई दारिया पंचधाइ परिग्गहिया जाव गिरिकंदर मल्लीण इव चंपगलया णिवायणिव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ। तए णं सा दोवई देवी रायवरकण्णा उम्मुक्कबालभावा जाव उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

भावार्थ - तदनंतर पाँच धायमाताओं द्वारा पालित-पोषित होती हुई कन्या द्रौपदी कंदरावर्तिनी, वात आदि के व्याघात से रहित चंपकलता की तरह सुखपूर्वक बढ़ने लगी। क्रमशः उसका बचपन व्यतीत हुआ यावत् वह उत्कृष्ट सौंदर्य संपन्न यौवन को प्राप्त हुई।

(८४)

तए णं तं दोवइं रायवरकण्णं अण्णया कयाइ अंतेउरियाओ ण्हायं जाव विभूसियं करेंति २ त्ता दुवयस्स रण्णो पायवंदिउं पेसंति। तए णं सा दोवई २ जेणेव दुवए राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ।

भावार्थ - तत्पश्चात् किसी एक दिन अंतःपुरवर्तिनी महिलाओं ने उसे स्नान कराया यावत् सब प्रकार के आभरणों से अलंकृत किया। वैसा कर राजा द्रुपद के चरणों में प्रणाम करने हेतु भेजा।

वह श्रेष्ठ राज कन्या द्रौपदी राजा द्रुपद के पास आई। उनके चरणों में प्रणाम किया।

(८५)

तए णं से दुवए राया दोवइं दारियं अंके णिवेसेइ २ त्ता दोवईए २ रूवेण य ३ जायविम्हए दोवइं २ एवं वयासी - जस्स णं अहं (तुमं) पुत्ता! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुहिया वा भविज्जासि। तए णं मम जावज्जीवाए हिययडाहे भविस्सइ। तं णं अहं तव पुत्ता! अज्जयाए सयंवरं विरयामि। अज्जयाए णं तुमं दिण्णं सयंवरा। जे णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ त्तिकट्टु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ- हिययडाहे - हृदयदाह-मानसिक पीड़ा, **आसासेइ** - आश्वस्त किया, **अज्जयाए-** अद्यत्व-इन्हीं दिनों में, **दिण्णं सयंवरा** - स्वयंवर में ही पति प्राप्ति।

भावार्थ - राजा द्रुपद ने पुत्री द्रौपदी को गोद में बिठाया। उसके रूप लावण्य एवं यौवन को देखकर वह विस्मित हुआ। उसने राजकुमारी द्रौपदी से कहा - पुत्री! मैं जिस किसी राजा या युवराज को तुम्हें भार्या के रूप में स्वयं दूंगा, वहाँ तुम सुखी या दुःखी होगी।

यदि दुःखी रहोगी तो जीवन भर के लिए मेरे हृदय में पीड़ा रहेगी। इसलिए पुत्री! मैं थोड़े ही दिनों में तुम्हारा स्वयंवर आयोजित करूंगा। उसी में तुम अपने वर का चयन करो। जिस राजा या राजकुमार का तुम वरण करोगी, वही तुम्हारा पति होगा। ऐसा कर उसने इष्ट, मधुर एवं प्रिय वचनों द्वारा उसे आश्वासन दिया एवं वहाँ से विदा किया।

स्वयंवर की घोषणा

(८६)

तए णं से दुवए राया दूयं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं णयरिं। तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे बलदेवपामोक्खे पंच महावीरे उग्गसेणपामोक्खे सोलस रायसहस्से पज्जुण्णपामोक्खाओ अद्धुट्ठाओ कुमारकोडीओ संबपामोक्खाओ सट्ठिदुद्दंत-साहस्सीओ वीरसेणपामोक्खाओ इक्कवीसं वीर पुरिस साहस्सीओ महासेण-पामोक्खाओ छप्पण्णं बलवगसाहस्सीओ अण्णे य बहवे राईसरतलवर माडंबिय कोडुंबिय इब्भसेट्ठि सेणावइ सत्थवाहपभिइओ करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि २ त्ता एवं वयाहि।

शब्दार्थ - **अद्धुट्ठाओ** - साढ़े तीन।

भावार्थ - तदनंतर राजा द्रुपद ने दूत को बुलाया और कहा - देवानुप्रिय! तुम द्वारका नगरी जाओ। वहाँ तुम कृष्ण वासुदेव, समुद्रविजय आदि दस दसार्ह बलदेव आदि पाँच महावीर, उग्रसेन आदि सोलह सहस्र राजन्यगण, प्रद्युम्न आदि साढे तीन करोड़ कुमार, साम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त साहसिक-दुर्घर्ष योद्धा, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर पुरुष, महासेन आदि छप्पन हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बलिष्ठ पुरुष - इन सबको तथा अन्य बहुत से राजा, सामंत, राजमान्य विशिष्टजन, मांडलिक भूमिपति, संपन्न श्रेष्ठीजन, सेनापति, सार्थवाह इत्यादि के समक्ष हाथों से अंजलि बांधकर, सिर के चारों ओर घुमाते हुए, जय-विजय से उन्हें वर्धापिति करो एवं उन्हें इस प्रकार कहो।

(८७)

एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे णयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए अत्तयाए धट्ठज्जुणकुमारस्स भगिणीए दोवईए० राय० सयंवरे भविस्सइ। तं णं तुब्भे देवा०! दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे णयरे समोसरह।

शब्दार्थ - **अणुगिण्हेमाणा** - अनुगृहीत करते हुए, **अकालपरिहीणं** - अविलम्ब।

भावार्थ - देवानुप्रियो! कांपिल्यपुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनीदेवी की आत्मजा और युवराज धृष्टद्युम्न की भगिनी श्रेष्ठ, उत्तम राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर होगा। इसलिए देवानुप्रियो! आप राजा द्रुपद को अनुगृहीत करते हुए अविलंब कांपिल्यपुर नगर में पधारे।

(८८)

तए णं से दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह जाव उवट्ठवेंति।

भावार्थ - दूत ने दोनों हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अंजलि करते हुए राजा द्रुपद का कथन स्वीकार किया। अपने घर आकर कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! शीघ्र ही चातुर्घण्ट अश्वरथ जुतवा कर यहाँ उपस्थित करो यावत् कौटुंबिक पुरुषों ने आज्ञानुसार रथ उपस्थित किया।

(८९)

तए णं से दूए ण्हाए जाव सरीरे चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ २ त्ता बहूहिं पुरिसेहिं सण्णद्ध जाव गहियाऽऽउहपहरणेहि सद्धिं संपरिवुडे कंपिल्लपुरं णयरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ० पंचाल जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव बारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बारवइं णयरिं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ २ त्ता जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चाउग्घंटं आसरहं ठवेइ २ त्ता रहाओ पच्चोरुहइ २ त्ता मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कण्हं वासुदेवं समुद्दविजयपामोक्खे य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ करयल तं चेव जाव समोसरह।

शब्दार्थ - **सुरट्ठाजणवयस्स** - सौराष्ट्र जनपद, **वग्गुरा** - समूह।

भावार्थ - दूत ने स्नान किया यावत् उसने शरीर को अलंकारों से सुशोभित किया। वह चातुर्घण्ट अश्वरथ पर सवार हुआ। बहुत से पुरुषों से घिरा हुआ, कवच आदि से सुसज्ज यावत् अस्त्र-शस्त्र लिए हुए कांपिल्य पुर नगर के बीचों बीच होता हुआ निकला। पांचाल देश में आगे बढ़ता हुआ उस प्रदेश के सीमांत भाग पर पहुँचा। सौराष्ट्र जनपद में प्रवेश कर उसके बीचों-बीच होता हुआ द्वारिका नगरी पहुँचा। नगरी के मध्य से गुजरता हुआ, वह कृष्ण वासुदेव की बहीर्वर्ती उपस्थानशाला-सभा भवन में पहुँचा। वहाँ अपने चातुर्घण्ट अश्वरथ को ठहराया। रथ से नीचे उतरा। फिर अपने सहवर्ती पुरुषों से घिरा हुआ, पैदल चलता हुआ, कृष्ण वासुदेव के पास समुद्र विजय-प्रमुख दस दसार्ह यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलिष्ठ योद्धाओं को हाथ जोड़ कर, मस्तक पर अंजलि बांधकर, वह सब निवेदित किया जो राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री के स्वयंवर के संबंध में घोषित करने हेतु कहा था। ऐसा कर उसने उनसे निवेदन किया कि अनुग्रह कर स्वयंवर में पधारें।

(९०)

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव दूत का कथन सुनकर बहुत हर्षित एवं प्रसन्न हुए। उन्होंने दूत का सत्कार-सम्मान कर उसे विदा किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६१)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि। तए णं से कोडुंबियपुरिसे करयल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सामुदाइयं भेरिं महया २ सद्देणं तालेइ।

शब्दार्थ - सामुदाइयं भेरिं - जन-जन में संवाद-प्रसार प्रयोजनीय दुंदुभि को।

भावार्थ - तदनंतर कृष्ण वासुदेव ने कौटुंबिक पुरुष को बुलाया और उसको आदेश दिया-देवानुप्रिय! जाओ, सुधर्मा सभा में स्थित सामुदायिक भेरी बजाओ। यह आदेश सुनकर कौटुंबिक पुरुष ने दोनों हाथों से अंजलि बांधकर यावत् मस्तक पर लगाकर कृष्ण वासुदेव का यह आदेश स्वीकार किया। वह सुधर्मा सभा में सामुदायिक भेरी के पास आया और उसे इस प्रकार बजाया कि उससे उच्च ध्वनि निकलने लगी।

(६२)

तए णं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव महासेणपामोक्खाओ छप्पणं बलवगसाहस्सीओ ण्हाया जाव विभूसिया जहाविभवइड्डिसक्कारसमुदएणं अप्पेगइया जाव पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति।

भावार्थ - सामुदायिक भेरी के बजाए जाने पर समुद्रविजय आदि दस दशार्ह यावत् महासेन आदि छप्पन सहस्र बलवान योद्धा आदि ने स्नान किया यावत् अलंकार भूषित होकर अपने-अपने वैभव ऋद्धि एवं प्रतिष्ठा के अनुरूप यावत् कई विविध वाहनों पर तथा कतिपय पैदल कृष्ण वासुदेव के पास आये और उन्हें हाथ जोड़ कर मस्तक पर हाथों से अंजलि बांधे, नमन कर जय-विजय द्वारा वर्धापित किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण का पांचाल की ओर प्रस्थान

(९३)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगय जाव पच्चप्पिणंति।

शब्दार्थ - अभिसेक्कं - पट्टाभिसिक्तं-मुख्य।

भावार्थ - तदुपरांत कृष्ण वासुदेव ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! शीघ्र ही मेरे प्रमुख हस्तिरत्न को तैयार करो। हाथी, घोड़े यावत् रथ पदाति रूप चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित होने हेतु कहो और मुझे वापस सूचित करो। कौटुंबिक पुरुषों ने कृष्ण वासुदेव के आदेशानुरूप व्यवस्था कर, वापस उन्हें सूचित किया।

(९४)

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरि कूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे। तए णं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव अणंगसेणापामोक्खाहिं अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं बारवइं णयरिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पंचाल जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कंपिल्लपुरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव स्नानागार में गए। मोतियों से सज्जित, गवाक्षयुक्त उत्तम स्नानघर में विधिवत् स्नान किया। भली भांति तैयार हुए तथा अंजनगिरी-श्यामरंग युक्त उच्च पर्वत शिखर के सदृश गजराज पर सवार हुए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव समुद्रविजय आदि दस दशार्ह यावत् अनङ्गसेना आदि सहस्रों गणिकाओं से घिरे हुए समस्त ऋद्धि, वैभव एवं शान के साथ यावत् वाद्य ध्वनि पूर्वक द्वारिका के बीच से निकले। सौराष्ट्र जनपद के मध्य होते हुए प्रदेश की सीमा पर पहुँचे। वहाँ से पाचाल जनपद के बीचों बीच होते हुए कांपिल्यपुर नगर की ओर जाने को उद्यत हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हस्तिनापुर : आमंत्रण

(९५)

तए णं से दुवए राया दोच्चं दूयं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छ (ह) णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरं णयरं तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिट्ठिल्लं भीमसेणं अज्जुणं णउलं सहदेवं दुज्जोहणं भाइसयसमग्गं गंगेयं विदुरं दोणं जयद्दहं सउणीं कीवं आसत्थामं करयल जाव कट्टु तहेव समोसरह।

शब्दार्थ - **गंगेयं** - गांगेय-गंगापुत्र भीष्म, **कीवं** - कृप-कृपाचार्य।

भावार्थ - राजा द्रुपद ने दूसरी बार दूत को बुलाया और कहा - देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर नगर को जाओ। वहाँ अपने पुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव सहित राजा पाण्डु तथा अपने सौ भाइयों सहित दुर्योधन भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, शकुनी, कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा को हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि बांधकर पूर्ववत् स्वयंवर का समाचार कहो और निवेदन करो-आप सब पधारें।

(९६)

तए णं से दूए एवं वयासी-जहा वासुदेव णवरं भेरी णत्थि जाव जेणेव कंपिल्लपुरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - उस दूत ने हस्तिनापुर जाकर वैसा ही सब कहा, जैसा द्वारिका जाकर श्री कृष्ण वासुदेव से कहा था। अन्तर इतना है कि हस्तिनापुर में भेरी नहीं थी यावत् यों आमंत्रण प्राप्त कर पाण्डु आदि सभी कांपिल्यपुर जाने को उद्यत हुए।

अन्यान्य राजाओं को आमंत्रण

(९७)

एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपाणयरिं, तत्थ णं तुमं कण्हं अंगरायं सेल्लणंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी क्रम से तीसरे दूत को चंपा नगरी जाकर शैल्य और नंदिराज सहित अंगराज कर्ण (कृष्ण) को हाथ-जोड़ कर, मस्तक नवाकर पूर्ववत् यावत् स्वयंवर में पधारने का निवेदन करने की आज्ञा दी।

(९८)

चउत्थं दूयं सुत्तिमइं णयरिं, तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइसयसं-परिवुडे करयल तहेव जाव समोसरह।

भावार्थ - चौथे दूत को शुक्तिमती नगरी जाकर दमघोष के पुत्र तथा पांच सौ भाइयों सहित राजा शिशुपाल को हाथ जोड़ कर मस्तक नवाकर स्वयंवर में पधारने का निवेदन करो, ऐसी आज्ञा दी।

(९९)

पंचमगं दूयं हत्थिसीसणयरं तत्थ णं तुमं दमदंतं रायं करयल तहेव जाव समोसरह।

भावार्थ - पांचवें दूत को हस्तिशीर्षनगर जाकर वहाँ राजा दमदंत को हाथ जोड़ कर मस्तक नवाकर उसी प्रकार कहने का यावत् स्वयंवर में पधारे, यह निवेदन करने का आदेश दिया।

(१००)

छट्ठं दूयं महुरं णयरिं, तत्थ णं तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह।

भावार्थ - छठे दूत को मथुरा जाकर धर नामक राजा को हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक उसी प्रकार कहने का यावत् स्वयंवर में पधारे, यह निवेदन करने का आदेश दिया।

(१०१)

सत्तमं दूयं रायगिहं णयरं, तत्थ णं तुमं सहदेवं जरा सिंधुसुयं करयल जाव समोसरह।

भावार्थ - सातवें दूत को राजगृह जाकर राजा जरासंध के पुत्र सहदेव को हाथ जोड़कर, मस्तक नवाकर उसी प्रकार कहने का यावत् स्वयंवर में पधारे, यह निवेदन करने का आदेश दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१०२)

अट्ठमं दूयं कोडिण्णं णयरं। तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह।

भावार्थ - आठवें दूत को कौंडिन्य नगर जाकर वहाँ भीष्मक के पुत्र राजा रूक्मी को हाथ जोड़ कर, मस्तक नवाकर उसी प्रकार कहने का आदेश दिया यावत् स्वयंवर में पधारे।

(१०३)

णवमं दूयं विराट णयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसयसमग्गं करयल जाव समोसरह।

भावार्थ - नवें दूत को विराटनगर जाकर राजा कीचक को सौ भाइयों सहित हाथ जोड़कर, विनय पूर्वक निवेदन करने का आदेश दिया यावत् स्वयंवर में पधारें।

(१०४)

दसमं दूयं अवसेसेसु (य) गामागरणगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह।

भावार्थ - दसवें दूत को अवशिष्ट ग्राम, नगर आदि स्थानों में जाकर वहाँ के सहस्रों राजाओं को हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर उसी प्रकार निवेदन करने का आदेश दिया यावत् स्वयंवर में पधारे।

(१०५)

तए णं से दूए तहेव णिग्गच्छइ जेणेव गामागर जाव समोसरह।

भावार्थ - पूर्वोक्त रूप में आदिष्ट सभी दूत यथा समय राजधानी, ग्राम, नगर आदि अपने गंतव्य स्थानों में गए यावत् द्रुपद राजा की आज्ञानुसार सभी को निवेदन किया कि आप स्वयंवर में पधारें।

(१०६)

तए णं ताइं अणेगाइं रायसहस्साइं तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ० तं दूयं सक्कारेंति सम्माणेंति स० २ त्ता पडिविसज्जिंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यों आमंत्रण प्राप्त कर सहस्रों राजा बहुत हृष्ट, परितुष्ट हुए। उन्होंने आमंत्रण देने आए दूतों का सत्कार सम्मान कर, उन्हें विदा किया।

आमंत्रित राजन्यगण रवाना

(१०७)

तए णं ते वासुदेव पामोक्खा बहवे रायसहस्सा पत्तेयं २ ण्हाया सण्णद्ध हत्थिखंधवरगया हयगयरह० महया भडचडगररहपहकर० सएहिं २ णयरेहिंतो अभिणिग्गच्छंति २ त्ता जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - तत्पश्चात् वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं में से प्रत्येक स्नानादि कर, कवच आदि धारण कर, स्वयंवर में जाने हेतु हाथियों पर आरूढ हुए। अश्व, गज, रथ एवं पदाति योद्धाओं से सुसज्ज, चतुरंगिणी सेनाओं के साथ अपने सैकड़ों गज-रथ-अश्वारूढ सहगामी योद्धाओं से घिरे हुए अपने-अपने नगरों से निकले तथा पांचाल जनपद की ओर जाने को तत्पर हुए।

स्वयंवर विषयक निर्देश

(१०८)

तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे णयरे बहिया गंगाए महाणईए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - राजा द्रुपद ने अपने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और आदेश दिया-तुम जाओ और कांपिल्यनगर के बाहर, गंगामहानदी से न अधिक निकट न अधिक दूर, एक महान् विशाल स्वयंवर-मंडप की रचना कराओ। वह सैकड़ों खंभों पर समवस्थित हो, क्रीड़ारत शालभंजिका की पुतलियों से सज्जित हो यावत् कौटुंबिक पुरुषों ने यह सब संपादित कर राजा को वापस सूचित किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१०९)

तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वासुदेव पामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह। ते वि करेत्ता पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - तदनंतर राजा द्रुपद ने फिर कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और आदेश दिया-देवानुप्रियो! शीघ्र ही वासुदेव कृष्ण आदि सहस्रों राजाओं के ठहरने के आवास की व्यवस्था करो। उन्होंने राजाज्ञानुरूप सारी व्यवस्था कर राजा को सूचना दी।

(११०)

तए णं से दुवए राया वासुदेव पामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमं जाणेत्ता पत्तेयं २ हत्थिखंध जाव परिवुडे अग्घं च पज्जं च गहाय सव्विड्ढीए कंपिल्लपुराओ णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव ते वासुदेव पामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ताइं वासुदेवपामोक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता तेसिं वासुदेव पामोक्खाणं पत्तेयं २ आवासे वियरइ।

भावार्थ - राजा द्रुपद ने जब यह जाना कि कृष्ण वासुदेव आदि सहस्रों राजा पहुँच गए हैं, तब हाथी पर सवार होकर अपने योद्धाओं से घिरा हुआ अर्घ्य-सत्कार सामग्री पाद-चरण प्रक्षालन हेतु जल लेकर अत्यंत ऋद्धि वैभव पूर्वक कांपिल्यपुर से निकला। जहाँ वासुदेव आदि बहुत से राजा ठहरे हुए थे, वहाँ आया। उनका अर्घ्य, पाद्य द्वारा सत्कार सम्मान किया। प्रत्येक के लिए पृथक्-पृथक् आवास की व्यवस्था की।

(१११)

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छंति २ हत्थिखंधाहिंतो पच्चोरुहंति २ त्ता पत्तेयं खंधावारणिवेसं करेंति २ त्ता सएसु २ आवासेसु अणुप्पविसंति २ त्ता सएसु २ आवासेसु य आसणेसु य सयणेसु य सण्णिसण्णा य संतुयट्टा य बहूहि गंधव्वेहि य णाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवणच्चिज्जमाणा य विहरंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **संतुयट्टा** - परिवर्तित पार्श्व-करवट बदलना, **गंधव्वेहि** - गंधर्व-विशिष्ट संगीत विज्ञजन।

भावार्थ - वासुदेव आदि राजा अपने-अपने आवासों की ओर चले। हाथियों से नीचे उतरे। उनमें से प्रत्येक ने अपने-अपने पड़ाव डाले। अपने-अपने आवासों में वे प्रविष्ट हुए। कई आसनासीन हुए। कतिपय शय्याओं पर लेटे। कुछ लेटे हुए करवटें बदलने लगे। बहुत से निपुण संगीतकारों एवं नाट्यकारों द्वारा प्रस्तुत संगीत, नृत्य, नाटक से वातावरण उल्लासमय था।

(११२)

तए णं से दुवए राया कंपिल्लपुरं णयरं अणुप्पविसइ २ त्ता विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विपुलं असणं ४ सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसण्णं च सुबहुपुप्फवत्थगंधमल्लालंकारं च वासुदेव पामोक्खाणं रायसहस्साणं आवासेसु साहरह। ते वि साहरंति।

शब्दार्थ - **साहरंति** - ले जाते हैं।

भावार्थ - तदनंतर राजा द्रुपद कांपिल्यपुर नगर में प्रविष्ट हुआ। उसने विपुल परिमाण में विविध-अशन-पान -खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाए। कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और आदेश दिया- देवानुप्रियो! तुम जाओ विपुल, विविध चतुर्विध आहार, सुरा, मद्य, सीधु तथा प्रसन्ना आदि विविध प्रकार की मदिराएं, मांस, अनेक प्रकार के सुंदर वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, मालाएं तथा अलंकार, वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं के आवासों में पहुँचाओ। कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया।

(११३)

तए णं ते वासुदेव पामोक्खा तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव पसण्णं च आसाएमाणा ४ विहरंति जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा जाव सुहासणवरगया बहूहिं गंधव्वेहिं जाव विहरंति।

भावार्थ - वासुदेव आदि राजा विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य यावत् विविध मदिराओं के आस्वादन का आनंद लेते रहे। भोजन करने के अनंतर आचमन आदि कर वे सुख पूर्वक आसनासीन हुए, बहुत से संगीतकारों द्वारा यावत् गाए जाते मधुर संगीत में मग्न हो गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सुरा, मद्य, सीधु और प्रसन्ना, यह मदिरा की ही जातियाँ है। स्वयंवर में सभी प्रकार के राजा और उनके सैनिक आदि आये थे। द्रुपद राजा ने उन सबका उनकी आवश्यक वस्तुओं से सत्कार किया। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कृष्ण जी स्वयं मदिरा आदि का सेवन करते थे। यह वर्णन सामान्य रूप से है। कृष्ण जी सभी आगत राजाओं में प्रधान थे अतएव उनका नामोल्लेख विशेष रूप से हुआ प्रतीत होता है।

यादवों में मांसाहारी होते हुए भी कृष्ण वासुदेव आदि राजा एवं इनके प्रमुख पारिवारिकजन मांसाहारी नहीं थे।

द्रुपद द्वारा घोषणा

(११४)

तए णं से दुवए राया पुव्वावरण्हकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमे देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे सिंघाडग जाव पहेसु वासुदेव पामोक्खाण य रायसहस्साणं आवासेसु हत्थिखंधवरगया महया २ सद्देणं जाव उग्घोसेमाणा २ एवं वयह-एवं खलु देवाणुप्पिया! कल्लं पाउप्पभायाए दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए अत्तयाए धट्ठज्जुण्णसस्स भगिणीए दोवई रा० सयंवरे भविस्सइ। तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! दुवयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ण्हाया जाव विभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरेंट० सेयवरचामर० हयगयरह० महया भडचडगरेणं जाव परिक्खित्ता जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छह २ त्ता पत्तेयं णामंकेसु आसणेसु णिसीयह २ त्ता दोवइं रा० पडिवालेमाणा २ चिट्ठह घोसणं घोसेह २ मम एयमाणत्तियं पच्चपिणह। तए णं ते कोडुंबिया तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - तदनंतर राजा द्रुपद ने पूर्वापराह्न-सायंकाल, कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और आज्ञा दी-देवानुप्रियो! तुम हाथी पर सवार होकर जाओ और कांपिल्यपुर नगर के तिराहों, चौराहों यावत् मार्गों पर एवं वासुदेव आदि राजाओं के आवास स्थानों पर जोर-जोर से घोषणा करते हुए ऐसा कहो-देवानुप्रियो! कल प्रातःकाल द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न की बहिन, उत्तम राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। देवानुप्रियो! आप द्रुपद राजा पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुग्रह करते हुए स्नानादि से निवृत यावत् अलंकारविभूषित हाथियों पर आरूढ़, कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, छत्र एवं श्वेत चंवर युक्त, चतुरंगिणी सेना एवं विशिष्ट योद्धाओं से घिरे हुए, स्वयंवर मंडप में पधारें।

आप पृथक्-पृथक् नामांकित आसनों पर यथास्थान विराजें यावत् उत्तम राजकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ अवस्थित रहें, यह घोषणा करो। ऐसा कर मुझे अवगत कराओ।

कौटुंबिक पुरुषों ने उसी प्रकार घोषणा की यावत् राजा को सूचित किया।

(११५)

तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सयंवरमंडवं आसियसंमज्जिओवलित्तं सुगंधवरगंधियं पंचवण्णपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागरुपवर कुंदुरुक्कतुरुक्क जाव गंधवट्टिभूयं मंचाइमंचकलियं करेह कारवेह करेत्ता कारवेत्ता वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं पत्तेयं २ णामंकाइं (कियाइं) आसणाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं रएह २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह तेवि जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - राजा द्रुपद ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - तुम स्वयंवर मंडप में पानी छिड़कवाओ, उसे सम्मार्जित करो। मृत्तिका आदि से लिप्त करवाओ। उसे उत्तम सुरभिमय बनाओ। पांच रंग के फूलों से उसे सुसज्जित कराओ। काले अगर, कुंदरु, लोबान की सुगंधि से यावत् गन्धवर्ति की तरह मनोभिराम-सुगंधिमय बनाओ। उसमें बड़े-बड़े मंच बनवाओ, जिन पर और छोटे मंच बनवाओ। ऐसा कर वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं के लिए उनके नामों से अंकित ऐसे आसन लगाओ जो शुभ वस्त्रों से आच्छादित हों तथा फिर उन पर श्वेत वस्त्र बिछाओ। यह सब मुझे ज्ञापित करो।

उन कौटुंबिक पुरुषों ने यावत् वह सब निष्पादित कर राजा को सूचित किया।

स्वयंवर का शुभारंभ

(११६)

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउ० ण्हाया जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरेंट० सेयवरचामराहिं हयगय जाव परिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरेमंडवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अणुप्पविसंति २ त्ता पत्तेयं २ णामंकेसु णिसीयंति दोवइं रायवरकण्णं पडिवालेमाणा चिट्ठंति।

भावार्थ - वासुदेव आदि सहस्रों राजा प्रातःकाल होने पर अलंकार आदि से विभूषित होकर यावत् अपने-अपने हाथियों पर सवार हुए। उन पर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र तने थे। श्वेत चँवर डुलाए जा रहे थे, यावत् हाथी-घोड़ों पर आरूढ योद्धा उनके चारों ओर चल रहे थे। इस प्रकार अत्यंत ऋद्धि, वैभव यावत् तुमुल वाद्य ध्वनि के साथ वे स्वयंवर मंडप की ओर चले-पहुँचे, मंडप में प्रवेश किया तथा अपने-अपने नामों से अंकित आसनों पर बैठे एवं उत्तम राजकन्या द्रौपदी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

(११७)

तए णं से दुवए राया कल्लं ण्हाए जाव विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंट० हयगय० कंपिल्लपुरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ० जेणेव सयंवरामंडवे जेणेव वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तेसिं वासुदेव-पामोक्खाणं करयल जाव वद्धावेत्ता कण्हस्स वासुदेवस्स सेयवरचामरं गहाय उववीयमाणे चिट्ठइ।

भावार्थ - तत्पश्चात् राजा द्रुपद ने प्रातःकाल स्नान किया यावत् आभरण धारण किए। वह हाथी पर सवार हुआ। कोरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र उस पर तना था, चँवर डुलाए जा रहे थे। चतुरंगिणी सेना के साथ, अपने योद्धाओं से घिरा हुआ वह कांपिल्यपुर नगर के बीचों-बीच होता हुआ निकला। स्वयंवर मंडप में जहां वासुदेव आदि सहस्रों राजा थे, आया। आकर उन राजाओं को हाथ-जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि बांधकर उन्हें वर्धापित किया तथा वह कृष्ण वासुदेव के चँवर डुलाता हुआ, उनके निकट स्थित हुआ।

(११८)

तए णं सा दोवई रायवरकण्णा जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मा कयकोउयमंगल पायच्छित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ २ त्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ।

भावार्थ - उत्तम राजकन्या द्रौपदी यथासमय स्नान घर की ओर गई। वहाँ जाकर स्नान गृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर स्नान किया यावत् शुद्ध वस्त्र धारण किए, मांगलिक कृत्य किए। फिर उसने देव प्रतिमा का अर्चन किया। वैसा कर वह अन्तःपुर में चली गई।

विवेचन - इस सूत्र में आये हुए **'जिणपडिमाणं अच्चणं'** इस शब्द को लेकर मन्दिरमार्गी बन्धु कहते हैं कि द्रौपदी श्राविका थी, वह विवाह मण्डप में जाने से पूर्व "जिन प्रतिमा" की अर्चना करके गई। यह बात इस पाठ से सिद्ध है। अतएव हमें भी मूर्ति पूजा करनी चाहिये। उनका यह कथन सत्यता से कितना दूर है इस पर चिंतन करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में द्रौपदी के जीवन की प्रमुख घटना की जानकारी होना आवश्यक है, जिससे वस्तु स्थिति सहज ही समझ में आ जावेगी।

द्रौपदी का कथानक नागश्री ब्राह्मणी के जीवन से प्रारम्भ होता है, नागश्री ब्राह्मणी ने "धर्मरुचि" नाम के तपोधनी अनगार को मासिक तपस्या के पारणे के दिन कटु तुम्बे का हलाहल जहर के समान आहार बहराया जिसके सेवन से उस महान् तपोधनी मुनिराज को दारुण वेदना होकर उनके प्राण पंखेरु उड़ गये। तपस्वी हत्या के कारण नागश्री के पति ने उसे घर से निकाल दिया। नागश्री भिखारिन हुई और अशुभ कर्मोदय से रोगिणी बन कर मृत्यु को पाकर नरक में गई। नरक सम्बन्धी महान् वेदना को भोगती हुई और अनेकों भव करती हुई, भटकती भटकती मनुष्य भव को प्राप्त हुई। वहाँ सुकुमालिका नाम की बालिका के नाम से पहिचानी जाने लगी। पति के तिरस्कार से दुःखी हो उसने चारित्र ग्रहण किया, कुछ ही समय बाद वह चारित्र से पतित होकर शिथिलाचारिणी बन गई। गुरुणी ने सुकुमालिका आर्या को पृथक् कर दिया। इस प्रकार चारित्र विराधना करती हुई एक बार एक वैश्या को पांच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करते देख कर उसने यह **"निदान"** किया कि "यदि मेरी करणी का फल हो तो मैं भी इसी प्रकार पांच पति के साथ विपुल भोगों को भोगती हुई विचरूं।" इस प्रकार निदान कर बिना आलोचना प्रायश्चित्त किये विराधिका हो मृत्यु को प्राप्त कर स्वर्ग में गई। वहाँ का आयुष्य पूर्ण होने पर मनुष्य भव में द्रौपदीपने उत्पन्न हुई। यौवनावस्था के प्राप्त होने पर उसके लिए स्वयंवर रचा गया। उस समय वह स्नानादि से निवृत्त होकर जिन घर में गई, वहाँ जिन प्रतिमा की पूजा कर स्वयंवर मण्डप में गई। निदान के प्रभाव से द्रौपदी ने सभी राजा-महाराजाओं को छोड़कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाण्डु पुत्र के गले में वरमाला डाल कर पांचों भाईयों की पत्नी बनी। यह द्रौपदी का संक्षिप्त कथानक है। इसमें केवल "जिन प्रतिमा" की अर्चना शब्द को लेकर मूर्ति पूजक बंधु बिना कुछ सोचे समझे "मूर्ति पूजा" सिद्ध करते हैं। इस संदर्भ में उनका कहना है कि - १. द्रौपदी श्राविका थी २. द्रौपदी की पूजी गई प्रतिमा तीर्थंकर की थी ३. द्रौपदी ने नमोत्थुणं से स्तुति की थी। इन तीनों युक्तियों पर अब हमें क्रमशः चिंतन करना है-

१. क्या द्रौपदी विवाह के समय श्राविका थी ? - द्रौपदी के सुकुमालिका आर्यिका के भव निदान (नियाणा) और उससे होने वाले फल विपाक पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचारणा की जाय तो स्पष्ट होता है कि विवाह के पूर्व उसमें श्राविका होने की योग्यता थी ही नहीं। क्योंकि दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के १० वें अध्ययन से स्पष्ट है कि निदान करने वाले जीव का जब तक निदान पूर्ण नहीं हो जाय (फल नहीं मिल जाय) तब तक वह सम्यक्त्व से भी वंचित रहता है अर्थात् मिथ्यात्वी रहता है। अतएव द्रौपदी विवाह के पूर्व श्राविका नहीं थी बल्कि मिथ्यात्वी थी। विवाह के समय आगमकार स्वयं द्रौपदी के लिए लिखते हैं "**पुव्वकय नियाणेण चोइज्जमाणि**" अर्थात् पूर्वकृत निदान से प्रेरित। इसके सिवाय समकित सार के रचयिता श्रीमद् जेष्ठमलजी म. सा. अपने इसी ग्रंथ में लिखते हैं कि "ओघ नियुक्ति सूत्र" की आचार्य श्री गंध हस्तिकृत टीका में द्रौपदी को एक सन्तान प्राप्ति के बाद सम्यक्त्व प्राप्त होना बतलाया है।" इससे सिद्ध होता है कि विवाह के पश्चात् जब द्रौपदी का पूर्वकृत निदान पूर्ण हो जाता है, तब वह जिनोपासिका होने के योग्य बनती है।

२. क्या द्रौपदी ने तीर्थंकर प्रतिमा की पूजा की थी? - जब यह स्पष्ट हो चुका है कि पाणिग्रहण के समय द्रौपदी सम्यक्त्व से रहित थी अर्थात् मिथ्यात्वी थी, तब यह समझना एकदम सहज हो गया कि उसके द्वारा पूजी गई मूर्ति तीर्थंकर की नहीं थी, क्योंकि मूर्तिपूजक बन्धुओं के मतानुसार तीर्थंकर को देव मानकर तो सम्यक्त्वी ही वन्दते पूजते हैं, तब प्रश्न होता है कि द्रौपदी द्वारा पूजी हुई मूर्ति को "जिनप्रतिमा" जब सूत्र में ही बताया गया है तो फिर इस जिन प्रतिमा को तीर्थंकर की प्रतिमा नहीं माना जाय तो किसकी माना जाय? इसके समाधान में कहा जाता है कि "जिन" शब्द के कई अर्थ होते हैं। श्री हेमचन्द्राचार्य के हेमी नाम माला में एक यह भी अर्थ किया है कि "**कंदर्पोपि जिनोश्चैव अर्थात् कदर्प कामदेव को भी "जिन"** कहा है और यह अर्थ इस प्रकरण में बिलकुल उपयुक्त है। क्योंकि द्रौपदी को निदान के प्रभाव से कामदेव ही अधिक रुच रहा था। इसके अलावा विजय गच्छ के श्री गुणसागर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी ने विक्रम संवत् १६७२ में "ढाल सागर" नाम के एक काव्य ग्रन्थ की रचना की, उसके खण्ड ६ ढाल ११५ में द्रौपदी के पूज्यनीय आराध्य देव का खुलासा इस प्रकार किया है।

"करी पूजा "कामदेवनी" भाखे द्रौपदी नार।

देव दया करी मुझने, भलो देजो भरथार॥"

उक्त दोहे में भी कामदेव की पूजा की पुष्टि की गई है। इस प्रकार प्रकरण के अनुसार द्रौपदी का स्वयंवर में जाने से पूर्व "कामदेव" की पूजा करना स्पष्ट है, न कि तीर्थंकर की प्रतिमा का।

३. क्या द्रौपदी ने नमोत्थुणं से स्तुति की थी? - उक्त दोनों बिन्दुओं से स्पष्ट ध्वनित है कि द्रौपदी विवाह के पूर्व सम्यक्त्व रहित अर्थात् मिथ्यात्वी थी एवं उसने स्वयंवर मण्डप ने जाने से पूर्व "काम देव की प्रतिमा" की पूजा की थी। अतएव नमोत्थुणं के पाठ से प्रतिमा की स्तुति करने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु मूर्ति पूजक बंधुओं ने मूर्ति पूजा सिद्ध करने के लिए ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र की अनेक प्रतियों में "नमोत्थुणं" शब्द प्रक्षिप्त (बाद में बढ़ाया गया है) कर डाला है। पुरानी प्रतियों में **"जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ करित्ता"** पाठ ही है। इसके लिए अनेक प्रमाण है -

१. पूज्य शतावधानी श्री रत्नविजयजी महाराज ने आगरा चातुर्मास में श्री रत्नधीर विजय के शिष्यानुशिष्य श्री रत्नविजयजी के भंडार में "पड़ी माभा" की एक प्राचीन आठ सौ वर्ष पुरानी ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र की प्रति के पृष्ठ संख्या १३३ में पाठ इस प्रकार है - **"जिण पडिमाणं अच्चणं करेई करित्ता जेणेव अंतउरे तेणेव उवागच्छई"** अर्थात् जिन प्रतिमा का अर्चन किया, करके जिधर अंतःपुर था उधर चली गई।

२. धर्मसिंहजी स्वामी भरुच के भंडार में ७०० वर्ष पुरानी एक ताड़ पत्र की प्रति में भी ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र का उपरोक्त पाठ ही है "नमोत्थुणं" नहीं है।

३. धूलिया के भंडार की १६ वीं शताब्दी में लिखित ज्ञातासूत्र के १६वें अध्ययन में उपरोक्त पाठ ही है। नमोत्थुणं पाठ नहीं है।

४. भावनगर से विक्रम संवत् १९८६ में प्रकाशित ज्ञाता सूत्र में भी द्रौपदी प्रकरण में नमोत्थुणं का पाठ नहीं है।

५. मूर्तिपूजक टीकाकार श्री अभयदेवसूरि द्रौपदी सम्बन्धी पूजा के पाठ की टीका करते हुए लिखते हैं कि -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"जिण पडिमाणं अच्चणं करेइति एकस्या वाचना मेतावदेव दृश्यते वाचनान्तरेतु" आदि।

टीकाकार महाशय ने केवल बारह अक्षर वाले पाठ को ही मूल में स्थान देकर बाकी के लिए वाचनान्तर में होना लिखकर टीका में ही रखते हैं, मूल में नहीं, इन सभी संदर्भों से स्पष्ट ध्वनित है कि "नमोत्थुणं" शब्द मूर्तिपूजा के रंग में रंगे हुए महाशयों ने बाद में मूल पाठ में प्रक्षिप्त किया है। "नमोत्थुणं" शब्द का इस प्रकरण से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

उक्त प्रमाणों स स्पष्ट है कि द्रौपदी विवाह से पूर्व निदानकृत थी। अतएव उस निदान के फलीभूत होने के लिए स्वयंवर मण्डप में जाने से पूर्व स्नानादि कर "कामदेव की प्रतिमा" की अर्चना करने गई थी, न कि तीर्थंकर प्रतिमा की।

(११९)

तए णं तं दोवइं रा० अंतेउरियाओ सव्वालंकार विभूसियं करेंति किं ते? वरपायपत्तणेउरा जाव चेडिया-चक्कवाल-मयहरग-विंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण साला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ।

शब्दार्थ - **मयहरग** - महत्तरक-प्रौढ, **किड्डावियाए** - क्रीड़ा कराने वाली, **लेहियाए** - लेखिका।

भावार्थ - तदनंतर अंतःपुर की दासियों ने उत्तम राजकन्या द्रौपदी को सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। उसके पैरों में उत्तम नुपूर पहनाए। यावत् द्रौपदी दासियों और प्रौढ सेविकाओं के समूह से घिरी हुई अंतःपुर से निकली। वह बहिर्वर्ती सभा भवन में जहाँ चातुर्घण्ट अश्वरथ था आई। आकर क्रीड़ाकारिणी धाय तथा राजपरिवार का इतिवृत लिखने वाली दासियों के साथ चातुर्घण्ट अश्वरथ पर सवार हुई।

(१२०)

तए णं से धट्ठज्जुणे कुमारे दोवईए रायवरकण्णाए सारत्थं करेइ। तए णं सा दोवई २ कंपिल्लपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ २ त्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरमंडवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुपविसइ करयल जाव तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ।

शब्दार्थ - **सारत्थं** - रथचालन।

भावार्थ - राजकुमार धृष्टद्युम्न द्रौपदी का सारथी बना। रथ रवाना हुआ। श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी कांपिल्यपुर नगर के बीचोंबीच होती हुई (यहाँ इसी के समान पूर्व वर्णन से यह अंतर है) स्वयंवर-मण्डप में पहुँची। रथ रुका। वह नीचे उतरी। क्रीड़ाकारिणी धाय एवं लेखिका के साथ स्वयंवर-मण्डप में प्रविष्ट हुई। दोनों हाथ जोड़कर, अंजलि बाँधे, सिर झुकाए, वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं को उसने प्रणाम किया।

(१२१)

तए णं सा दोवई रा० एगं महं सिरिदामगंडं किं ते? पाडलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्धणिं मुयंतं परम सुहफासं दरिसणिज्जं गेण्हइ।

भावार्थ - उत्तम राजकन्या द्रौपदी ने एक बड़ा श्रीदामकाण्ड (शोभामय-माला-समूह) लिया, जो गुलाब, मल्लिका, चंपक यावत् सप्तपर्ण आदि के पुष्पों से वह संग्रथित था। अत्यंत सुरभित तथा परम सुखद स्पर्श युक्त एवं दर्शनीय था।

(१२२)

तए णं सा किड्डाविया जाव सुरूवा जाव वामहत्थेणं चिल्लगं दप्पणं गहेऊण सललियं दप्पण संकंतबिंबसंदंसिए य से दाहिणेणं हत्थेणं दरिसिए पवररायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीर महुर भणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसामत्थगोत्त-विक्कंतिकंतिबहुविह-आगममाहप्परूवजोव्वण-गुणलावण्ण-कुलसीलजाणिया कित्तणं करेइ।

शब्दार्थ - **चिल्लगं** - चमक युक्त, **दप्पण** - दर्पण, **फुड** - स्पष्ट शब्द एवं अर्थ युक्त, **पत्थिवाणं** - राजाओं के, **सत्त** - सत्त्व, **सामत्थ** - सामर्थ्य, **विक्कंति** - विक्रम, **बहुविह आगम** - बहुविध शास्त्रज्ञान, **माहप्प** - माहात्म्य, **कित्तणं** - कीर्तन-गान।

भावार्थ - तब उस रूपवती, क्रीड़ा कारिका परिचारिका ने यावत् अपने बाएँ हाथ में एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमकीला दर्पण लिया। उसमें जिन-जिन राजाओं के चेहरे प्रतिबिंबित होते थे, उन्हें वह लालित्यपूर्ण संकेत के साथ राजकुमारी को बतलाती।

वह स्फुट, विशद, सस्वर, गंभीर, मधुर वाणी में निपुण थी। उन सभी राजाओं के माता-पिता, वेश, सामर्थ्य, पराक्रम, कांति, बहुविध शास्त्र-ज्ञान, माहात्म्य, रूप, यौवन, लावण्य, कुल, शील की ज्ञायिका होने से, उनका कीर्त्तन-सम्यक् आख्यान करने लगी।

(१२३)

पढम ताव वण्हिपुंगवाणं दस दसार (वर) वीर पुरिसाणं तेलोक्कबलवगाणं सत्तुसयसहस्समाणावमद्दगाणं भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं चिल्लगाणं बलवीरियरूव-जोव्वणगुणलावण्णकित्तिया कित्तणं करेइ। तओ पुणो उग्गसेणमाईणं जायवाणं भणइ य सोहग्गरूवकलिए वरेहि वरपुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हिययदइओ।

शब्दार्थ - **वण्हिपुंगवाणं** - वृष्णिवंश में प्रधान, **माणावमद्दगाणं** - मान-मर्दन करने वाले, **जायवाणं** - यादवों का, **दइओ** - प्रिय।

भावार्थ - उनमें से सबसे पहले यावत् वृष्णि वंशियों में प्रधान समुद्रविजय आदि दश दशार्हों का आख्यान किया। वह बोली - ये तीनों लोकों में अत्यंत बलशाली, लाखों शत्रुओं के मानमर्दक, भवसिद्धिक पुरुषों में उत्तम कमल सदृश, अपनी सहज तेजस्विता से देदीप्यमान, बल, वीर्य रूप, यौवन, गुण, लावण्यशाली हैं।

इसके बाद उसने उग्रसेन आदि यादवों का वर्णन किया। वह बोली - हे सौभाग्यशालिनी! उत्तम गंध हस्ती सदृश इन वृष्णिपुंगवों एवं यादवों में से जो तुम्हारे मन को प्रिय हो, उसका वरण करो।

पंच-पांडव-वरण

(१२४)

तए णं सा दोवई रायवरकण्णगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झंमज्झेणं समइच्छमाणि २ पुव्वकयणियाणेणं चोइज्जमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ते पंच पंडवे तेणं दसद्धवण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढियपरिवेढियं करेइ २ त्ता एवं वयासी - एए णं मए पंच पंडवा वरिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **समइच्छमाणी** - अतिक्रांत करती हुई, आगे बढ़ती हुई, **चोइज्जमाणी** - प्रेरित होती हुई।

भावार्थ - तब वह उत्तम राजकन्या द्रौपदी हजारों राजाओं के बीच से आगे बढ़ती हुई, अपने पूर्वकृत निदान से अन्तःप्रेरित होती हुई, जहाँ पाँच पांडव थे, पहुँची और पंचरंगे फूलों से बने श्रीदामकाण्ड से उन्हें वेष्टित कर दिया। वैसा कर वह बोली - मैंने इन पाँचों पाण्डवों का वरण किया।

(१२५)

तए णं तेसिं (ताइं) वासुदेव पामोक्खाणं बहूणि रायसहस्साणि महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणाइं २ एवं वयंति - सुवरियं खलु भो! दोवइए रायवरकण्णाए त्तिकट्टु सयंवरमंडवाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छंति।

शब्दार्थ - **सुवरियं** - अच्छा वरण किया।

भावार्थ - तब वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं ने उच्च ध्वनि से बार-बार उद्घोषित करते हुए कहा - श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी ने सुंदर वरण किया है। यों कहकर वे राजा स्वयंवर-मंडप से बाहर निकले, अपने-अपने आवासों में चले गए।

(१२६)

तए ण धट्ठज्जुणेकुमारे पंच पंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउग्घंटं आसरह दुरूहेइ २ त्ता कंपिल्लपुरं मज्झंमज्झेणं जाव सयं भवणं अणुपविसइ।

भावार्थ - तदनंतर राजकुमार धृष्टद्युम्न ने पांचों पांडवों तथा राजकुमारी द्रौपदी को चार अश्वों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर बिठाया तथा कांपिल्यपुर के बीचों बीच होते हुए यावत् अपने प्रासाद में प्रवेश किया।

पाणिग्रहण संस्कार

(१२७)

तए णं दुवए राया पंच पंडवे दोवइं राय० पट्टयं दुरूहेइ २ त्ता सेयपीयएहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कलसेंहि मज्जावेइ २ त्ता अग्गिहोमं कारवेइ पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य पाणिग्गहणं करावेइ।

भावार्थ - तब राजा द्रुपद ने पांचों पांडवों एवं राजकुमारी द्रौपदी को पट्टासीन किया। सोने, चांदी के श्वेत-पीत कलशों से स्नान करवाया। वैसा कर अग्नि होम करवाया तथा पांच पांडवों के साथ द्रौपदी का पाणिग्रहण करवाया।

(१२८)

तए णं से दुवए राया दोवईए रा० इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ तंजहा-अट्ठ हिरण्णकोडीओ जाव अट्ठ पेसणकारीओ दासचेडीओ अण्णं च विपुलं धणकणग जाव दलयइ। तए णं से दुवए राया ताइं वासुदेवपामोक्खाइं विपुलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं वत्थगंध जाव पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - तदनंतर राजा द्रुपद ने राजकुमारी द्रौपदी को आठ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ यावत् आठ प्रेषणकारिकाएँ-अंतःपुर के बाहर का कार्य करने वाली दासियाँ, प्रचुर मात्रा में धन, स्वर्ण यावत् रत्नादि प्रीतिदान के रूप में दिए।

राजा द्रुपद ने वासुदेव आदि राजाओं को विपुल चतुर्विध आहार, पुष्प, वस्त्र, सुगंधित द्रव्य आदि द्वारा सत्कृत-सम्मानित कर विदा किया।

राजा पाण्डु द्वारा हस्तिनापुर का निमंत्रण

(१२९)

तए णं से पंडूराया तेसिं वासुदेव पामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे णयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ममं अणुगिण्हमाणा अकाल परिहीणं समोसरह।

शब्दार्थ - **कल्लाणकरे** - मंगल-महोत्सव।

भावार्थ - राजा पाण्डु ने वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं को हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि बांधे, इस प्रकार कहा - देवानुप्रियो! हस्तिनापुर में पांचों पाण्डवों एवं द्रौपदी का मंगल महोत्सव होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवानुप्रियो! आप मुझ पर अनुग्रह कर अविलंब पधारें।

(१३०)

तए णं ते वासुदेव पामोक्खा पत्तेयं २ जाव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - राजा पांडु द्वारा आमंत्रित होकर वासुदेव प्रमुख यावत् राजाओं में से प्रत्येक हस्तिनापुर की ओर जाने को तत्पर हुए।

(१३१)

तए णं से पंडू राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिंसए कारेह अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ जाव पडिरूवे।

भावार्थ - तदनंतर राजा पांडु ने अपने कौटुबिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनको आदेश दिया - देवानुप्रियो! जाओ हस्तिनापुर नगर में पांचों पाण्डवों के लिए सुंदर, अत्यंत ऊँचे प्रासादों का निर्माण करवाओ। यहाँ प्रासाद विषयक वर्णन पूर्वोक्त रूप में यावत् प्रतिरूप शब्द तक ग्राह्य है।

(१३२)

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा पडिसुणेंति जाव करावेंति। तए णं से पंडुए राया पंचहिं पंडवेहिं दोवईए देवीए सद्धिं हयगयसंपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए।

भावार्थ - कौटुंबिक पुरुषों ने राजा का यह आदेश स्वीकार किया यावत् उसी प्रकार प्रासाद निर्मित करवा दिए। तब राजा पाण्डु ने पांचों पाण्डवों एवं द्रौपदी देवी के साथ अश्व, गजादि चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर कांपिल्यपुर नगर से प्रस्थान किया। वह हस्तिनापुर नगर आया।

(१३३)

तए णं से पंडुराया तेसिं वासुदेव पामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णयरस्स बहिया वासुदेव पामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे कारेह अणेगखंभसय० तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - राजा पांडु ने जब यह जाना कि वासुदेव आदि राजा आ गए हैं, तब उसने कौटुंबिक पुरुषों को आज्ञा दी-देवानुप्रियो! जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव आदि सहस्रों राजाओं के लिए आवास तैयार कराओ, जो सैकड़ों स्तंभों पर समासृत (टिका) हों। यहाँ आवास का विस्तृत वर्णन पूर्ववत् योजनीय है यावत् कौटुंबिक पुरुषों ने राजा के आदेशानुरूप व्यवस्था कर राजा को ज्ञापित किया।

(१३४)

तए णं ते वासुदेव पामोक्खा बहवे राय सहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव उवागच्छंति। तए णं से पंडूराया तेसिं वासुदेव पामोक्खा णं आगमणं जाणित्ता हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जहा दुपए जाव जहारिहं आवासे दलयइ। तए णं ते वासुदेव पामोक्खा बहवे राय सहस्सा जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छंति० तहेव जाव विहरंति।

भावार्थ - तदनंतर वासुदेव आदि सहस्रों राजा हस्तिनापुर नगर में आए। राजा पांडु उन्हें आया जानकर बहुत हर्षित एवं उल्लसित हुआ। उसने स्नान किया। नित्य-नैमित्तिक मांगलिक कृत्य किए यावत् राजा द्रुपद की तरह उनकी आवास व्यवस्था की।

वासुदेव आदि सहस्रों राजा अपने-अपने आवासों में आए। आकर पूर्ववत् यावत् सानंद स्थिर हुए।

(१३५)

तए णं से पंडू राया हत्थिणाउरं णयरं अणुपविसइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! विपुलं असणं ४ तहेव जाव उवणेंति। तए णं ते वासुदेव पामोक्खा बहवे रायसहस्सा ण्हाया कयबलिकम्मा तं विपुलं असणं ४ तहेव जाव विहरंति।

भावार्थ - समागत राजाओं की आवास व्यवस्था कर राजा पांडु ने हस्तिनापुर नगर में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेश किया। कौटुंबिक पुरुषों को आदेश दिया - देवानुप्रियो! विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाओ यावत् यहाँ पूर्ववत् विस्तृत वर्णन योजनीय है यावत् कौटुंबिक पुरुष उस चतुर्विध आहार को आवासों में ले गए। तब वासुदेव आदि बहुत से राजाओं ने स्नान किया, मांगलिक कृत्य किए तथा प्रचुर चतुर्विध आहार यावत् पूर्ववत् सेवन कर आनंदित हुए।

हस्तिनापुर में मंगल-महोत्सव

(१३६)

तए णं से पंडूराया (ते) पंचपंडवे दोवइं च देविं पट्टयं दुरूहेइ २ त्ता सीयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ २ त्ता कल्लाणकारं करेइ २ त्ता ते वासुदेव पामोक्खे बहवे रायसहस्से विपुलेणं असण ४ पुप्फवत्थेणं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ। तए णं ताइं वासुदेव पामोक्खाइं बहूहिं जाव पडिगयाइं।

भावार्थ - तत्पश्चात् राजा पाण्डु ने पांचों पाण्डवों एवं द्रौपदी को पट्ट पर बिठाया। चांदी-सोने के सफेद और पीले कलशों से स्नान करवाया। शुभोपचार संपादित किए - मंगलोत्सव मनाया। वैसा कर वासुदेव आदि सैकड़ों राजाओं को प्रचुर चतुर्विध आहार, पुष्प, वस्त्र आदि द्वारा सत्कृत-सम्मानित किया यावत् विदा किया। वासुदेव आदि राजा वहाँ से चलकर अपने-अपने नगरों को लौट गए।

(१३७)

तए णं ते पंच पंडवा दोवईए देवीए (सद्धिं अंतो अंतेउर परियाल) सद्धिं कल्लाकल्लिं वारं वारेणं ओरालाइं भोगभोगाइं जाव विहरंति।

भावार्थ - अपने परिजनवृंद सहित पांचों पाण्डव प्रतिदिन, बारी-बारी से द्रौपदी देवी के साथ विपुल सुख-भोग करते हुए यावत् सानंद रहने लगे।

(१३८)

तए णं से पंडू राया अण्णया कयाइं पंचहिं पंडवेहिं कोंतीए देवीए दोवईए य सद्धिं अंतोअंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे सीहासणवरगए यावि विहरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - एक बार राजा पांडु किसी समय पांचों पाण्डव, कुंतीदेवी एवं द्रौपदी देवी के साथ अन्तःपुर में परिजनवृंद से घिरे हुए उत्तम आसन पर विराजमान थे।

नारद का पदार्पण

(१३९)

इमं च णं कच्छुल्लणारए दंसणेणं अइभद्दए विणीए अंतो २ य कलुसहियए मज्झत्थोवत्थिए य अल्लीण सोमपियदंसणे सुरूवे अमइलसगल परिहिए कालमियचम्म-उत्तरासंगरइयवत्थे दण्डकमण्डलुहत्थे जडामउडदित्तसिरए जण्णो-वइयगणेत्तिय मुंजमेहलावागलधरे हत्थकयकच्छभीए पियगंधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे संवरणावरणओवय(णड)णुप्पयणिलेसणीसु य संकामणि अभिओगपण्णत्ति-गमणीथंभणीसु य बहूसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे इट्ठे रामस्स य केसवस्स य पज्जुण्णपईवसंबअणिरुद्ध णिसढ उम्मुयसारणगयसुमुहदुम्मुहाईणं जायवाणं अद्धुट्ठाण कुमार कोडीणं हिययदइए संथवए कलहजुद्ध कोलाहलप्पिए भंडणाभिलासी बहूसु य समर सयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहं सदक्खिणं अणुगवेसमाणे असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसतेलोक्क बलगवगाणं आमंतेऊण तं भगवइं ए(प)क्कमणिं गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोण-मुहपट्टण-संवाहसहस्समंडियं थिमियमेइणीतलं वसुहं ओलोइंतो रम्मं हत्थिणाउरं उवागए पंडुरायभवणंसि अइवेगेण समोवइए।

शब्दार्थ - **कलुसहियए** - कलुषित हृदय-कलहप्रिय, **मज्झत्थोवत्थिए** - बाह्य रूप में माध्यस्थ्य भाव युक्त, **अल्लीण** - आह्लादप्रद, **अमइल** - निर्मल, **सगल** - सकल-अखंडित, **कालमियचम्म** - काले मृग का चर्म, **जण्णोवइय** - यज्ञोपवीत, **गणेत्तिय** - रुद्राक्ष माला, **मुंजमेहला** - मूंज की करधनी, **वागल** - वल्कल-वृक्ष की छाल, **हत्थकय** - हाथ में लिए हुए, **कच्छभीए** - कच्छपी नामक वीणा, **धरणिगोयरप्पहाणे** - आकाश गामिता के कारण पृथ्वी पर बहुत कम चलने वाले, **संवरण** - संवरणी-अपने आपको छिपाने की, **आवरण** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवरणी-दूसरे को आवृत (अन्तर्हित) करना, **ओवयण** - अवतरण-नीचे उतरने की, **उप्पयणि**-उत्पतनी-ऊँचे उड़ने की, **लेसणी** - श्लेषणी-व्रज लेप आदि की तरह संधान करने वाली, **संकामणि** - अन्य शरीर में संक्रमण-प्रवेश कराने वाली, **अभिओग** - अभियोग-स्वर्णादि बनाने की विद्या, **पण्णत्ति** - प्रज्ञप्ति अज्ञात अर्थ की बोधक, **गमणी** - यथेच्छ रूप में गमन सामर्थ्यप्रद, **थंभणी** - स्तंभन या स्तब्ध कर देने वाली, **विस्सुयजसे** - विश्रुतकीर्ति युक्त, **रामस्स** - बलदेव के, **भंडणाभिलासी** - झगड़ा (कजिया) कराने का शौक लिए हुए, **समरेसु**-युद्धों में, **संपराएसु** - संग्रामों में, बड़े युद्धों में, **सदक्खणं** - प्रतिक्षण, **असमाहिकारे**- झगड़ा करवा कर अशांति उत्पन्न करने वाले, **आमंतेऊण** - प्रयुक्त कर, **पक्कमणिं** - उत्कृष्ट गमन शक्तिप्रदा, **गगणगमणदच्छं** - आकाश गमन का सामर्थ्य देने वाली।

भावार्थ - तभी कच्छुल्ल नामक नारद वहाँ आए। वे देखने में बड़े भद्र और विनीत प्रतीत होते थे किन्तु भीतर में बड़े ही कलहप्रिय थे। मात्र बाहर से ही वे माध्यस्थ भाव दिखलाते थे। वे अपने अनुरागीजनों के लिए आह्लादप्रद, सौम्य और प्रिय थे, सुरूप थे। वे निर्मल, अखंडित, स्वच्छ वस्त्र धारण किए थे। काले मृग के चर्म को उन्होंने उत्तरीय के रूप में ले रखा था। उनके हाथ में दण्ड और कमंडलु थे। जटा रूपी मुकुट से उनका मस्तक देदीप्यमान था। उन्होंने यज्ञोपवतीत, रूद्राक्ष की माला, मूंज की मेखला और वल्कल-वृक्ष छाल-इन सबको धारण कर रखा था। उनके हाथ में कच्छपी संज्ञक वीणा थी। संगीत उन्हें प्रिय था। आकाश-गामिता के कारण भूमि पर बहुत कम चलते थे। वे संवरणी, आवरणी, अवतरणी, उत्पतनी, श्लेषणी, संक्रामणि, आभियोगिनी, प्रज्ञापिनी, गामनिकी, स्तंभनी आदि अनेक विद्याधरी विद्याओं में विश्रुत कीर्ति—विख्यात थे।

बलदेव, कृष्ण वासुदेव को इष्ट, प्रिय थे। प्रद्युम्न, प्रतीप, साम्ब, अनिरुद्ध, निषद्य, उन्मुख, सारण, गजसुकुमाल, सुमुख तथा दुर्मुख इत्यादि यादवों के साढे तीन करोड़ परिमित कुमारों के हृदयवल्लभ थे, इनके प्रशंसक थे। कलह, युद्ध एवं कोलाहल उन्हें सहज ही प्रिय थे। दूसरों को संकट में डालने की वे चाह लिए रहते थे। वे लड़ाई-झगड़े एवं संग्राम देखने के बड़े अनुरागी थे। वे चारों ओर क्षण-क्षण कलह कैसे हो, इसकी खोज में लगे रहते थे। इसीलिए वे तीनों लोकों में विशिष्ट बलशाली दर्शाहों के लिए असमाधिजनक थे, चित्त विक्षेपकारक थे। वे आकाश गमन में दक्षता प्रदान करने वाली भगवती प्रक्रमणी विद्या को प्रयुक्त कर आकाश में उड़े। आकाश तल को पार करते हुए वे सहस्रों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट-मंडब,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रोणमुख, पत्तन, संवाह आदि से सुशोभित पृथ्वी तल का अवलोकन करते हुए सुंदर हस्तिनापुर नगर में पहुँचे तथा राजा पाण्डु के महल में अत्यंत वेग पूर्वक समवसृत हुए–उतरे।

विवेचन - वैदिक एवं जैन परम्परा के अन्तर्गत पौराणिक कथा वाङ्मय में नारद एक ऐसे व्यक्ति के रूप में वर्णित हुआ है, जो अत्यंत कला मर्मज्ञ, विविध विलक्षण विद्याओं के पारगामी होने के साथ-साथ बहुत ही कलहप्रिय था। विभिन्न समकक्ष पक्षों में संघर्ष, वैमनस्य और झगड़ा पैदा करना उनका स्वभाव था। ऐसा करने में उसे बहुत आनंद आता था।

इस सूत्र में नारद के लिए **'कच्छुल्ल'** विशेषण का प्रयोग हुआ है। इस शब्द की गहराई में जाने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके मूल में 'कृच्छ्र' शब्द है। इसका अर्थ कष्ट या क्लेश होता है।

प्राकृत में ऋकार - अ, इ या उ में परिवर्तित हो जाता है। 'कच्छ' शब्द के 'कृ' में स्थित ऋकार का यहाँ अकार में परिवर्तन हुआ है। अर्थात् 'कृ' - क में बदला है। इसी प्रकार 'छ्र' में स्थित रकार का 'रलयोःसाम्यम्' के अनुसार ल हो जाने से इस सूत्र में लकार का द्वित्व परिलक्षित होता है।

उत्तरवर्ती प्राकृत एवं अपभ्रंश की प्रवृत्ति के अनुसार शब्द के अंतिम अकार का उकार हो जाता है। इस प्रकार 'छ' - 'छु' में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार 'कृच्छ्रं लातीतित कृच्छल' - जो कष्ट पैदा करता है, वह कृच्छ्रल कहा जाता है। पूर्वोक्त नियमों के अनुसार कृच्छ्रल का ही प्राकृत रूप **'कच्छुल्ल'** है, जिसकी अर्थ के साथ सर्वथा संगति है।

प्रस्तुत सूत्र में नारद द्वारा आकाश गमन करते हुए, ग्रामादि से परिपूर्ण वसुधा को देखने का उल्लेख हुआ है। यहाँ आए हुए विविध आबादी सूचक शब्द प्राचीन साहित्य में, विशेषतः प्राकृत साहित्य में प्रयुक्त होते रहे हैं, जो अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं। प्राचीन साहित्य के आधार पर उन सबका आशय इस प्रकार है -

ग्रामः- जहाँ विशेष कर कृषि जीवी पुरुष रहते थे तथा भूमि जोतने का राजस्व कर देना पड़ता था।

आकरः- वे स्थान जहाँ नमक आदि उत्पन्न होता था अथवा जिनके आस-पास खानें होती थीं और वहाँ के लोग उनके आधार पर आजीविका चलाते थे।

नगरः- अधिक आबादी युक्त वे स्थान-शहर जहाँ कृषिजीविता न होने के कारण राजस्व कर नहीं लगता था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खेटः- वे गांव जिनके चारों ओर धूल के परकोटे या चारदीवारियाँ होती थीं।

कर्बटः- गाँव और नगरों के बीच के छोटे आवास स्थान।

मडंबः- वे बस्तियाँ जिनके आस-पास गांव न हों, जो जंगलों में बसी हों।

द्रोणमुखः- वे नगर आदि स्थान, जो समुद्रों या नदियों के जलमार्ग से तथा स्थलमार्ग से जुड़े हों।

पत्तनः- बड़े नगर या बंदरगाह।

संवाहः- पहाड़ों की तलहटियों में आबाद गांव।

इनके अतिरिक्त आश्रम, निगम, सन्निवेश आदि स्थानों का भी आगम वाङ्मय में विभिन्न आबादियों के लिए प्रयोग होता रहा है।

(१४०)

तए णं से पंडू राया कच्छुल्लणारयं एज्जमाणं पासइ २ त्ता पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए य देवीए सद्धिं आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता कच्छुल्लणारयं सत्तट्ठपयाइं पच्चुग्गच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ।

भावार्थ - पांडुराजा ने कच्छुल्लनारद को आते हुए देखा। वे पांचों पाण्डवों और कुंती देवी सहित आसन से उठे। उठकर सात-आठ कदम उनके सामने गए। तीन बार उनकी आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, उनको वंदन, नमन किया। वैसा कर उन्हें उत्तम आसन दिया।

(१४१)

तए णं से कच्छुल्लणारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइ २ त्ता पंडुरायं रज्जे जाव अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ। तए णं से पंडुराया कोंतीदेवी पंच य पंडवा कच्छुल्लणारयं आढंति जाव पज्जुवासंति।

शब्दार्थ- **उदगपरिफोसियाए** - पानी छिड़क कर, **पच्चुत्थयाए** - बिछाए गए, **भिसियाए**- आसन विशेष।

भावार्थ - कच्छुल्ल नारद जल छिड़क कर, डाभ बिछा कर, अपने आसन पर बैठे। उन्होंने पांडु राजा से राज्य यावत् अंतःपुर का कुशल क्षेम पूछा। पांडु राजा, रानी कुंती एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पांचों पाण्डवों ने कच्छुल्ल नारद का आदर-सत्कार किया यावत् सभक्ति उनके सान्निध्य में स्थित हुए।

(१४२)

तए णं सा दोवई देवी कच्छुल्लणारयं अस्संजयं अविरयं अप्पडिहय पच्चक्खायपावकम्मं - त्तिकट्टु णो आढाइ णो परियाणइ णो अब्भुट्ठेइ णो पज्जुवासइ।

भावार्थ - द्रौपदी देवी ने जब यह देखा कच्छुल्ल नारद असंयती है, अविरत है। न इसने पूर्वकृत पाप कर्मों का प्रायश्चित्त और न वर्तमान में प्रत्याख्यान ही किया है। यह सोचकर न उसका आदर किया, न उसके आगमन को महत्त्व दिया और न खड़ी हुई और न पर्युपासना ही की।

द्रौपदी पर कुपित

(१४३)

तए णं तस्स कच्छुल्लणारयस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था - अहो णं दोवई देवी रूवेण य जाव लावण्णेण य पंचहिं पंडवेहिं अणुब(वत्थ)द्धा समाणी ममं णो आढाइ जाव णो पज्जुवासइ। तं सेयं खलु मम दोवईए देवीए विप्पियं करित्तए - त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता पंडुय रायं आपुच्छइ २ त्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते यावि होत्था।

शब्दार्थ - विप्पियं - विप्रिय-अनिष्ट।

भावार्थ - तब कच्छुल्ल नारद के मन में ऐसा चिंतन, विचार, भाव संकल्प उत्पन्न हुआ-यह द्रौपदी देवी रूप यावत् यौवन से युक्त है। पाँचों पांडवों के साथ स्नेहाबद्ध, सुख भोगासक्त है। इससे इसको अभिमान हो गया है, इसलिए इसने न तो मेरा आदर किया और न मेरी पर्युपासना ही की। अतः यही अच्छा होगा, मैं इसका अनिष्ट करूँ। यों उन्होंने मन ही मन विचार किया। पांडु राजा से विदा होने की अनुमति लेकर उन्होंने उत्पतनी विद्या का आह्वान किया और उत्कृष्ट यावत् विद्याधर गति से लवण समुद्र के बीचोंबीच होते हुए पूर्व दिशा की ओर चल पड़े।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारद का षडयंत्र

(१४४)

तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धदाहिणड्ढभरहवासे अमरकंका णाम रायहाणी होत्था। तत्थ णं अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभे णामं राया होत्था महया हिमवंत वण्णओ। तस्स णं पउमणाभस्स रण्णो सत्त देवीसयाइं ओरोहे होत्था। तस्स णं पउमणाभस्स रण्णो सुणाभे णामं पुत्ते जुवराया यावि होत्था। तए णं से पउमणाभे राया अंतोअंतेउरंसि ओरोहसंपरिवुडे सीहासणवरगए विहरइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय धातकीखण्ड नामक द्वीप में, पूरब दिशा में, दक्षिणार्द्ध भरत खण्ड में, अमरकंका (अपरकंका) नामक राजधानी थी। उसके राजा का नाम पद्मनाभ था। वह महाहिमवंत पर्वत की तरह दृढ़ता, सारवत्ता आदि लिए हुए था। उसका वर्णन विस्तृत औपपातिक सूत्र के अनुसार योजनीय है।

राजा पद्मनाभ के अंतःपुर में सात सौ रानियाँ थीं। पद्मनाभ के पुत्र का नाम सुनाभ था, जो युवराज के पद पर अभिषिक्त था। यह तब का प्रसंग है, जब राजा पद्मनाभ अपने अंतःपुर में रानियों से घिरा हुआ सिंहासनासीन था।

(१४५)

तए णं से कच्छुल्लणारए जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउमणाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पउमणाभस्स रण्णो भवणंसि झत्तिवेगेणं समोवइए। तए णं से पउमणाभे राया कच्छुल्लणारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ।

शब्दार्थ - झत्ति - अतिशीघ्र।

भावार्थ - कच्छुल्ल नारद अमरकंका राजधानी में पहुँचे, जहाँ पद्मनाभ राजा था। वे राजमहल में तीव्र गति से समवसृत हुए, आकाश से नीचे उतरे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१४६)

तए णं से कच्छुल्लणारए उदयपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइ जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ।

भावार्थ - कच्छुल्ल नारद जलछिड़क कर दर्भ बिछाकर, उस पर अपना आसन लगाकर बैठे यावत् उसने राजा से कुशल क्षेम पूछा।

(१४७)

तए णं से पउमणाभे राया णियगओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी-तुब्भं देवाणुप्पिया! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिंचि देवाणुप्पिया! एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए णं मम ओरोहे?

भावार्थ - फिर राजा पद्मनाभ जो अपने अंतःपुर से, अंतःपुर की रानियों के सौंदर्य से विस्मित था, कच्छुल्लनारद से यों बोला - देवानुप्रिय! आप बहुत से गाँवों यावत् घरों में प्रविष्ट होते रहे हैं। क्या आपने कहीं भी ऐसी सुंदर रानियाँ देखी हैं जैसी मेरे अंतःपुर में हैं?

(१४८)

तए णं से कच्छुल्लणारए पउमणाभेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ २ त्ता एवं वयासी - सरिसे णं तुमं पउमणाभा! तस्स अगडदद्दुरस्स। के णं देवाणुप्पिया! से अगडदद्दुरे? एवं जहा मल्लिणाए। एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबू दीवे २ भारहेवासे हत्थिणाउरे णयरे दुपयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूवेण य जाव उक्किट्ठसरीरा। दोवईए णं देवीए छिण्णस्सवि पायंगुट्ठयस्स अयं तव ओरोहे सइमंपि कलं ण अग्घइ-त्तिकट्टु पउमणाभं आपुच्छइ० जाव पडिगए।

भावार्थ - राजा पद्मनाभ द्वारा यों कहे जाने पर कच्छुल्ल नारद मुस्कुरा कर बोले - पद्मनाभ! तुम कुएं के मेंढक के समान हो।

राजा बोला - कौनसा कुएं का मेंढक? यहाँ मल्ली अध्ययन में आया हुआ कुएं के मेंढक का प्रसंग योजनीय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारद बोले - जंबूद्वीप में, भारत वर्ष में, हस्तिनापुर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा, राजा पाण्डु की पुत्रवधू, पाँच पांडवों की भार्या रानी द्रौपदी रूप यावत् दैहिक सौन्दर्य, लावण्य में अत्यंत उत्कृष्ट है।

द्रौपदी देवी के पैर के कटे हुए अंगूठे के सौंवे भाग जितना भी तुम्हारे अंतःपुर की रानियों का सौंदर्य नहीं है। यों कह कर नारद ने पद्मनाभ से विदा-ली यावत् गगन मार्ग से प्रस्थान कर गए।

(१४९)

तए णं से पउमणाभे राया कच्छुल्लणारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म दोवईए देवीए रूवे य ३ मुच्छिए गढिए लुद्धे (गिद्धे) अज्झोववण्णे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पोसहसालं जाव पुव्वसंगइयं देवं एवं वयासी- एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबूद्दीवे २ भारहे वासे हत्थिणाउरे जाव उक्किट्ठसरीरा, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! दोवइं देविं इहमाणियं।

भावार्थ - राजा पद्मनाभ कच्छुल्लनारद से यों सुनकर देवी द्रौपदी के लावण्य में मूर्च्छित, गृद्ध एवं लुब्ध हो गया। वह उसके मन में समा गई। वह अपनी पौषधशाला में आया यावत् उसने अपने पूर्वभव के साथी देव का स्मरण किया। वह देव वहाँ आविर्भूत (प्रकट) हुआ। राजा ने देव से कहा - देवानुप्रिय! जंबूद्वीप में, भारतवर्ष में, हस्तिनापुर में यावत् परम रूप लावण्य युक्त रानी द्रौपदी देवी है। मैं चाहता हूँ आप उसे यहां ले आएं।

(१५०)

तए णं पुव्वसंगइए देवे पउमणाभं एवं वयासी - णो खलु देवाणुप्पिया! एय भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं दोवई देवी पंच पंडवे मोत्तूण अण्णेणं पुरिसेणं सद्धिं ओरालाइं जाव विहरिस्सइ, तहावि य णं अहं तव पियट्ठयाए दोवइं देवि इहं हव्वमाणेमि-त्तिकट्टु पउमणाभं आपुच्छइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - पियट्ठयाए - प्रिय कार्य करने हेतु।

भावार्थ - तब पूर्वभव के साथी देव ने राजा पद्मनाभ से कहा - देवानुप्रिय! न कभी ऐसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है, न होने योग्य है और न होगा ही कि द्रौपदी देवी पाँच पांडवों को छोड़कर अन्य के पास विपुल सुखभोग करती हुई रह सके। तथापि मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करने हेतु देवी द्रौपदी को शीघ्र ही ले आता हूँ। यों कहकर वह देव उत्कृष्ट यावत् तीव्र-अतिवेग युक्त देवगति से लवण समुद्र के बीचोंबीच चलता हुआ हस्तिनापुर जाने को उद्यत हुआ।

देव द्वारा द्रौपदी का अपहरण

(१५१)

तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे णयरे जुहिट्ठिल्ले राया दोवईए देवीए सद्धिं उप्पिं आगासतलंसि सुहप्पसुत्ते यावि होत्था।

भावार्थ - उस काल, उस समय राजा युधिष्ठिर महल के छत की अगासी पर द्रौपदी देवी के साथ सुखपूर्वक सोए हुए थे।

(१५२)

तए णं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्ठिल्ले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ २ त्ता दोवइं देविं गिण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव पउमणाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइं देविं ठावेइ २ त्ता ओसोवणिं अवहरइ २ त्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! मए हत्थिणाउराओ दोवई देवी इह हव्वमाणीया तव असोगवणियाए चिट्ठइ। अओ परं तुमं जाणसि - त्तिकट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

शब्दार्थ - **ओसोवणियं** - अवस्वापिनी विद्या।

भावार्थ - तब राजा पद्मनाभ का पूर्वभव का साथी देव, जहाँ युधिष्ठिर और द्रौपदी देवी थे, वहाँ आया। आकर अवस्वापिनी विद्या द्वारा द्रौपदी को गहरी नींद में सुला दिया। उसे वहाँ से उठाया और उत्कृष्ट यावत् तीव्र देवगति से अमरकंका में, पद्मनाभ राजा के भवन में पहुँच गया। वहाँ भवनवर्ती अशोक वाटिका में द्रौपदी को रख दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवस्वापिनी विद्या को वापस खींच लिया। वैसा कर वह राजा पद्मनाभ के पास पहुँचा और बोला - देवानुप्रिय! मैं हस्तिनापुर से द्रौपदी देवी को यहाँ ले आया हूँ। वह आपकी अशोकवाटिका में स्थित है। इससे आगे तुम जानो। यों कहकर वह देव जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था, उसी ओर चला गया।

(१५३)

तए णं सा दोवई देवी तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी - णो खलु अम्हं एसे सए भवणे णो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया। तं ण णज्जइ णं अहं केणई देवेण वा दाणवेण वा किंपुरिसेण वा किण्णरेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा अण्णस्स रण्णो असोगवणियं साहरिय-त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

शब्दार्थ - अपच्चभिजाणमाणी - अपरिचित जानती हुई।

भावार्थ - थोड़ी देर बाद द्रौपदी देवी जागी। वह भवन और अशोक वाटिका उसे परिचित नहीं जान पड़े। वह बोली - यह मेरा अपना भवन और अशोक वाटिका नहीं है। न मालूम किसी देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर, महोरग-नाग या गंधर्व द्वारा किसी दूसरे राजा की अशोक वाटिका में लाई गई हूँ। यह विचार कर वह मन ही मन बहुत दुःखित हुई यावत् आर्त्तध्यान-चिंता करने लगी।

पद्मनाभ द्वारा काम-भोग का आह्वान

(१५४)

तए णं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकार विभूसिए अंते उरपरियालं संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दोवतीं देवीं ओहय० जाव झियायमाणीं पासइ २ त्ता एवं वयासी - किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहय जाव झियाहि? एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! मम पुव्वसंगइएणं देवेणं जंबुद्दीवाओ २ भारहाओ वासाओ हत्थिणापुराओ णयराओ जुहिट्ठिल्लस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, तं माणं तुमं देवाणुप्पिए! ओहय० जाव झियाहि, तुमं णं मए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं जाव विहराहि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - राजा पद्मनाभ ने स्नान किया यावत् वह सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हुआ। अंतःपुर की परिचारिकाओं से घिरा हुआ वह, जहाँ द्रौपदी थी, वहाँ अशोक वाटिका में आया। द्रौपदी देवी को खिन्न, उद्विग्न यावत् आर्त्तध्यान-चिंता में संलग्न देखा। तब वह उससे बोला - देवानुप्रिये! तुम मन में उद्विग्न, विषण्ण होकर यावत् चिंता कर रही हो? देवानुप्रिये! मेरे पूर्व जन्म के साथी देव द्वारा जंबू द्वीप, भारतवर्ष, हस्तिनापुर नगर से राजा युधिष्ठिर के भवन से यहाँ लाई गई हो।

देवानुप्रिये! तुम मन में दुःखित मत बनो यावत् चिंता मत करो। मेरे साथ तुम प्रचुर भोगों को भोगते हुए सुखपूर्वक रहो।

शील रक्षण की युक्ति

(१५५)

तए णं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे २ भारहे वासे बारवईए णयरीए कण्हे णामं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं जइ णं से छण्हं मासाणं ममं कूवं णो हव्वमागच्छइ तए णं अहं देवाणुप्पिया! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणणिद्देसे चिट्ठिस्सामि।

शब्दार्थ - कूवं - खोज करने हेतु।

भावार्थ - देवी द्रौपदी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा - जंबूद्वीप भरत क्षेत्र के अन्तर्गत, द्वारका नगरी में मेरे पति के भ्राता कृष्ण वासुदेव रहते हैं। यदि वे छह महिने तक मेरी खोज करने हेतु, मुझे छुड़ाकर वापस ले जाने हेतु यहाँ नही आए तो देवानुप्रिय! जैसा तुम कहोगे, मैं तुम्हारे आदेशानुरूप, वचन और निर्देश में रहूंगी, उसका पालन करूंगी।

(१५६)

तए णं से पउमणाभे दोवईए एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता दोवइं देविं कण्णंतेउरे ठवेइ। तए णं सा दोवई देवी छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिल परिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

भावार्थ - पद्मनाभ ने देवी द्रौपदी के इस कथन को स्वीकार किया। कन्याओं के अंतःपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में उसे रख दिया। देवी द्रौपदी निरंतर बेले-बेले के उपवास आयंबिल से पारणा रूप तपश्चरण से आत्मानुभावित होती हुई रहने लगी।

विवेचन - द्रौपदी, छह महीने तक श्रीकृष्ण यदि लेने न आएं तो पद्मनाभ की आज्ञा मान्य करने की तैयारी बतलाती है। इस तैयारी के पीछे द्रौपदी की मानसिक दुर्बलता या चारित्रिक शिथिलता है, ऐसा किसी को आभास हो सकता है। किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। द्रौपदी को कृष्ण के असाधारण सामर्थ्य पर पूरा विश्वास है। यह जानती है कि कृष्णजी आए बिना रह नहीं सकते। इसी कारण उसने पांडवों का उल्लेख न करके श्रीकृष्ण का उल्लेख किया। उसकी चारित्रिक दृढ़ता में संदेह करने का कोई कारण नहीं है। सूत्रकार ने देवता के मुख से भी यह कहलवा दिया है कि द्रौपदी पाण्डवों के सिवाय अन्य पुरुष की कामना त्रिकाल में भी नहीं कर सकती। वह तो किसी युक्ति से श्रीकृष्ण के आने तक समय निकालना चाहती थी। उसकी युक्ति काम कर गई।

उधर पद्मनाभ ने बड़ी सरलता से द्रौपदी की बात मान्य कर ली। इसका कारण उसका यह विश्वास रहा होगा कि कहाँ जम्बूद्वीप और कहाँ धातकीखण्डद्वीप? दोनों द्वीपों के बीच दो लाख योजन के महान् विस्तार वाला लवणसमुद्र है। प्रथम तो श्रीकृष्ण को पता ही नहीं चलेगा कि द्रौपदी कहाँ है? पता भी चल गया तो उनका यहाँ पहुँचना असंभव है।

अपने इस विश्वास के कारण पद्मनाभ ने द्रौपदी की शर्त आनाकानी किए बिना स्वीकार कर ली। इसके अतिरिक्त कामान्ध पुरुष की विवेकशक्ति भी नष्ट हो जाती है।

द्रौपदी की खोज

(१५७)

तए णं से जुहिट्ठिल्ले राया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धे समाणे दोवइं देविं पासे अपासमाणो सयणिज्जाओ उट्ठेइ २ त्ता दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ २ त्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा अलभमाणे जेणेव पंडू राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पंडू रायं एवं वयासी।

भावार्थ - द्रौपदी का हरण होने के थोड़ी देर पश्चात् राजा युधिष्ठिर जगा। द्रौपदी देवी को अपने पास नहीं देखा तो उठा। सब तरफ उसकी मार्गण, गवेषण-भलीभांति खोज की। परंतु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रौपदी की न तो कुछ आवाज, छींक या प्रवृत्ति ही उसे ज्ञात हुई। वह राजा पांडु के पास आया और उनसे इस प्रकार कहा।

(१५८)

तए ण स पड राया काडुबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - [illegible] [illegible] दोवई देवी ण णज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किंपुरिसेण वा किण्णरेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा णिया वा अवक्खित्ता वा? तं इच्छामि णं ताओ! दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं क(रित्तए)यं।

भावार्थ - तात! मैं महल की छत (अगासी)पर सो रहा था। मेरे पास से द्रौपदी देवी को न मालूम कौन देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर, महोरग (नाग) या गंधर्व हरण कर ले गया। न जाने कहीं उसको अवक्षिप्त-खड्डे, कुएं में डाल दिया। तात! मैं चाहता हूँ, द्रौपदी देवी की सब ओर खोज कराई जानी चाहिए।

(१५९)

तए णं से पंडू राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे णयरे सिंघाडग तियचउक्कचच्चर-महापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह - एवं खलु देवाणुप्पिया! जुहिट्ठिल्लस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किंपुरिसेण वा किण्णरेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा णिया वा आक्खित्ता वा, तं जो णं देवाणुप्पिया! दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवित्तिं वा परिकहेइ तस्स णं पंडू राया विउलं अत्थसंपयाणं (दाणं) दलयइ-त्तिकट्टु घोसणं घोसावेह २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थ - तब राजा पांडु ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! तुम जाओ एवं तिराहे, चौराहे, चौक, चत्वर, महापथ, बड़े रास्ते, छोटे रास्ते इत्यादि सभी जगह उच्च स्वर से यह घोषणा करते हुए कहो - देवानुप्रियो! महल की छत पर राजा युधिष्ठिर सोया

Jain Education International 	For Personal & Private Use Only 	www.jainelibrary.org

हुआ था। उसके पास से देवी द्रौपदी को न जाने कोई देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर उठाकर ले गया हो, उसे कहीं फेंक दिया हो।

देवानुप्रियो! द्रौपदी देवी का शब्द, छींक या प्रवृत्ति के संबंध में जो कोई सूचित करेगा, उसे राजा पाण्डु प्रचुर धन देगा, ऐसी घोषणा करवाकर मुझे अवगत कराओ।

कौटुंबिक पुरुषों ने राजाज्ञानुसार वैसा ही किया तथा वापिस सूचित किया।

(१६०)

तए णं से पंडूराया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभमाणे कोंतीं देवीं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं णयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं णिवेदेहि। कण्हे णं परं वासुदेवे दोवईए देवीए मग्गणगवेसणं करेज्जा अव्वहा ण णज्जइ दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवित्तिं वा उवलभेज्जा।

भावार्थ - राजा पांडु जब द्रौपदी देवी के संबंध में कहीं भी उसके शब्द यावत् प्रवृत्ति आदि के संबंध में सूचना नहीं प्राप्त कर सका तो कुंती देवी को बुलाया और कहा - देवानुप्रिये! तुम द्वारवती जाओ एवं कृष्ण वासुदेव से यह निवेदन करो कि वे द्रौपदी देवी का मार्गण-गवेषण करे अन्यथा उसके शब्द, छींक, प्रवृत्ति आदि कुछ भी पाना अशक्य होगा।

कुंती द्वारा सहायता हेतु श्रीकृष्ण से अनुरोध

(१६१)

तए णं सा कोंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणेइ २ त्ता ण्हाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता कुरुजणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुरट्ठाजणवए जेणेव बारवई णयरी जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! जेणेव (बारवई णं०) बारवइं णयरिं अणुपविसह २ त्ता कण्हं वासुदेवं करयल० एवं वयह-एवं खलु सामी! तुब्भं पिउच्छा कोंती देवी हत्थिणाउराओ णयराओ इहं हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **पिउच्छा** - पितृस्वसा (पिता की बहन-बूआ)

भावार्थ - राजा पांडु द्वारा यों कहे जाने पर कुंती देवी ने उनका कथन स्वीकार किया। वह स्नान, नित्य नैमित्तिक मांगलिक कर्म संपादित कर, हाथी पर सवार हुई और हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच होती हुई, रवाना हुई। कुरु जनपद के बीच से गुजरती हुई वह सौराष्ट्र में द्वारवती नगरी के निकट पहुँची। वहाँ के बहिर्वर्ती उद्यान में पहुँची, हाथी से नीचे उतरी। कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा-देवानुप्रियो! द्वारका नगरी में कृष्ण वासुदेव के निवास स्थान पर जाओ। उनसे हाथ जोड़, मस्तक पर अंजलि बाँधे, यह निवेदन करो कि स्वामी! आपकी भुआ कुंती देवी हस्तिनापुर नगर से यहाँ शीघ्रतापूर्वक आई है। आपसे भेंट करना चाहती है।

(१६२)

तए णं से कोडुंबियपुरिसा जाव कहेंति। तए णं कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय-पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे हत्थिखंधवरगए हयगय० बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोंती देवी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ २ त्ता कोंतीए देवीए पायग्गहणं करेइ २ त्ता कोंतीए देवीए सद्धिं हत्थिखंधं दुरुहइ २ त्ता बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सयं गिहं अणुप्पविसइ।

भावार्थ - तत्पश्चात् कौटुंबिक पुरुषों ने यावत् कृष्ण वासुदेव से कुंती देवी का संदेश कहा। यह सुनकर कृष्ण वासुदेव प्रसन्नता पूर्वक हाथी पर सवार हुए। द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होते हुए, जहाँ कुंती देवी रुकी थी, वहाँ आए। आकर हाथी से नीचे उतरे। कुंती देवी का चरण स्पर्श किया। फिर कुंती देवी के साथ हाथी पर सवार हुए। द्वारका नगरी के बीच से होते हुए, अपने प्रासाद में आए।

(१६३)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतीं देविं ण्हायं कयबलिकम्मं जिमियभुत्तुत्तरागयं जाव सुहासणवरगयं एवं वयासी - संदिसउ णं पिउच्छा! किमागमणपओयणं?

भावार्थ - जब कुंती देवी ने स्नान, नित्य मांगलिक कर्म, भोजन आदि किया यावत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुखासनासीन हुई, तब कृष्ण वासुदेव ने उनसे कहा - भुआ! कहो आपका यहाँ किस प्रयोजन से आगमन हुआ?

(१६४)

तए णं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - एवं खलु पुत्ता! हत्थिणाउरे णयरे जुहिट्ठिल्लस्स रण्णो आगासतलए सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ केणइ अवहिया जाव अवक्खित्ता वा, तं इच्छामि णं पुत्ता! दोवईए देवीए मग्गणगवेसणं कयं।

भावार्थ - तब कुंती देवी ने कृष्ण वासुदेव से कहा - पुत्र! हस्तिनापुर नगर में, महल के ऊपर, अगासी में सुखपूर्वक सोए हुए युधिष्ठिर के पास से द्रौपदी देवी का न जाने किसने अपहरण कर लिया, कौन ले गया, उसे कहाँ डाल दिया? पुत्र! मैं चाहती हूँ, तुम द्रौपदी देवी का मार्गण-गवेषण करो।

(१६५)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतीं पिउच्छिं एवं वयासी - जं णवरं पिउच्छा! दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ वा अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं (देविं) साहत्थिं उवणेमि - त्तिकट्टु कोंतीं पिउच्छिं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव ने अपनी भुआ कुंती से इस प्रकार कहा - भुआजी! मैं और अधिक क्या बतलाऊँ, द्रौपदी देवी का कहीं शब्द यावत् प्रवृत्ति आदि के रूप में कहीं भी पता चल पाए तो मैं चाहे वह पाताल में हो, भवन में हो, अर्द्ध भरत क्षेत्र में हो - जहाँ कहीं हो उन सभी स्थानों से मैं द्रौपदी को हाथों-हाथ ले आऊँगा। यों आश्वस्त कर उन्होंने कुंती देवी का सत्कार-सम्मान किया यावत् विदा किया।

(१६६)

तए णं सा कोंती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस प्रकार वासुदेव कृष्ण द्वारा विदा किए जाने पर कुंती देवी जिस ओर से आई थी, उसी ओर प्रस्थान कर गई।

(१६७)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवइं णयरिं एवं जहा पंडू तहा घोसणं घोसावेइ जाव पच्चप्पिणंति पंडुस्स जहा।

भावार्थ - इस प्रकार वासुदेव कृष्ण ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाकर आदेश दिया - देवानुप्रियो! तुम द्वारवती नगरी में उसी प्रकार घोषणा करवाओ, जिस प्रकार राजा पांडु ने हस्तिनापुर में करवाई थी।

कौटुंबिक पुरुषों ने वैसा ही किया यावत् कृष्ण वासुदेव को उसी प्रकार सूचित किया, जिस प्रकार हस्तिनापुर में पांडु को किया गया था।

(१६८)

तए णं से कण्हे वासुदेवे अण्णया अंतो अंतेउरगए ओरोहे जाव विहरइ। इमं च णं कच्छुल्लणारए जाव समोवइए जाव णिसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ।

भावार्थ - तदनंतर किसी समय कृष्ण वासुदेव अंतःपुर में रानियों के साथ यावत् सुखपूर्वक स्थित थे। उसी समय कच्छुल्लनारद समवसृत हुए यावत् गगनमार्ग से वहाँ उतरे यावत् वासुदेव कृष्ण के समीप अपनी विधि से आसनासीन हुए तथा कृष्ण वासुदेव से कुशल समाचार पूछे।

(१६९)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं णारयं एवं वयासी - तुमं णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव अणुपविससि, तं अत्थियाइं ते कहिंचि दोवईए देवीए सुई वा जाव उवलद्धा? तए णं से कच्छुल्लणारए कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! अण्णया धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धं दाहिणड्ढभरहवासं अवरकंकारायहाणिं गए, तत्थ णं मए पउमणाभस्स रण्णो भवणंसि दोवई देवी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जारिसिया दिट्ठपुव्वा यावि होत्था। तए णं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी- तुब्भं चेव णं देवाणुप्पिया! एवं पुव्वकम्मं। तए णं से कच्छुल्लणारए कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

भावार्थ - तब कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से कहा - देवानुप्रिय! आप बहुत से ग्राम यावत् नगर आदि में जाते रहते हैं। कहीं आपने द्रौपदी देवी का कोई शब्द यावत् प्रवृत्ति, तद्विषयक कोई जानकारी प्राप्त की।

कच्छुल्ल नारद ने वासुदेव से यों कहा - एक बार धातकी खण्ड द्वीप में, पूर्व दिशा के दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में, अपरकंका नामक राजधानी में जाने का प्रसंग बना। तब मैंने राजा पद्मनाभ के भवन में द्रौपदी देवी जैसी नारी को देखा।

तब कृष्ण वासुदेव कच्छुल्ल नारद से बोले - देवानुप्रिय! सर्वप्रथम आपने ही मुझे द्रौपदी के संबंध में सूचना दी है। और देवानुप्रिय! यह आपकी ही करतूत जान पड़ती है।

कृष्ण वासुदेव द्वारा यों कहे जाने पर - नारद ने उत्पतनी विद्या का आह्वान किया और आकाश में उड़ते हुए जिस दिशा से आए थे, उस ओर चले गए।

द्रौपदी के छुटकारे का सफल प्रयास

(१७०)

तए णं से कण्हे वासुदेवे दूयं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरं पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं णिवेदेहि - एवं खलु देवाणुप्पिया! धायइसंडे दीवे पुरच्छिमद्धे अवरकंकाए रायहाणीए पउमणाभभवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती उवलद्धा। तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरत्थिमवेयालीए ममं पडिवालेमाणा चिट्ठंतु।

भावार्थ - तदनंतर कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया उससे कहा - देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर जाओ और राजा पांडु को यह निवेदन करो कि धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में, अपरकंका राजधानी में, पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी के होने का पता चला है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए चतुरंगिणी सेना से घिरे हुए पाँचों पांडव लवण समुद्र के पूर्व दिशावर्ती तट पर मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरें।

(१७१)

तए णं से दूए जाव भणइ (जाव) पडिवालेमाणा चिट्ठइ। तेवि जाव चिट्ठंति।

भावार्थ - दूत ने हस्तिनापुर जाकर यावत् कृष्ण वासुदेव का संदेश दिया। पाँचों पांडवों को प्रतीक्षा करने को कहा। पाँचों पांडव यावत् लवण समुद्र के तट पर जाकर प्रतीक्षा करने लगे।

(१७२)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सण्णाहियं भेरिं तालेह। तेवि तालेंति।

शब्दार्थ - **सण्णाहियं** - सैनिकों को युद्ध हेतु सन्नद्ध होने की सूचक।

भावार्थ - फिर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! सान्नाहिक भेरी बजाओ। आदेशानुसार उन्होंने, उसे बजाया।

(१७३)

तए णं तीसे सण्णाहियाए भेरीए सद्दं सोच्चा समुद्दविजय पामोक्खा दस दसारा जाव छप्पण्णं बलवयसाहस्सीओ सण्णद्धबद्ध जाव गहिया उहपहरणा अप्पेगइया हयगया (अप्पेगइया) गयगया जाव वग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव वद्धावेंति।

भावार्थ - सान्नाहिक भेरी का शब्द सुनकर समुद्रविजय आदि दश दशार्ह यावत् छप्पन हजार बलिष्ठ योद्धा कवच बद्ध होकर यावत् अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हुए। उनमें कई अश्वारूढ हुए यावत् विशाल सुभट समूहों से घिरे हुए सुधर्मा सभा में कृष्ण वासुदेव के निकट आए यावत् कृष्ण वासुदेव को मस्तक पर अंजलि बांधे प्रणाम कर यावत् वर्धापित किया।

(१७४)

तए णं से कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरगए सकोरेंट मल्लदामेणं छत्तेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धारिज्जमाणेणं सेयवर० हयगय० महया भडचडगरपहकरेणं बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ० जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओ मिलइ २ त्ता खंधावारणिवेसं करेइ २ त्ता पोसहसालं अणुप्पविसइ २ त्ता सुट्ठियं देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव हाथी पर सवार हुए। कोरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र उन पर तना था। श्वेत चँवर डुलाए जा रहे थे। वे घोड़े, हाथी, रथ तथा पदाति सहित अनेकानेक बड़े बड़े योद्धाओं से घिरे हुए द्वारका नगरी के बीचो-बीच होते हुए निकले। लवण समुद्र के पूर्वी तट पर पहुँचे। वहाँ पांच पांडवों के साथ मिले, एकत्र हुए, उन्होंने पड़ाव डाले। ऐसा कर पौषधशाला में प्रविष्ट हुए तथा लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव का मन में स्मरण करने लगे।

देव सहायता से समुद्र पार

(१७५)

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिओ जाव आगओ - भण देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं। तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! दोवई देवी जाव पउमणाभस्स भवणंसि साहरिया, तण्णं तुमं देवाणुप्पिया! मम पंचहिं पंडवेहि सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवण समुद्दे मग्गं वियरेहि जण्णं अहं अवरकंका रायहाणिं दोवईए कूवं गच्छामि।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव के तेले की तपस्या पूर्ण होने पर सुस्थित देव उनके समक्ष उपस्थित हुआ यावत् वह बोला - देवानुप्रिय! कहें, मेरे द्वारा क्या करणीय है—मैं आपके लिये क्या करूं?

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से कहा - देवानुप्रिय! देवी द्रौपदी का हरण हुआ है यावत् वह पद्मनाभ राजा के भवन में है। देवानुप्रिय! तुम पांच पांडवों के साथ मुझे छह रथ सहित लवण समुद्र में मार्ग दो, जिससे मैं द्रौपदी देवी की खोज में अपरकंका राजधानी में जा सकूं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१७६)

तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - किण्हं देवाणुप्पिया! जहा चेव पउमणाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणाउरं साहरामि उदाहु पउमणाभं रायं सपुरबलवाहणं लवण समुद्दे पक्खिवामि?

भावार्थ - तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्वभव के साथी देव ने द्रौपदी देवी का हस्तिनापुर से हरण कर पद्मनाभ राजा के यहाँ पहुँचा दिया। क्या मैं उसी तरह द्रौपदी देवी को धातकीखण्ड द्वीप-भरत क्षेत्र से यावत् वापस हस्तिनापुर पहुँचा दूँ? अथवा सेना, वाहन सहित राजा पद्मनाभ को लवण समुद्र में फेंक दूँ।

(१७७)

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देव एवं वयासी - मा णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव साहराहि, तुमं णं देवाणुप्पिया! मम लवण समुद्दे पंचहिं पंडहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं मग्गं वियराहि, सयमेव णं अहं दोवईए कूवं गच्छामि।

भावार्थ - तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से यों कहा - देवानुप्रिय! तुम यावत् द्रौपदी देवी का संहरण मत करो- उसे वापस हस्तिनापुर मत पहुँचाओ। तुम तो केवल छः रथ सहित पाँच पांडवों को और मुझे लवण समुद्र में जाने का रास्ता दे दो। मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को खोज कर वापस ले आऊँगा।

(१७८)

तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - एवं होउ। पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवण समुद्दे मग्गं वियरइ।

भावार्थ - तब सुस्थित देव ने कहा - ऐसा ही होगा। फिर कृष्ण वासुदेव एवं पाँचों पाण्डवों को छह रथों सहित लवण समुद्र में जाने का मार्ग दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा पद्मनाभ को चुनौती

(१७९)

तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणी सेणं पडिविसज्जेइ २ त्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवण मुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ २ त्ता जेणेव अवरकंका रायहाणी जेणेव अवरकंकाए रायहाणीए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता दारुयं सारहिं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी -

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव ने चतुरंगिणी सेना को वापस लौटाया। पाँच पांडवों एवं स्वयं रथारूढ होकर, लवण समुद्र के बीचोंबीच होते हुए अमरकंका राजधानी पहुँचे। बहिरवर्ती मुख्य उद्यान में ठहरे। कृष्ण वासुदेव ने अपने सारथी दारूक को बुलाया और कहा।

(१८०)

गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! अवरकंकारायहाणिं अणुप्पविसाहि २ त्ता पउमणाभस्स रण्णो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामेहि तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुद्धे कुविए चंडिक्किए एवं व० हं भो पउमणाभा! अपत्थिय पत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्ण चाउद्दसा सिरीहिरिधीपरिवज्जिया! अज्ज ण भवसि किण्णं तुमं ण याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वमाणमाणे? तं एयमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं देविं कण्हस्स वासुदेवस्स अहव णं जुद्धसज्जे णिग्गच्छाहि एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए।

भावार्थ - देवानुप्रिय! तुम अमरकंका राजधानी में जाओ। राजा पद्मनाभ के पादपीठ को अपने पैर से अवक्रांत करो - ठोकर मारो। भाले के अग्र भाग से यह पत्र दो। ललाट पर त्रिवलित (तीन) भृकुटी चढ़ाकर अत्यंत रोष, क्रोध, प्रचंड कोप दिखलाते हुए यों कहो - मौ को चाहने वाले! अभागे! पुण्यहीन कृष्ण चतुर्दशी को जन्मे! कांति-लज्जा-बुद्धि से परिवर्जि । पद्मनाभ! आज तू बच नहीं पायेगा। क्या तुम नहीं जानते कि तुमने कृष्ण वासुदेव की बहिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रौपदी देवी का हरण करवाया है? खैर जाने दो, हुआ सो हुआ। अब तुम द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव को सौंप दो अथवा युद्ध के लिए सुसज्ज होकर बाहर निकलो। कृष्ण वासुदेव द्रौपदी देवी को लेने, पाँचों पांडवों सहित अभी-अभी आए हैं।

(१८१)

तए णं से दारुए सारही कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे (जाव) पडिसुणेइ २ त्ता अवरकंकं रायहाणिं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-एस णं सामी! मम विणय पडिवत्ती इमा अण्णा मम सामिस्स समुहाणत्ति-त्तिकट्टु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं अ(ण)वक्कमइ २ त्ता कोंतग्गेणं लेहं पणामइ० जाव कूवं हव्वमागए।

शब्दार्थ - समुहाणत्ति - आज्ञा, **पणामइ** - अर्पित किया।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव द्वारा यों कहे जाने दारुक सारथी ने प्रसन्नता यावत् हर्ष के साथ स्वीकार किया और वह अमरकंका राजधानी में प्रविष्ट हुआ। हाथ जोड़ कर, मस्तक नवाकर वर्धापित किया, जयनाद किया और कहा-यह मेरी विनय प्रतिपत्ति-नम्रता पूर्ण शिष्टाचार है। आपको निवेदित करने हेतु मेरे स्वामी की आज्ञा दूसरी है। तदनुसार उसने रोष पूर्वक राजा पद्मनाभ के पादपीठ के ठोकर मारी। भाले की नोंक पर खोंसा हुआ पत्र उसे अर्पित किया यावत् उसने कृष्ण वासुदेव का पूरा आदेश कह सुनाया और बोला - वे द्रौपदी देवी को लेने यहाँ आए हुए हैं।

(१८२)

तए णं से पउमणाभे दारुएणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते तिवलिं भिउडिं णिडाले साहट्टु एवं वयासी - णो अप्पिणामि णं अहं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं। एस णं अहं सयमेव जुज्झसज्जो णिग्गच्छामि - त्तिकट्टु दारुयं सारहिं एवं वयासी - केवलं भो! रायसत्थेसु दूये अवज्झे - त्तिकट्टु असक्कारिय असम्माणिय अवदारेणं णिच्छुभावेइ।

शब्दार्थ - णिडाले - ललाट पर, **रायसत्थेसु** - राजनीति शास्त्रों में, **अवज्झे** - न मारने योग्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - दारुक सारथी का यह कथन सुनकर राजा पद्मनाभ बहुत क्रोध में आ गया। उसने ललाट पर त्रिवलित भृकुटी तानकर कहा - देवानुप्रिय! मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी नहीं दूंगा। मैं स्वयं ही युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आ रहा हूँ। फिर वह दारुक सारथी से बोला- राजनीति शास्त्रों में दूत अवध्य कहा गया है, इसलिए तुम्हें छोड़ रहा हूँ। इस प्रकार दूत का असत्कार, असम्मान कर पीछे के दरवाजे से निकाल दिया।

(१८३)

तए णं से दारुए सारही पउमणाभेणं असक्कारिय जाव णिच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव कण्हं जाव एवं वयासी - एवं खलु अहं सामी! तुब्भं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ।

भावार्थ - तब राजा पद्मनाभ द्वारा तिरस्कृत होकर दारुक सारथी यावत् पिछले दरवाजे से निकलकर वहाँ से चल पड़ा और कृष्ण वासुदेव की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि बांधे प्रणाम कर, कृष्ण वासुदेव से निवेदन किया - स्वामी! आपका वचन सुनकर यावत् क्रुद्ध, रुष्ट होकर द्रौपदी देवी को वापस न लौटाने की बात कहते हुए उसने मुझे पिछले दरवाजे से निकाल दिया।

पद्मनाभ का युद्धार्थ प्रयाण

(१८४)

तए णं से पउमणाभे बलवाउयं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह। तयाणंतरं च णं छेयायरियउवदेसमइ विकप्पणा विगप्पेहिं जाव उवणेति। तए णं से पउमणाहे सण्णद्ध० अभिसेयं दुरूहइ २ त्ता हयगय जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - बलवाउयं - सेनानायक, छेयायरिय - सुयोग्य शिक्षक।

भावार्थ - तब राजा पद्मनाभ ने अपने सेनापति को बुलाया और कहा - देवानुप्रिय! शीघ्र ही मेरे लिये सर्वप्रधान हस्तिरत्न को तैयार करो। तदनंतर सेनापति ने सुयोग्य शिक्षकों-महावतों के उपदेशों एवं विशिष्ट बुद्धि की कल्पना-विकल्पनाओं द्वारा प्रशिक्षित मुख्य हस्ती को उपस्थित किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा पद्मनाभ कवच आदि पहनकर सन्नद्ध हुआ यावत् वह अभिषिक्त हाथी पर सवार हुआ। अश्व, गज, रथ पदातियुक्त चतुरंगिणी सेना के साथ, जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, उस ओर गमनार्थ उद्यत हुआ-चल पड़ा।

पद्मनाभ - पांडव संग्राम

(१८५)

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभं रायाणं एज्जमाणं पासइ २ त्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी - हं भो दारगा! किण्णं तुब्भे पउमणाभेणं सद्धिं जुज्झिहिह उयाहु पेच्छिहिह? तए णं ते पंच-पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - अम्हे णं सामी! जुज्झामो तुब्भे पेच्छह तए णं ते पंच-पंडवे सण्णद्ध जाव पहरणा रहे दुरूहंति २ त्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता एवं वयासी - अम्हे पउमणाभे वा राय - त्तिकट्टु पउमणाभेणं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ को आते हुए देखा। उन्होंने पांडवों से कहा - वत्सो! क्या तुम पद्मनाभ के साथ युद्ध करोगे अथवा मुझे उनके साथ लड़ते हुए देखोगे?

तब पाँचों पांडवों ने कृष्ण वासुदेव से कहा - स्वामी! हम लड़ेंगे, आप देखें।

तब पाँचों पाण्डव कवच आदि से सन्नद्ध होकर यावत् शस्त्राशस्त्र लेकर रथारूढ़ हुए। राजा पद्मनाभ के पास आए और उससे बोले - "या तो आज हम हैं या पद्मनाभ राजा है", यों कहकर वे राजा पद्मनाभ के साथ युद्धरत हो गए।

पांडवों की हार

(१८६)

तए णं से पउमणाभे राया ते पंच-पंडवे खिप्पामेव हयमहियपवरविवडिय-चिंधद्धयपडागा जाव दिसोदिसिं पडिसेहेइ। तए णं ते पंच पंडवा पउमणाभेणं रण्णा हयमहिय पवर विवडिय जाव पडिसेहिया समाणा अत्थामा जाव अधारणिज्जमि त्तिकट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति। तए णं से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कण्हे वासुदेवे ते पंच-पंडवे एवं वयासी - कहण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया! पउमणाभेण रण्णा सद्धिं संपलग्गा? तए णं ते पंच-पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा सण्णद्ध० रहे दुरूहामो २ त्ता जेणेव पउमणाभे जाव पडिसेहेइ।

शब्दार्थ - **पडिसेहेइ** - रोक दिया, **अत्थामा** - बल रहित।

भावार्थ - तब राजा पद्मनाभ ने शीघ्र ही पाँचों पांडवों के अश्वों को घायल कर दिया। उनकी उत्तम ध्वजपताकाओं को गिरा डाला। उनको एक दिशा से दूसरी दिशा में जाने से - जहाँ का तहाँ रोक दिया। इस प्रकार पद्मनाभ राजा द्वारा यों पीड़ित, पराभूत किए जाने पर यावत् जहाँ का तहाँ रोक दिए जाने पर पांडव स्वयं को अस्थिर यावत् दुर्बल महसूस करने लगे।

'अब यहाँ टिक पाना संभव नहीं है', यों सोचकर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ चले आए। कृष्ण वासुदेव ने पाँचों पांडवों से कहा - देवानुप्रियो! तुम पद्मनाभ राजा के साथ किस प्रकार युद्ध लड़ने में संलग्न हुए?

तब पाँचों पांडवों ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा - देवानुप्रिय! हम आपकी आज्ञा प्राप्त कर कवचों से सज्जित हुए, रथों पर आरूढ हुए। जहाँ राजा पद्मनाभ था, वहाँ पहुँचे, हमने उसको इन शब्दों में ललकारा - "आज हम ही होंगे या पद्मनाभ राजा होगा" यावत् लड़े। इस प्रकार पांडवों ने सारी बात बतलाते हुए कहा कि राजा पद्मनाभ ने हमें जहाँ का तहाँ रोक दिया।

(१८७)

तए णं से कण्हे वासुदेवे ते पंच-पंडवे एवं वयासी - जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एवं वयंता - अम्हे णो पउमणाभे राय त्तिकट्टु पउमणाभेणं सद्धिं संपलग्गंता तो णं तुब्भे णो पउमणाभे हयमहिय पवर जाव पडिसेहंते तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अहं णो पउमणाभे रायत्तिकट्टु पउमणाभेणं रण्णा सद्धिं जुज्झामि रहं दुरूहइ २ त्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सेयं गोखीरहार-धवलं तणसोल्लियंसि दुवार कुंदेंदु-सण्णिगासं णिययस्स बलस्स हरिसजणणं रिउसेण्ण विणासकरं पंचजण्णं संखं परामुसइ २ त्ता मुहवाय पूरियं करेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **तणसोल्लिय** - मल्लिका, **सिंदुवार** - निर्गुण्डी का पुष्प।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव ने पाँचों पांडवों से यों कहा-देवानुप्रियो! यदि तुम उसको ललकारते 'हम ही होंगे, राजा पद्मनाभ नहीं होगा।' इस प्रकार कहकर युद्ध में संलग्न होते तो पद्मनाभ राजा न तुम्हारे अश्वों को आहत कर पाता और न ध्वज पताका को निपतित ही कर पाता।

देवानुप्रियो! अब तुम देखो, मैं ही रहूंगा, राजा पद्मनाभ नहीं रहेगा। यों ललकारते हुए मैं पद्मनाभ से युद्ध करने जा रहा हूँ। यों कहकर वासुदेव युद्ध हेतु वहाँ पहुँचे जहाँ राजा पद्मनाभ था। गाय के दूध, मोतियों का हार, मल्लिका, निर्गुण्डी, कुंद पुष्प एवं चंद्र के समान श्वेत, अपनी सेना के लिए हर्षोत्पादक, शत्रु सेना के लिए विनाश सूचक, अपने पांचजन्य शंख को हाथ में लिया और मुखवायु से उसे आपूरित किया - बजाया।

कृष्ण द्वारा मान-मर्दन

(१८८)

तए णं तस्स पउमणाहस्स तेणं संखसद्देणं बलतिभाए हए जाव पडिसेहिए। तए णं से कण्हे वासुदेवे धणुं परामुसइ वेढो धणुं पूरेइ २ त्ता धणुसद्दं करेइ। तए णं तस्स पउमणाभस्स दोच्चे बलतिभाए तेणं धणुसद्देणं हयमहिय जाव पडिसेहिए। तए णं से पउमणाभे राया तिभाग-बलावसेसे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कम्मे अधारणिज्जमित्तिकट्टु सिग्घं तुरियं जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अवरकंकं रायहाणिं अणुपविसइ २ त्ता दाराइं पिहेइ २ त्ता रोहसज्जे चिट्ठइ।

शब्दार्थ - **वेढो** - वेष्टक-किसी विषय से संबद्ध वचन पद्धति, **बलतिभाए** - सेना का तृतीय भाग, **पूरेइ** - प्रत्यंचा चढ़ाई, **रोहसज्जे** - नगर रक्षार्थ सज्जित होकर।

भावार्थ - पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनते ही पद्मनाभ की सेना का तिहाई भाग घबराकर भाग छूटा। तब कृष्ण वासुदेव ने अपना धनुष उठाया। धनुष का वर्णन जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति से यहाँ योजनीय है। फिर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई-टंकार किया। तब राजा पद्मनाभ की सेना का दूसरा तिहाई भाग मथित, उद्विग्न होकर भाग गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब राजा पद्मनाभ की सेना का तिहाई भाग ही बच रहा। वह अशक्त, निर्बल पुरुषार्थ और पराक्रम रहित हो गया। 'अब कोई सहारा नहीं है' - यों सोचकर वह अमरकंका की ओर लौट पड़ा। राजधानी में प्रवेश कर दरवाजे बंद करवा दिए एवं नगर रक्षार्थ सज्जित हुआ।

(१८९)

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता रहाओ पच्चोरुहइ २ त्ता वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणइ एगं महं णरसीहरूवं विउव्वइ २ त्ता महया-महया सद्देणं पायदद्दरियं करेइ। तए णं(से) कण्हेणं वासुदेवेणं महया-महया सद्देणं पायद्दरएणं कएणं समाणेणं अवरकंका रायहाणी संभग्गपागारगो(पु)उराट्टालयचरियतोरणपल्हत्थिय पवरभवणसिरिघरा सर(र)सरस्स धरणियले सण्णिवइया।

शब्दार्थ - **संभग्ग** - संभग्न-नष्ट-भ्रष्ट, **पागार**-प्राकार - परकोटे, **गोपुर** - नगर का मुख्य द्वार, **चरिय** - चरिका-नगर के परकोटे का मध्यवर्ती मार्ग, **पल्हत्थिय** - नगर का मुख्य मार्ग, **सिरिघरा** - कोषागार, **सरसरस्स** - टूटते हुए भवनों के गिरने का शब्द।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव अमरकंका राजधानी पहुँचे। वहाँ जाकर अपने रथ को रोका। नीचे उतरे। वैक्रिय समुद्घात किया। एक बहुत बड़े नृसिंह के रूप की विकुर्वणा की, सिंह रूप धारण किया, फिर जोर-जोर से शब्द करते हुए जमीन पर अपने पैर पटके। इस प्रकार ज्यों ही उन द्वारा उच्च शब्द पूर्वक चरण घात किया गया, अपरकंका राजधानी के परकोटे, मुख्य द्वार, अट्टालिका, प्राकार के मध्यवर्ती मार्ग, तोरण द्वार, मुख्य मार्ग, उत्तम भवन, कोषागार आदि सरसराहट करते हुए धडाम से जमीन पर गिर पड़े।

पद्मनाभ का आत्म-समर्पण

(१९०)

तए णं से पउमणाभे राया अवरकंकं रायहाणिं संभग्ग जाव पासित्ता भीए दोवइं देविं सरणं उवेइ। तए णं सा दोवई देवी पउमणाभं रायं एवं वयासी- किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! ण जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करेमाणे ममं इह हव्वमाणेसि? तं एवमवि गए गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! ण्हाय उल्लपडसाडए ओ(अव)चूलगवत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय ममं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयल० पायवडिए सरणं उवेहि, पणिवइयवच्छला णं देवाणुप्पिया! उत्तम पुरिसा।

शब्दार्थ - **अवचूलग** - नीचे लटकते हुए, **वत्थणियत्थे** - वस्त्रांचल का छोर, **पणिवइय**- पैरों में पड़े हुए।

भावार्थ - तदनंतर राजा पद्मनाभ ने जब राजधानी अमरकंका को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट देखा तब वह भयभीत होकर देवी द्रौपदी की शरण में पहुँचा। देवी द्रौपदी ने राजा पद्मनाभ को इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! क्या तुम नहीं जानते, उत्तम पुरुष-शलाका पुरुष कृष्ण वासुदेव का अप्रिय करते हुए मेरा हरण करवा कर यहाँ ले आए। हुआ सो हुआ। देवानुप्रिय! अब तुम स्नान कर गीले वस्त्रों सहित, उत्तरीय को नीचे लटकाते हुए रानियों से परिवृत होकर, रत्नों की उत्तम भेंट लिए हुए, मुझे आगे कर कृष्ण वासुदेव के पास जाओ। हाथ जोड़कर उनके चरणों में गिरो-उनकी शरण लो। देवानुप्रिय! उत्तम पुरुष शरणागत वत्सल होते हैं।

विवेचन - कृष्ण वासुदेव के लिए इस सूत्र में जो उत्तम पुरुष का प्रयोग हुआ है, वह विशिष्ट अर्थ का द्योतक है। जैन परंपरा में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव एवं नौ बलदेव-यों कुल तिरेसठ श्लाघ्य पुरुष माने गए हैं, जिन्हें शलाका पुरुष कहा जाता है।

जैन साहित्य में संस्कृत में रचित 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित् महाकाव्यम्' आदि अनेक ग्रन्थ इन महापुरुषों को चरितनायक मान कर रचे गए हैं।

एक ऐसी परम्परा भी है, जिनमें प्रतिवासुदेव नहीं गिने जाते। वहाँ चौवन महापुरुष माने जाते हैं। महाकवि पुष्पदंत रचित "चउवन्न महापुरिस चरिअं" आदि अनेक ग्रन्थ इस परंपरा में प्राप्त होते हैं।

द्रौपदी कृष्ण वासुदेव को सुपुर्द

(१६१)

तए णं से पउमणाभे दोवईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता ण्हाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव सरणं उवेइ, उवेत्ता करयल जाव एवं वयासी-दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जाव परक्कमे। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया! जाव खमंतु णं जाव णाहं भुज्जो २ एवं करणयाए त्तिकट्टु पंजलिउडे पायवडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ।

भावार्थ - राजा पद्मनाभ ने देवी द्रौपदी के इस कथन को स्वीकार किया। वह स्नानादि से निवृत्त हुआ यावत् वासुदेव की शरण में पहुँचा। हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि बांधे यों बोला - देवानुप्रिय! मैंने आपकी ऋद्धि और पराक्रम देखा! देवानुप्रिय! मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ यावत् आप मुझे क्षमा करें। मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा। यों कह कर हाथ जोड़े हुए कृष्ण वासुदेव के चरणों में गिर पड़ा तथा द्रौपदी देवी को उनके हाथों में सौंप दिया।

(१६२)

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी-हं भो पउमणाभा! अप्पत्थियपत्थिया ४ किण्णं तुमं ण जाणसि मम भगिणिं दोवइं देविं इह हव्वमाणमाणे? तं एवमवि गए णत्थि ते ममाहिंतो इयाणिं भयमत्थि - त्ति कट्टु पउमणाभं पडिविसज्जेइ० दोवइं देविं गेण्हइ २ त्ता रहं दुरुहेइ २ त्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पंचण्हं पंडवाणं दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ।

भावार्थ - तब वासुदेव कृष्ण ने राजा पद्मनाभ से कहा - अरे मौत को चाहने वाले पद्मनाभ! क्या तूं नहीं जानता कि तू मेरी बहिन द्रौपदी देवी का अपहरण करवा कर यहाँ ले आया। खैर, हुआ सो हुआ। अब मुझ से तुम्हें कोई भय नहीं है। मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। यों कह कर उन्होंने पद्मनाभ को प्रतिविसर्जित किया-जाने का आदेश दिया। द्रौपदी देवी को लेकर रथ पर आरूढ़ हुए। पांच पांडवों के पास आए। द्रौपदी देवी को उन्हें हाथोंहाथ सौंप दिया।

(१६३)

तए णं से कण्हे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवण समुदं मज्झं मज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे २ जेणेव भारहेवासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - तदनंतर कृष्ण वासुदेव पांचों पांडवों के साथ छहों रथों पर आरूढ़ होकर लवण समुद्र के बीचों बीच होते हुए जंबूद्वीप-भारत वर्ष की ओर चल पड़े।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१६४)

तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे भारहे वासे चंपा णामं णयरी होत्था। पुण्णभद्दे णामं चेइए। तत्थ णं चंपाए णयरीए कविले णामं वासुदेवे राया होत्था महया हिमवंत० वण्णओ।

भावार्थ - उस काल, उस समय धातकी खंड द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में भरत क्षेत्र में चम्पा नामक नगरी थी। उसमें पूर्णभद्र नामक चैत्य था। चंपानगरी का कपिल वासुदेव राजा था। वह महान् हिमवंत गिरी के सदृश, दृढ़ता आदि में महिमामय था। एतद्विषयक विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से यहाँ योजनीय है।

शंख ध्वनि द्वारा दो वासुदेवों का सम्मिलन

(१६५)

तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा चंपाए पुण्णभद्दे समोसढे। कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ। तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतिए धम्मं सुणेमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स संख सद्दं सुणेइ। तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पज्जित्था-किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे? जस्स णं अयं संखसद्दे ममं पिव मुहवाय पूरिए वियंभइ?

भावार्थ - उस काल उस समय वहाँ भरत क्षेत्र में तीर्थंकर मुनिसुव्रत का चंपानगरी में, पूर्णभद्र चैत्य में पदार्पण हुआ। कपिल वासुदेव जब तीर्थंकर मुनिसुव्रत से धर्म श्रवण कर रहा था, उसे कृष्ण वासुदेव के शंख की ध्वनि सुनाई दी। कपिल वासुदेव के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ - क्या धातकी खण्ड-भारत नर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ जिसकी शंख ध्वनि ऐसी है, जैसे मेरे द्वारा ही बजाई गई हो।

(१६६)

कविले वासुदेवे सद्दाइं सुणेइ। मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वयासी-से णूणं ते कविला वासुदेवा! ममं अंतिए धम्मं णिसामेमाणस्स संखसद्दं आकण्णित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए-किं मण्णे जाव वियंभइ। से णूणं कविला वासुदेवा! अयमट्ठे समट्ठे? हंता! अत्थि।

भावार्थ - कपिल वासुदेव को संबोधित कर तीर्थंकर मुनि सुव्रत ने इस प्रकार कहा-कपिल वासुदेव! मेरे पास धर्म श्रवण करते समय शंख-ध्वनि सुनकर तुम्हारे मन में क्या ऐसा विचार आया कि धातकी खंड में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है। यह शंख-ध्वनि ऐसी है, मानो मेरे ही शंख की हों।

कपिल वासुदेव! क्या ऐसा ही भाव उठा। कपिल वासुदेव बोले-भगवं! सत्य है। मेरे मन में ऐसा ही भाव उत्पन्न हुआ।

(१९७)

तं णो खलु कविला! एवं भूयं वा भवइ वा भविस्सइ वा जण्णं एगखेत्ते एगजुगे एगसमए दुवे अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जिंति वा उप्पज्जिस्संति वा। एवं खलु वासुदेवा! जंबूद्दीवाओ २ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ णयराओ पंडुस्स रण्णो सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी तव पउमणाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं अवरकंकं णयरिं साहरिया। तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं अवरकंकं रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए। तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स पउमणाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं संगामेमाणस्स अयं संखसद्दे तव मुहवाया० इव इट्ठे कंते इहे वियंभइ।

शब्दार्थ - जण्णं - जो नहीं।

भावार्थ - हे कपिल! एक ही क्षेत्र में, एक ही युग में, एक ही समय में दो तीर्थंकर या दो चक्रवर्ती या दो बलदेव या दो वासुदेव न कभी हुए हैं, न होते हैं, न होंगे।

वासुदेव कपिल! जंबू द्वीप के अंतर्गत भारत वर्ष में, हस्तिनापुर में पाण्डु राजा की पुत्रवधु, पांचों पाण्डवों की भार्या द्रौपदी देवी को तुम्हारे राजा पद्मनाभ के पूर्व भव के मित्र देव ने हरण कर राजधानी अमरकंका में उसके यहाँ पहुँचा दिया। तब कृष्ण वासुदेव पांचों पांडवों के साथ छह रथों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर आरूढ होकर द्रौपदी की खोज में राजधानी अमरकंका में सत्वर पहुँचे। यह पद्मनाभ के साथ संग्राम करते हुए कृष्ण वासुदेव के शंख की ध्वनि हैं, जो तुम्हारे द्वारा बजाए जाने वाले शंख की ध्वनि की तरह इष्ट और कांत है। इस प्रकार वासुदेव के शंख की यह दूसरी ध्वनि है।

(१९८)

तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता एवं वयासी-गच्छामि णं अहं भंते! कण्हं वासुदेवे उत्तम पुरिसं मम सरिस पुरिसं पासामि। तए णं मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवे एवं वयासी-णो खलु देवाणुप्पिया! एवं भूयं वा ३ जण्णं अरहंता वा अरहंतं पासंति चक्कवट्टी वा चक्कवट्टिं पासंति बलदेवा वा बलदेवं पासंति वासुदेवा वा वासुदेवं पासंति। तहवि य णं तुमं कण्हस्स वासुदेवस्स लवण समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासिहिसि।

भावार्थ - तब कपिल वासुदेव ने तीर्थंकर मुनि सुव्रत को वंदन, नमन किया और निवेदन किया-भगवन्! मेरे मन में ऐसा आता है कि मैं कृष्ण वासुदेव के पास जाऊं और उनके दर्शन करूँ।

इस पर तीर्थंकर मुनिसुव्रत ने कपिल वासुदेव से कहा - देवानुप्रिय! न कभी ऐसा हुआ है, न होता है और न होगा ही कि तीर्थंकर-तीर्थंकर से, चक्रवर्ती-चक्रवर्ती से, बलदेव-बलदेव से और वासुदेव-वासुदेव से परस्पर मिलते हों, एक दूसरे को देखते हों।

फिर भी तुम लवण समुद्र के बीचों बीच गुजरते हुए कृष्ण वासुदेव के रथ की श्वेत पीत ध्वजा के अग्र भाग को देख सकोगे।

(१९९)

तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता हत्थिखंधं दुरूहइ २ त्ता सिग्घं २ जेणेव वेलाउले तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणस्स सेयापीयाहिं धयग्गाइं पासइ २ त्ता एवं वयइ-एस णं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेव लवण समुद्दं मज्झं मज्झेणं वीईवयइ त्तिकट्टु पंचयण्ण संखं परामुसइ २ मुहवाय पूरियं करेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - कपिल वासुदेव ने तीर्थंकर मुनि सुव्रत को वंदन, नमन किया। वैसा कर हाथी पर आरूढ हुआ। शीघ्र ही लवण समुद्र के उस तट पर आया। लवण समुद्र के बीचों बीच गुजरते हुए रथ की श्वेत-पीत ध्वजा के अग्र भाग को देखा। देखकर वह बोला-वह मेरे तुल्य पुरुष कृष्ण वासुदेव हैं, जो लवण समुद्र के बीचों-बीच होते हुए जा रहे हैं। यों मन ही मन कहा एवं अपना पांचजन्य शंख लिया और मुख की वायु से पूरित किया-बजाया।

(२००)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसद्दं आयण्णेइ २ त्ता पंचयण्णं जाव पूरियं करेइ। तए णं दोवि वासुदेवा संख सद्दसामायारिं करेंति।

शब्दार्थ - **आयण्णेइ** - सुना, **सामायारिं** - सम्मिलन।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख को सुना। सुनकर उन्होंने भी अपना पांचजन्य शंख यावत् मुख की वायु से पूरित किया, बजाया।

इस प्रकार दोनों ही वासुदेवों का शंख-ध्वनि के माध्यम से सम्मिलन हुआ।

(२०१)

तए णं से कविले वासुदेवे जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अवरकंकं रायहाणिं संभग्गतोरणं जाव पासइ २ त्ता पउमणाभं एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया! एसा अवरकंका संभग्ग जाव सण्णिवइया?

भावार्थ - तदनंतर कपिल वासुदेव अमरकंका राजधानी में आया। उसने अमरकंका राजधानी के तोरण यावत् गोपुर, अट्टालिका आदि को नष्ट-भ्रष्ट देखा। तब वह पद्मनाभ से बोला - देवानुप्रिय! अमरकंका राजधानी यों भग्न यावत् ध्वस्त-विध्वस्त क्यों पड़ी है?

(२०२)

तए णं से पउमणाभे कविलं वासुदेव एवं वयासी-एवं खलु सामी! जंबुद्दीवाओ २ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूय अवरकंका जाव सण्णिवाडिया।

भावार्थ - तब पद्मनाभ ने कपिल वासुदेव से कहा - स्वामी! जंबू द्वीपान्तरवर्ती भारत वर्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से सत्वर आकर वासुदेव कृष्ण ने आपका पराभव कर, अपमान कर अमरकंका राजधानी को यावत् नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है।

(२०३)

तए णं से कविल्ले वासुदेवे पउमणाभस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाभं एवं वयासी-हं भो पउमणाभा! अपत्थियपत्थिया ५ किण्णं तुमं ण जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे? आसुरुत्ते जाव पउमणाभं णिव्विसयं आणवेइ पउमणाभस्स पुत्तं अवरकंकाए रायहाणीए महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव पडिगए।

भावार्थ - राजा पद्मनाभ से यह सुनकर कपिल वासुदेव ने कहा - मृत्यु प्रार्थी पद्मनाभ! क्या तुम नहीं जानते, मेरे ही सदृश उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव का तुमने अनिष्ट किया। कपिल वासुदेव उस पर बहुत ही रुष्ट और क्रुद्ध हुआ तथा पद्मनाभ को देश निर्वासन का आदेश दिया। पद्मनाभ के पुत्र का बड़े समारोह के साथ अमरकंका के राजा के रूप में राज्याभिषेक किया यावत् वह वापस लौट गया।

पांडवों द्वारा अशिष्टता

(२०४)

तए णं से कण्हे वासुदेवे लवण समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ गंगं उवागए ते पंच पंडवे एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! गंगा महाणइं उत्तरह जाव अहं सुट्ठियं लवणाहिवइं पासामि। तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं २ एवं वुत्ता समाणा जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छंति २ ता एगट्ठियाए णावाए मग्गणगवेसणं करेंति २ त्ता एगट्ठियाए णावाए गंगं महाणइं उत्तरंति २ त्ता अण्णमण्णं एवं वयंति-पहू णं देवाणुप्पिया! कण्हे वासुदेवे गंगं महाणइं बाहाहिं उत्तरित्तए उदाहु णो पहू उत्तरित्तए-त्तिकट्टु एगट्ठियाओ णावाओ णूमेंति २ त्ता मुसंति २ त्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणा २ चिट्ठंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **एगट्ठियाए** - बड़ी नौका, **पहू** - प्रभु-समर्थ, **णूमेंति** - छिपाते हैं।

भावार्थ - श्री कृष्ण वासुदेव लवण समुद्र के बीच चलते-चलते गंगा नदी के निकट पहुँचे और बोले-देवानुप्रियो! जाओ गंगा नदी को पार करो, तब तक मैं लवणाधिपति सुस्थित देव से भेंट कर आऊँ।

कृष्ण वासुदेव द्वारा यों कहे जाने पर पांचों पाण्डव गंगा महानदी के तट पर आए। एकार्थिक नौका की खोज की। उसमें बैठकर गंगा महानदी को पार किया। तट पर पहुँच कर परस्पर यों बात करने लगे-देवानुप्रियो! क्या कृष्ण वासुदेव गंगा नदी को अपनी भुजाओं से पार करने में समर्थ है या नहीं, देखें।

परस्पर चिंतन कर उन्होंने नौका को वहीं ऐसा छिपा दिया और कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते हुए ठहर गए।

(२०५)

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं पासइ २ त्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एगट्ठियाए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ २ त्ता एगट्ठियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ एगाए बाहाए गंगं महाणइं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णं उत्तरिउं पयत्ते यावि होत्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे गंगाए महाणईए बहुमज्झदेसभागं संपत्ते समाणे संते तंते परितंते बद्धसेए जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - **बद्धसेए** - पसीने से युक्त।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव लवण समुद्र के अधिष्ठाता देव सुस्थित से मिले। मिलकर गंगा महानदी के तट पर आए। महानौका का सब ओर मार्गण-गवेषण किया। वह जब दृष्टिगोचर नहीं हुई तो उन्होंने एक भुजा से अश्व और सारथी सहित रथ को उठाया तथा दूसरी भुजा से साढ़े बासठ योजन विस्तीर्ण गंगा महानदी को तैरकर पार करने को उद्यत हुए। जब वे गंगा नदी के बीचो-बीच पहुँचे तब परिश्रांत आकुल और खिन्न हो गए। शरीर से पसीना बहने लगा।

(२०६)

तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुप्पज्जित्था-अहो णं पंचवा महाबलवगा जेहिं गंगामहाणई बा(व)सट्ठिं जोयणाइं अद्ध जोयणं च वित्थिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा, इच्छंतएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमणाभे राया हयमहिय जाव णो पडिसेहिए। तए णं गंगादेवी कण्हस्स वासुदेवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं जाव जाणित्ता थाहं वियरइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे मुहुत्तंतरं समासासइ २ त्ता गंगं महाणइं बासट्ठिं जाव उत्तरइ २ त्ता जेणेव पंच-पंडवा तेणेव उवागच्छइ० पंच पंडवे एवं वयासी-अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया! महाबलवगा जेहणं तुब्भेहिं गंगा महाणई बासट्ठिं जाव उत्तिण्णा, इच्छंतएहिं णं तुब्भेहिं पउमणाहे जाव णो पडिसेहिए।

शब्दार्थ - **थाहं** - स्ताघ्र-टिकने का आधार।

भावार्थ - कृष्ण बासुदेव के मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ - अहो! पांचों पाण्डव महाबलशाली है, जिन्होंने साढ़े बासठ योजन विस्तीर्ण गंगा महानदी को भुजाओं से पार कर दिया। लगता है कि उन्होंने पद्मनाभ राजा को जान-बूझकर प्रतिबद्ध पराजित नहीं किया। तब गंगा महानंदी की अधिष्ठात्री गंगा देवी ने कृष्ण का मनः संकल्प जानकर उन्हें टिकने के लिए आधार दे दिया। कृष्ण वासुदेव थोड़ी देर वहाँ विश्राम कर आश्वस्त हुए। आश्वस्त होकर उस साढ़े बासठ योजन महानदी को पार किया तथा जहाँ पांडव थे वहाँ आए। कहने लगे - देवानुप्रियो! आप बड़े बलशाली हैं, जिन्होंने साढ़े बासठ योजन विस्तीर्ण गंगा महानदी को यावत् भुजाओं से पार कर दिया। पद्मनाभ को जान-बूझकर पराजित नहीं किया।

(२०७)

तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छामो २ त्ता एगट्ठियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव णूमेमो तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव द्वारा यों कहे जाने पर पांचों पाण्डवों ने उनसे कहा-देवानुप्रिय! हम आपकी आज्ञानुसार आपसे अलग होकर गंगा महानदी के तट पर पहुँचे। एक बड़ी महानौका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की खोज की यावत् उस पर सवार होकर यहाँ पहुँचे। फिर आपके बल की परीक्षा लेने हेतु हमने नौका को छिपा दिया तथा आपकी प्रतीक्षा करते हुए यहाँ स्थित रहे।

वासुदेव का कोपः पाण्डवों का निर्वासन

(२०८)

तए णं से कण्हे वासुदेवे तेसिं पंचण्हं पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव तिवलियं एवं वयासी-अहो णं जया मए लवण समुद्दं दुवे जोयणसयसह(स्सा)स्सविच्छिण्णं वीईवइत्ता पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहित्ता अवरकंका संभग्ग० दोवई साहत्थिं उवणीया तया णं तुब्भेहिं मम माहप्पं ण विण्णायं इयाणि जाणिस्सह-त्तिकट्टु लोहदंडं परामुसइ पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ २ त्ता णिव्विसए आणवेइ २ त्ता तत्थ णं रहमद्दणे णामं कोट्टे णिविट्ठे।

शब्दार्थ - **णिव्विसए** - निर्वासन, **कोट्टे** - नगर।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव पांचों पांडवों का यह कथन सुनकर अत्यन्त रुष्ट, क्रुद्ध हुए। ललाट में तीन सल उभर आए और बोले - अहो! जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवण समुद्र को पार किया अश्व गजादि युक्त चतुरंगिणी सेना सहित राजा पद्मनाभ को पराजित कर दिया। अमरकंका को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। द्रौपदी को तुम्हारे हाथों में सौंप दिया। तब भी तुम मेरा सामर्थ्य नहीं जान पाए। अब जान लो। यों कहकर उन्होंने लोह का दण्ड लिया - पांचों पाण्डवों के रथ को चूर-चूर कर डाला और उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी। ऐसा कर वहाँ रथमर्दन नामक नगर की स्थापना की।

(२०९)

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सएणं खंधावारेणं सद्धिं अभिसमण्णागए यावि होत्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अणुप्पविसइ।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव अपने पड़ाव में आए और सेना से मिल गए। तत्पश्चात् वहाँ से द्वारका नगरी की ओर चले, यथा समय वहाँ पहुँचे नगरी में प्रविष्ट हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२१०)

तए णं ते पंच-पंडवा जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जेणेव पंडू राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु ताओ! अम्हे कण्हेणं णिव्विसया आणत्ता। तए णं पंडू राया ते पंच पंडवे एवं वयासी-कहण्णं पुत्ता! तुब्भे कण्हेणं वासुदेवेणं णिव्विसया आणत्ता? तए णं ते पंच-पंडवा पंडुरायं एवं वयासी-एवं खलु ताओ! अम्हे अवरकंकाओ पडिणियत्ता लवण समुद्दं दोण्णि जोयणसयसहस्साइं वीईवई(त्ता)त्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे अम्हे एवं वयइ-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! गंगा महाणइं उत्तरह जाव (चिट्ठह) ताव अहं एवं तहेव जाव चिट्ठामो। तएणं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं दट्ठुण तं चेव सव्वं णवरं कण्हस्स चिंता ण (बुज्झइ) जुज्ज(वूच्च)इ जाव अम्हे णिव्विसए आणवेइ।

शब्दार्थ - जुजइ (बुज्झइ) - बुध्यते।

भावार्थ - फिर पांचों पांडव हस्तिनापुर आए। पांडु राजा के समक्ष उपस्थित हुए। हाथ-जोड़कर, प्रणमन कर यावत् उनसे बोले-पिताश्री! कृष्ण वासुदेव ने हमें देश निकाला दे दिया है। पांडु ने पांचों पाण्डवों से पूछा-पुत्रो! कृष्ण वासुदेव ने ऐसा क्यों किया?

तब उन्होंने कहा - पिताश्री! इस अमरकंका से चलकर दो लाख योजन विस्तीर्ण लवण समुद्र को जब पार कर लिया। तब कृष्ण वासुदेव ने हमें कहा - देवानुप्रियो! तुम गंगा महानदी को पार कर यावत् मेरी प्रतीक्षा करते हुए तट पर रुको। मैं तब तक लवणाधिपति सुस्थित देव से मिल आऊँ यावत् हमने महानौका द्वारा समुद्र को पार किया। किनारे पर रुके। कृष्ण वासुदेव के सामर्थ्य की परीक्षा करने हेतु नौका को छिपा दिया। सुस्थित देव से मिल कर कृष्ण आए। आगे का सारा वृत्तांत यहाँ योजनीय है। विशेष बात यह है कि, पांडव पिता से बोले-कृष्ण वासुदेव के संबंध में हमने सोचा तक नहीं था कि इस संबंध में कृष्ण वासुदेव हमें देश निर्वासन का आदेश दे देंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२११)

तए णं से पंडूराया ते पंच-पंडवे एवं वयासी-दुट्ठणं (तुमं) पुत्ता! कयं कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणेहिं।

भावार्थ - यह सुनकर पांडु राजा ने पांचों पाण्डवों से कहा - पुत्रो! कृष्ण वासुदेव का अप्रिय करते हुए तुमने बहुत बुरा किया।

(२१२)

तए णं से पंडू राया कोंतिं देविं सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी-गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं कण्हस्स वासुदेवस्स णिवेएहि-एवं खलु देवाणुप्पिया! तु(मे)म्हे पंच-पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं देवाणुप्पिया! दाहिणड्ढ-भरहस्स सामी, तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! ते पंच-पंडवा कयरंदिसि (देसं) वा विदिसिं वा गच्छंतु?

शब्दार्थ - कयरं - कौनसे।

भावार्थ - तदनंतर राजा पांडु ने महारानी कुंती को बुलाकर कहा - देवानुप्रिये! तुम द्वारवती जाओ तथा कृष्ण वासुदेव से निवेदन करो-देवानुप्रिय! आपने पांचों पांडवों को देश निकाले का आदेश दे दिया है। देवानुप्रिय! आप तो समस्त दक्षिणार्द्ध भरत के स्वामी हैं। इसलिए आप आदेश करे कि पांचों पांडव किस देश में या किस दिशा-विदिशा में जाएं? किस स्थान में रहे?

(२१३)

तए णं सा कोंती पंडुणा एवं वुत्ता समाणी हत्थि खंदं दुरुहइ० जहा हेट्ठा जाव संदिसंतु णं पिउच्छा! किमागमणपओयणं?

तए णं सा कोंती कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु (तुमे) पुत्ता! पंच-पंडवा णिव्विसया आणत्ता तुमं च णं दाहिणड्ढभरहस्स जाव विदिसिं वा गच्छंतु?

शब्दार्थ - हेट्ठा - पूर्ववत्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पाण्डु द्वारा यों कहे जाने पर कुंती देवी हाथी पर सवार हुई और जैसे पूर्व में द्वारवती नगरी पहुँचने का वर्णन आया है, वैसे ही यहाँ योजनीय है यावत् द्वारवती नगरी पहुँच कर कृष्ण वासुदेव से मिली।

तब कृष्ण वासुदेव बोले-भुआ! बतलाओ किस प्रयोजन से यहाँ आना हुआ? कुंती बोली-पुत्र! तुमने पांचों पांडवों को देश निकाले की आज्ञा दे दी। तुम तो समग्र दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र के स्वामी हो। बतलाओ यावत् पांडव किस दिशा-विदिशा में किस स्थान पर जाएं?

पाण्डु मथुरा का निर्माण

(२१४)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं देविं एवं वयासी-अपूईवयणा णं पिउच्छा! उत्तमपुरिसा वासुदेवा बलदेवा चक्कवट्टी। तं गच्छंतु णं देवाणु०! पंच-पंडवा दाहिणिल्लं वेयालिं तत्थ पंडुमहुरं णिवेसंतु मम अदिट्ठसेगा भवंतु-त्तिकट्टु कोंतिं देविं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ।

शब्दार्थ - **अपूईवयणा** - अपूतिवचना - अपरिवर्त्यभाषी, **पंडुमहुरं** - पांडुमथुरा।

भावार्थ - तब कृष्ण वासुदेव ने कुंती देवी से कहा - भुआ! वासुदेव, बलदेव एवं चक्रवर्ती जो वचन कहते हैं, उसे कभी बदला नहीं जा सकता।

देवानुप्रिये! इसलिए पांचों पांडव दक्षिणी समुद्रतट पर जाएं। वहाँ पांडु मथुरा नामक नगर बसाएं। मेरे अदृष्ट सेवक बने रहें-कभी मेरे सम्मुख न आएं। यों कहकर कुंती का सत्कार - सम्मान किया यावत् उन्हें विदा किया।

(२१५)

तए णं सा कोंती देवी जाव पंडुस्स एयमट्ठं णिवेएइ। तए णं पंडू राया पंचपंडवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे पुत्ता! दाहिणिल्लं वेयालिं, तत्थ णं तुब्भे पंडुमहुरं णिवेसेह। तए णं ते पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो जाव तहत्ति पडिसुणेंति २ त्ता सबलवाहणा हयगय० हत्थिणाउराओ पडिणिक्खमंति २ त्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पंडुमहुरं णयरिं णिवेसेइ २ त्ता तत्थ णं ते विपुल भोगसमिइसमण्णागया यावि होत्था।

भावार्थ - कुंती देवी ने अपने पति राजा पांडु से यह सब कहा। राजा पांडु ने पांचों पांडवों को बुलाया और कहा-पुत्रो! तुम दक्षिणी समुद्र तट पर जाओ और पांडु मथुरा की स्थापना करो।

राजा पाण्डु का यह कथन सुनकर पाँचों पाण्डव "जैसी आपकी आज्ञा" - यह कह कर अपनी सेनाएं, वाहन, हाथी, घोड़े आदि लेकर हस्तिनापुर से रवाना हुए। चलते-चलते दक्षिणी समुद्र के तट पर पहुँचे। वहाँ पाण्डु मथुरा की स्थापना की और प्रचुर सांसारिक सुख भोगते हुए रहने लगे।

पाण्डवों को पुत्र-प्राप्ति

(२१६)

तए णं सा दोवई देवी अण्णया कयाइ आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था। तए णं सा दोवई देवी णवण्हं मासाणं जाव सुरूवं दारगं पयाया सूमालं णिव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं-जम्हा णं अम्हं एस दारए पंचण्हं पंडवाणं पुत्ते दोवईए देवीए अत्तए तं होउ अम्हं णं इमस्स दारगस्स णामधेज्जं पंडुसेणे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेइ पंडुसेणत्ति, बावत्तरिं कलाओ जाव अलं भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ।

शब्दार्थ - **आवण्णसत्ता** - गर्भवती हुई।

भावार्थ - तत्पश्चात् यथा समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई। उसने नौ मास (साढे सात दिवस) परिपूर्ण होने पर यावत् सुंदर रूप युक्त बालक को जन्म दिया, जो सुकुमार तथा हाथी के तालु के समान सुकोमल था।

बारहवें दिन माता-पिता ने यह सोचते हुए कि यह हम पांच पांडवों का पुत्र तथा द्रौपदी का आत्मज है, इसलिए इसी के अनुरूप इसका नाम 'पांडुसेन' रखें।

ऐसा सोचकर उन्होंने उसका यह गुणानुरूप, गुण निष्पन्न नाम रखा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह क्रमशः बड़ा हुआ, बहत्तर कलाओं में पारंगत हुआ यावत् भोग समर्थ युवा हुआ यावत् उसे पांडवों ने युवराज पद पर अभिषिक्त किया यावत् वह अपने माता-पिता की छत्रछाया में सुख पूर्वक रहने लगा।

(२१७)

थेरा समोसढा परिसा णिग्गया। पंडवा णिग्गया धम्मं सोच्चा एवं वयासी-जं णवरं देवाणुप्पिया! दोवइं देविं आपुच्छामो पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामो। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - उस काल, उस समय स्थविर भगवंतों का पांडु मथुरा में आगमन हुआ। धर्म सुनने के लिए जन समुदाय आया। पांडव भी आए। धर्मोपदेश सुना। पांडवों ने धर्मोपदेश सुनकर स्थविर भगवंतों से निवेदन किया-देवानुप्रिय! हमें संसार से विरक्ति हुई है। अतः द्रौपदी देवी से पूछ कर पाण्डुसेनकुमार को राज्य सौंप कर, हम आपके पास मुंडित होकर, प्रव्रजित होना चाहते हैं।

स्थविर भगवंतों ने कहा-देवानुप्रियो! जिससे तुम्हें सुख उपजे वैसा करो।

(२१८)

तए णं से पंच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता दोवइं देविं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मे णिसंते जाव पव्वयामो, तुमं णं देवाणुप्पिए! किं करेसि? तए णं सा दोवई देवी ते पंच-पंडवे एवं वयासी-जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयह मम के अण्णे आलंबे वा जाव भविस्सइ? अहं पि य णं संसारभउव्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि।

भावार्थ - तब पांचों पांडव अपने भवन में आए। द्रौपदी देवी को बुलाया और कहा - देवानुप्रिये ! हमने स्थविर भगवंतों के पास धर्म सुना है। हमें वैराग्य हुआ यावत् हम प्रव्रजित होना चाहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवानुप्रिये! तुम क्या करना चाहती हो? तब द्रौपदी देवी ने पांडवों से कहा - देवानुप्रियो! यदि आप संसार-भय से उद्विग्न यावत् दुःखित होकर प्रव्रजित होना चाहते हैं तो फिर मेरे लिए क्या अवलम्बन यावत् सहारा होगा?

मैं भी जन्म-मरण के भय से उद्विग्न हूँ। आपके साथ ही प्रव्रज्या लूंगी।

पांडवों की सपत्नीक प्रव्रज्या

(२१६)

तए णं ते पंच-पंडवा० पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए जाव रज्जं पसाहेमाणे विहरइ। तए णं ते पंच-पंडवा दोवई य देवी अण्णया कयाइं पंडुसेणं रायाणं आपुच्छंति। तए णं से पंडुसेणे राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! णिक्खमणाभिसेयं जाव उवट्ठवेह पुरिससहस्सवाहिणीओ सिवियाओ उवट्ठवेह जाव पच्चोरुहंति जेणेव थेरा जाव आलित्ते णं जाव समणा जाया चोद्दस्स पुव्वाइं अहिज्जंति २ त्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

भावार्थ - तत्पश्चात् पांचों पांडवों ने युवराज पांडुसेन का राज्याभिषेक किया यावत् उसने राज्य संभाला यावत् राज्य का पालन करता हुआ वह सुखपूर्वक रहने लगा।

किसी समय पांचों पाडवों एवं द्रौपदी ने राजा पांडुसेन से प्रव्रजित होने की अनुज्ञा प्राप्त की। पांडुसेन राजा ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा-देवानुप्रियो! शीघ्र ही निष्क्रमणाभिषेक-दीक्षा-समारोह का आयोजन करो यावत् एक हजार पुरुषों द्वारा वहनीय शिविकाओं की व्यवस्था करो यावत् उन्होंने राजाज्ञा का पालन कर, पुनः सेवा में निवेदन किया।

पांचों पांडव स्थविर भगवंतों की सेवा में उपस्थित हुए यावत् उन्होंने उनसे निवेदन किया कि यह संसार दुःखों से प्रज्वलित है, हम प्रव्रजित होकर उससे छुटकारा पाना चाहते हैं यावत् पांचों पांडवों ने मुंडित-दीक्षित होकर श्रामण्य स्वीकार किया।

उन्होंने चवदह पूर्वों का अध्ययन किया। वे बहुत वर्षों तक द्विदिवसीय, त्रिदिवसीय, चतुर्दिवसीय, पंचदिवसीय, अर्द्धमासिक एवं मासिक आदि तपश्चरणों द्वारा आत्मानुभावित होते हुए विहरणशील रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२२०)

तए णं सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ जाव पव्वइया सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ० बहूणि वासाणि छट्ठट्ठ-मदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ।

भावार्थ - द्रौपदी देवी भी शिविका से उतरी यावत् प्रव्रज्या ग्रहण की एवं सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में समर्पित कर दी गई।

उसने एकादश अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक क्रमशः दो, तीन, चार एवं पांच दिनों की यावत् तपस्या करती हुई संयम का पालन करती रही।

(२२१)

तए णं थेरा भगवंतो अण्णया कयाई पंडुमहुराओ णयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

भावार्थ - इसके पश्चात् स्थविर भगवंतों ने पांडु मथुरानगरी के सहस्राम्रवन उद्यान से विहार किया तथा बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे।

पाण्डव मुनियों की भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन की अभीप्सा

(२२२)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमि जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सुरट्ठाजणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४-एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठणेमी सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ। तए णं से (ते) जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी- एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठणेमी पुव्वाणुपुव्विं जाव विहरइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं सेयं खलु अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदणाए गमित्तए। अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति २ त्ता थेरे भगवंते वंदंति णमंसंति वं० २ त्ता एवं वयासी-इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा। अरहं अरिट्ठणेमि जाव गमित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - उस काल, उस समय तीर्थंकर अरिष्टनेमि सौराष्ट्र जनपद में पधारे। वहाँ संयम एवं तप से आत्मानुभावित होते हुए विराजे। बहुत से लोग आपस में यों कहने लगे-देवानुप्रियो! अरहंत अरिष्टनेमि सौराष्ट्र जनपद में पधारे हुए हैं।

तब युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारों ने बहुत से लोगों को इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सुना। वे परस्पर मिले और आपस में कहने लगे - अरिष्टनेमि ग्रामानुग्राम विहार करते हुए सौराष्ट्र पधारे हैं। अतः यह हमारे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि हम स्थविर भगवंत से पूछ कर भगवान् अरिष्टनेमि के वंदन नमन हेतु जाएँ। उन्होंने परस्पर यह स्वीकार किया-सभी को यह उचित लगा।

वे स्थविर भगवंत के पास आए। उन्हें वंदन-नमन कर निवेदन किया-आपसे अनुज्ञापित होकर हम अरहंत अरिष्टनेमि के वंदन हेतु जाना चाहते हैं।

स्थविर भगवंत ने कहा - देवानुप्रियो! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो।

(२२३)

तए णं ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा थेरेहिं अब्भणुण्णाया समाणा थेरे भगवंते वंदंति णमंसंति वं० २ त्ता थेराणं अंतियाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता मासं मासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं गामाणुगामं दूईज्जमाणा जाव जेणेव हत्थकप्पे णयरे तेणेव उवागच्छंति० हत्थकप्पस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरंति।

भावार्थ - युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डव मुनियों ने स्थविर भगवंत से आज्ञा प्राप्त की। उनको वंदन, नमस्कार किया और वहाँ से प्रस्थान किया। निरंतर मासखमण तपश्चरण पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यावत् हस्तिकल्पनगर में पहुँचे। पहुँच कर नगर के बहिरवर्ती सहस्राम्रवन उद्यान में यावत् यथा कल्पनीय स्थान प्राप्त कर ठहर गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिरनार पर भगवान् अरिष्टनेमि का निर्वाण

(२२४)

तए णं ते जुहिट्ठिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा मासक्खमणपारणए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति बीयाए एवं जहा गोयमसामी णवरं जुहिट्ठिल्लं आपुच्छंति जाव अडमाणा बहुजणसद्दं णिसामेंति-एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठणेमि उज्जिंत सेलसिहरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए जाव पहीणे।

शब्दार्थ - उज्जिंत सेल सिहरे - गिरनार पर्वत के शिखर पर।

भावार्थ - तब युधिष्ठर के अतिरिक्त शेष चारों मुनियों ने मासखमण पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया। यहाँ अवशिष्ट वृत्तांत गौतम स्वामी की तरह ग्राह्य है। यहाँ इतनी विशेष बात है कि उन मुनियों ने अनगार युधिष्ठिर से भिक्षा की अनुज्ञा प्राप्त की यावत् उन्होंने भिक्षार्थ घूमते समय बहुतजनों को यह कहते हुए सुना कि भगवान् अरिष्टनेमि एक मास के निर्जल चौविहार तप पूर्वक पांच सौ छत्तीस मुनियों के साथ गिरनार पर्वत पर कालगत होकर यावत् समस्त कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं सर्व दुःख विरहित हो गए हैं।

(२२५)

तए णं ते जुहिट्ठिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हत्थकप्पाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव जुहिट्ठिल्ले अणगारे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भत्तपाणं पच्चुवेक्खंति २ त्ता गमणागमणस्स पडिक्कमंति २ त्ता एसणमणेसणं आलोएंति २ त्ता भत्तपाणं पडिदंसेंति २ त्ता एवं वयासी-

शब्दार्थ - पच्चुवेक्खंति - प्रत्यवेक्षण किया (अच्छी तरह से देखा)।

भावार्थ - युधिष्ठिर के सिवाय चारों मुनियों ने बहुत से लोगों को यह कहते सुना तो वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हस्तिकल्प नगर से बाहर निकले। सहस्राम्रवन उद्यान में आए। वहाँ मुनि युधिष्ठिर के पास गए। आहार-पानी का प्रत्यवेक्षण किया। गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। एषणा-गवेषणा की, आलोचना की। मुनि युधिष्ठिर को आहार-पानी दिखलाया। दिखला कर यों बोले।

(२२६)

एवं खलु देवाणुप्पिया! जाव कालगए। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! इमं पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्ठवेत्ता सेत्तुंजं पव्वयं सणियं २ दुरुहित्तए संलेहणाए झुसणासियाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए - त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति २ त्ता जेणेव सेत्तुंजे पव्वए तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सेत्तुंजं पव्वयं सणियं २ दुरूहंति० जाव कालं अणवकंखमाणा विहरंति।

शब्दार्थ - झूसणा - आराधना।

भावार्थ - देवानुप्रिय! हमने भिक्षार्थ घूमते हुए सुना यावत् भगवान् अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर कालगत हो गए हैं, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए हैं। देवानुप्रिय! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि पूर्वगृहीत-अभी लाए हुए आहार-पानी को परठ कर धीरे-धीरे शत्रुंजय पर्वत पर चढ़ें। वहाँ मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए, संलेखना-तप की आराधना से कषायों और देह को क्षीण करते हुए साधनारत रहें। उन सबने परस्पर यों विचार कर इसे स्वीकार किया और उन्होंने पूर्वगृहीत आहार-पानी को एकांत में परठा। तत्पश्चात् वे शत्रुंजय पर्वत के पास आए। उस पर चढ़े यावत् संलेखणा, तपश्चरण में लीन रहते हुए, मृत्यु की कामना न करते हुए, आत्मोपासना में निरत रहे।

पांडवों की सिद्धगति

(२२७)

तए णं ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्ण परियागं पाउणित्ता दोमासियाए संलेहणाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्ताणं झोसित्ता जस्सट्ठाए किरइ णग्गभावे जाव तमट्ठमाराहेंति २ त्ता अणंते जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे जाव सिद्धा।

भावार्थ - इस प्रकार युधिष्ठिर आदि पांचों पांडव अनगार जिन्होंने सामायिक आदि ग्यारह अंग एवं चतुर्दश पूर्वों का अध्ययन किया, बारह वर्ष पर्यंत श्रामण्य पर्याय का पालन किया, दो मास की संलेखना पूर्वक आत्मा को कषाय रहित करते हुए, जिस प्रयोजन से निर्ग्रन्थ भाव-श्रामण्य जीवन स्वीकार किया जाता है, उस लक्ष्य की आराधना कर उन्होंने अनंत यावत् उत्तम केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त किया यावत् वे सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गए।

आर्या द्रौपदी का देवलोक गमन

(२२८)

तए णं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ २ त्ता बहूणि वासाणि सा० मासियाए संलेहणाए आलोइय पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववण्णा।

भावार्थ - आर्या द्रौपदी ने आर्या सुव्रता के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्ष पर्यन्त श्रामण्य पर्याय-साधुत्व का पालन कर, एक मास की संलेखना पूर्वक, आलोचना-प्रत्यालोचन कर देह त्याग किया और ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में उत्पन्न हुई।

(२२९)

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं दुवइ(य)स्स(वि)देवस्स दस-सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता! से णं भंते! दुवए देवे तओ जाव महाविदेहे वासे जाव अंतं काहिइ।

भावार्थ - उस ब्रह्मलोक में कतिपय देवों की दस सागरोपम की स्थिति बतलाई गई है। देव रूप में उत्पन्न द्रौपदी के जीव-द्रुपद देव की भी दस सागरोपम स्थिति बतलाई गई है। गौतम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया - भगवन्! वह द्रुपद देव ब्रह्मलोक से च्यवन कर कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान् महावीर ने फरमाया कि वह ब्रह्मलोक स्वर्ग में यावत् आयु, स्थिति एवं भवक्षय कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा यावत् वहाँ कर्मक्षय कर, वह मोक्ष प्राप्त करेगा।

(२३०)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सोलहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने उनसे श्रवण किया, वैसा तुम्हें बतला रहा हूँ।

उवणय गाहाउ - सुबहुं पि तव किलेसो णियाणदोसेण दूसिओ संतो।
ण सिवाय दोवईए जह किल सुकुमालियाजम्मे॥१॥
अमणुण्णमभत्तीए पत्ते दाणं भवे अणत्था य।
जह कडुयतुंबदाणं णागसिरिभवंमि दोवईए॥२॥

॥ सोलसमं अज्झयणं समत्तं॥

उपनय गाथाएं - अत्यधिक तपः क्लेश - घोर तप भी निदान करने से दूषित हो जाता है। जैसे द्रौपदी के रूप में जन्म लेने से पूर्व सुकुमालिका द्वारा किया गया घोर तप भी निदान के कारण कल्याणकारी सिद्ध नहीं हुआ॥१॥

दुर्भावना और श्रद्धाहीनता पूर्वक दिया गया दान अनर्थ के लिए होता है। जैसे द्रौपदी के जीव ने नागश्री के भव में दुर्भावना पूर्वक कडुवे तूंबे का दान दिया॥२॥

॥ सोलहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आइण्णे णामं सत्तरसमं अज्झयणं

आकीर्ण नामक सतरहवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं० सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सत्तरसमस्स० णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासित किया - भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सोलहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ आख्यात किया है तो कृपया बतलाएं, उन्होंने सतरहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ फरमाया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे णामं णयरे होत्था वण्णओ। तत्थ णं कणगकेऊ णामं राया होत्था वण्णओ।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया - हे जंबू! उस काल, उस समय हस्तिशीर्ष नामक नगर था। नगर का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है। वहाँ कनककेतु नामक राजा था। राजा का वर्णन भी औपपातिक सूत्र से यहाँ योजनीय है।

समुद्री यात्रा में उत्पात

(३)

तत्थ णं हत्थिसीसे णयरे बहवे संजुत्ताणावावाणियगा परिवसंति अड्ढा जाव बहूजणस्स अपरिभूया यावि होत्था। तए णं तेसिं संजुत्ता-णावावाणियगाणं अण्णया कयाइ एगयओ (सहियाणं) जहा अरहण्णओ(ए) जाव लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - संजुत्ता णावावाणियगा - नौकाओं, जहाजों द्वारा देशांतर में व्यापार करने वाले वणिक।

भावार्थ - उस हस्तिशीर्ष नामक नगर में बहुत से सांयात्रिक व्यापारी निवास करते थे। वे बहुत ही धनाढ्य थे यावत् प्रभावशाली थे, जिससे कोई उनकी अवहेलना करने में समर्थ नहीं थे। वे व्यापारी किसी समय एकत्र हुए-परस्पर मिले। यहाँ अर्हन्नक का वर्णन इस संबंध में योजनीय है यावत् सैंकड़ों योजन तक लवण समुद्र को पार कर गए।

(४)

तए णं तेसिं जाव बहूणि उप्पाइयसयाइं जहा मार्कदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ समुत्थिए। तए णं सा णावा तेणं कालियवाएणं आघोलि-(घुणि)ज्जमाणी २ संचालिज्जमाणी २ संखोहिज्जमाणी २ तत्थेव परिभमइ। तए णं से णिज्जामए णट्ठमईए णट्ठसुईए णट्ठसण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था ण जाणइ कयरं (देसं वा) दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए - त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।

शब्दार्थ - णट्ठमईए - नष्ट बुद्धि, **सुईए -** श्रुति-नौका को खेने का कौशल, **सण्णे -** संज्ञा-होश-हवास, **अवहिय -** अपहृत-ले जाया गया।

भावार्थ - उस समुद्री यात्रा के मध्य यावत् सैंकड़ों उत्पात उत्पन्न हो गए। एतद्विषयक वर्णन भयानक तूफान उठा तक, माकंदी पुत्रों के वृत्तान्त के तुल्य है, यहाँ ग्राह्य है।

उस तूफान के कारण उन सामुद्रिक वणिकों की नौका पानी में डूबती-उतराती, चलित-परिचलित होती, संक्षुब्ध होती हुई वहीं एक ही स्थान पर डोलने लगी। तब नौका के खिवैयों (निर्यामकों) की बुद्धि नष्ट हो गई। उनका कौशल मिट गया। वे होश-हवास खो बैठे। वे दिग्भ्रांत हो गए। उन्हें यह ज्ञान नहीं रहा कि उनका पोत किस देश, दिशा या विदिशा की ओर तूफान द्वारा ले जाया जा रहा है। ऐसी स्थिति में उनका मनः संकल्प भग्न हो गया यावत् दुःखित होकर चिंतामग्न हो गए।

(५)

तए णं ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भि(ब्भे)ल्लगा य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजुत्तणावावाणियगा य जेणेव से णिज्जामए तेणेव उवागच्छंति २ त्ता एवं वयासी-किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायसि? तए णं से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! णट्ठमईए जाव अवहिए त्तिकट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि।

भावार्थ - उस समय नौका चालन में निर्यामक के सहयोगी विभिन्न कार्यवाहक पुरुष तथा सांयात्रिक व्यापारी, जहाँ वह निर्यामक था, वहाँ आए और बोले-देवानुप्रिय! तुम्हारा मन व्यथित और खिन्न क्यों है? तुम आर्त्तध्यान क्यों कर रहे हो?

इस पर निर्यामक ने उन सबसे कहा - देवानुप्रियो! मेरी बुद्धि जरा भी इस भीषण तूफान के अवसर मर काम नहीं कर रही है यावत् तूफान इस पोत को कहाँ लिए जा रहा है, मुझे मालूम नहीं। यही सोचकर मेरा मन दुःखित है यावत् मैं चिंतातुर हूँ।

(६)

तए णं ते कण्णधारा तस्स णिज्जामयस्संतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म भीया० ण्हाया कयबलिकम्मा करयल बहूणं इंदाण य खंदाण य जहा मल्लिणाए जाव उवायमाणा २ चिट्ठंति।

शब्दार्थ - उवायमाणा - मनौती करते हुए।

भावार्थ - निर्यामक से यह सुनकर वे सभी लोग भयभीत एवं उद्विग्न हो गए। उन्होंने स्नान किया, मांगलिक कृत्य किए। हाथ जोड़, मस्तक पर अंजलि किए बहुत से इन्द्र देवों, स्कन्धों आदि को स्मरण करते हुए मनौती मनाने लगे। यहाँ का विस्तृत वर्णन मल्लि अध्ययन से ग्राह्य है।

अकस्मात कालिकद्वीप पहुँचने का संयोग

(७)

तए णं से णिज्जाए तओ मुहुत्तंतरस्स लद्धमईए ३ अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था। तए णं से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! लद्धमईए जाव अमूढदिसाभाए जाए। अम्हे णं देवाणुप्पिया! कालियदीवंतेणं संवूढा। एस णं कालियदीवे आलोक्कइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - संवूढा - पहुँच गए हैं।

भावार्थ - कुछ ही देर में निर्यामक की बुद्धि, श्रुति और संज्ञा यथावत् जागरूक हुए। उसका दिग्भ्रम मिट गया। उस निर्यामक ने उन सभी नौका चालन के सहयोगियों और पोत व्यापारियों से कहा - देवानुप्रियो! अब मेरी बुद्धि पूर्ववत् हो गई है यावत् अब मुझे दिशाओं का भ्रम नहीं रहा है। हम कालिक द्वीप के पास पहुँच गए हैं। यह देखों सामने कालिक द्वीप दिखलाई दे रहा है।

(८)

तए णं ते कुच्छिधारा य ४ तस्स णिज्जामगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठा पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालीयदीवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पोयवहणं लंबेतिं २ त्ता एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तरंति।

भावार्थ - तब वे कुक्षिधार आदि निर्यामक के सभी सहयोगी जन एवं सांयात्रिक वृंद यह सुनकर बहुत ही हर्षित हुए, संतुष्ट हुए। दक्षिण दिशावर्ती अनुकूल हवा की सहायता से कालिक द्वीप के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अपने जहाज के लंगर डाले और नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतरे।

(९)

तत्थ णं बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरागरे य बहवे तत्थ आसे पासंति किं ते? हरिरेणुसोणिसुत्तगा आइण्णवेढो। तए णं ते आसा ते वाणियए पासंति तेसिं गंधं अग्घायंति० भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। ते णं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।

शब्दार्थ - रयणागरे - रत्नों की खानें, **वइरागरे** - हीरों की खानें, **हरिरेणुसोणिसुत्तगा**- हरे नीले रंग की मृत्तिका के सदृश रंग तथा बच्चों की कमर में बांधे जाने वाले काले रंग के धागे के सदृश बहुरंगी धारियों से युक्त, **आइण्णवेढो** - अश्वों का वृत्तांत।

भावार्थ - उस कालिक द्वीप में उन्होंने बहुत सी रजत, स्वर्ण, रत्न तथा हीरों की खानें देखी यावत् बहुत से घोड़ों को देखा। उन घोडों के शरीर पर हरी, नीली, काली इत्यादि बहुरंगी धारियाँ थी। अश्व विषयक विस्तृत वर्णन अन्यत्र दृष्टव्य है। उन घोड़ों ने व्यापारियों को देखा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूर से ही उनकी गंध का अनुभव किया। वैसा करते ही वे भीत, त्रस्त एवं अत्यंत उद्विग्न होकर वहाँ से भाग छूटे, अनेक योजन पार कर गए। जहाँ पहुँचे, वहाँ विशाल गोचर भूमि, कोमल मुलायम घास एवं पानी का प्राचुर्य था। वे घोड़े वहाँ सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

विवेचन - इस सूत्र में जिन अश्वों का वर्णन आया है, वे किस जाति या वंश के थे, यह मूल पाठ से स्पष्ट नहीं होता है। अब तक हुई व्याख्याओं में भी स्पष्टीकरण नहीं हो सका है। आचार्य अभयदेव सूरि ने **'आइण्णवेढा'** आकीर्ण वेष्ट को अन्य स्थान से उद्धृत करते हुए इस संबंध में उल्लेख किया है कि वे घोड़े नीले, काले, हरे, श्वेत, लाल आदि अनेक रंगों की धारियों वाले थे। अंत में उन्होंने यह भी उल्लेख किया है -

'गमनिका मात्र मतदस्य वर्णकस्य, भावार्थस्तु बहुश्रुत बोध्यः' - अर्थात् यहाँ गमनिका - वर्णक का शब्दार्थ मात्र है, भावार्थ तो बहुश्रुत विद्वानों द्वारा गम्य है।

आचार्य अभयदेव सूरि द्वारा किए गए इस उल्लेख से यह व्यक्त होता है कि स्वयं उनको भी गमनिका के अर्थ से पूर्ण संतोष न रहा हो। अन्यथा उसे वे 'बहुश्रुत बोध्य' क्यों कहते?

जहाँ वे सांयात्रिक वणिक पहुँचे, उस द्वीप में उन्हें वे घोड़े मिले। जो ऐसे थे कि मनुष्यों को देखते ही चौंक उठे, दूर से ही उनकी गंध मात्र से अत्यंत भयभीत, व्याकुल एवं उद्विग्न होते हुए भाग छूटे। इससे यह प्रतीत होता है कि वे जंगलों में रहने वाले घोड़े थे। मनुष्यों के साथ रहने वाले पालतू नहीं। घोड़ों की विविधता का जो उल्लेख हुआ है उसका यथार्थ आशय यह प्रतीत होता है कि उन घोड़ों के शरीर पर बहुरंगी धारियाँ थीं। वे अनेक जातियों के न होकर एक ही जंगली जाति के धारीदार घोड़े थे।

अंग्रेजी भाषा में प्रचलित जेब्रा (ZEBRA) शब्द से सूचित अश्व सदृश प्राणी से वे तुलनीय हैं। जेब्रा की भी लगभग ऐसी ही प्रकृति होती है, जैसी प्रस्तुत सूत्र में घोड़ों की प्रकृति का उल्लेख हुआ है।

इसी अध्ययन में आगे के सूत्रों में सांयात्रिक वणिकों की सूचना पर हस्तीशीर्ष नगर के राजा द्वारा उन घोड़ों को प्रयत्न पूर्वक मंगवाने का वर्णन है। उनको लुभाने की बहुविध सामग्री के साथ राजपुरुष वहाँ पहुँचे तो उनमें से कुछ ही उनकी पकड़ में आ पाए। उनको नगर में लाकर राजाज्ञा से प्रशिक्षित करने का विविध कष्ट पूर्ण लम्बा प्रयास किया गया, तब कहीं वे सामान्य घोड़ों की स्थिति में आए। इससे यह ओर भी स्पष्ट होता है कि वे घोड़े जेब्रा जैसी किसी जंगली जाति के थे।

यह प्रसंग अनुसंधायक विद्वानों के लिए अन्वेषण-गवेषण का विषय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(१०)

तए णं ते संजुत्ता णावावाणियगा अण्णमण्णं एवं वयासी-किण्हं अम्हे देवाणुप्पिया! आसेहिं? इमे णं बहवे हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वइरागरा य। तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वइरस्स य पोयवहणं भरित्तए - त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वइरस्स य तणस्स य कट्ठस्स य अण्णस्स य पाणियस्स य पोयवहणं भरेंति २ त्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीर पोयवहण पट्टणे तेणेव उवागच्छंति २ पोयवहयणं लंबेति २ त्ता सगडी सागडं सज्जेंति २ त्ता तं हिरण्णं जाव वइरं च एगट्ठियाहिं पोयवहणाओ संचारेंति २ त्ता सगडीसागडं संजोइंति० जेणेव हत्थिसीसए णयरे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता हत्थि-सीसयस्स णयरस्स बहिया अग्गुजाणे सत्थणिवेसं करेंति २ त्ता सगडी सागडं मोएंति २ त्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति २ त्ता हत्थि सीसं च णयरं अणुप्पविसंति २ त्ता जेणेव से कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाव उवणेंति।

भावार्थ - तब उन सांयात्रिक व्यापारियों ने परस्पर यों कहा - देवानुप्रियो! हमें इन अश्वों से क्या प्रयोजन है? ये बहुत सी चांदी, सोने, रत्न की खानें सामने हैं। अच्छा यही है हम इनमें से चांदी, सोने, रत्न एवं हीरों से जहाज को भरले। सभी ने इस बात को स्वीकार किया और उन्होंने चांदी, सोने, रत्न एवं हीरों से तथा तृण, अन्न, काष्ठ तथा पानी से जहाज को भरा। अनुकूल दक्षिण वायु चलने पर रवाना हुए। चलते-चलते गंभीर पोतवहन पट्टन बंदरगाह पर पहुँचे। वहाँ आकर जहाज के लंगर डाले। गाड़े-गाड़ियाँ तैयार करवाए। चांदी यावत् हीरे आदि को जहाज से नौकाओं में उतारा। नौकाओं को किनारे पर लाकर उनसे गाड़े-गाड़ियों में उनको भरा। ऐसा कर वे हस्तिशीर्ष नगर के पास पहुँचे। नगर के बहिर्वर्ती प्रमुख उद्यान में उन्होंने पड़ाव डाला। गाड़े-गाड़ियाँ खोली यावत् बहुमूल्य, राजा योग्य भेंट लेकर वे हस्तिशीर्ष नगर में प्रविष्ट हुए।

राजा कनककेतु की सेवामें पहुँचे यावत् उन्हें बहुमूल्य उपहार भेंट किए।

(११)

तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजुत्ताणावावाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - राजा कनककेतु ने उन व्यापारियों की महत्त्वपूर्ण यावत् बहुमूल्य भेंट को स्वीकार किया।

(१२)

पडिच्छित्ता ते संजुत्ताणावावाणियगा एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! गामागर जाव आहिंडह लवण समुद्दं च अभिक्खणं २ पोय वहणेणं ओगाह-(हे)ह, तं अत्थियाइं केइ भे कहिं चि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे? तए णं ते संजुत्ताणा-वावाणियगा कणगकेउं एवं वयासी-एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया! इहेव हत्थिसीसे णयरे परिवसामो तं चेव जाव कालियदीवंतेणं संछूढा। तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव बहवे तत्थ आसे किं ते? हरिरेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। तए णं सामी! अम्हेहिं कालिय दीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठपुव्वे।

भावार्थ - राजा ने उन सांयात्रिक नौका वणिकों से कहा - देवानुप्रियो! तुम लोग अनेक गांव, नगर यावत् भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमते रहे हो, लवण समुद्र को बार-बार अवगाहित करते रहे हो। क्या कहीं तुमने कोई विलक्षण आश्चर्य देखा?

तब उन व्यापारियों ने राजा कनककेतु से कहा - देवानुप्रिय! हम इसी हस्तिशीर्ष नगर में निवास करते हैं। यहाँ से हम समुद्री यात्रा करते हुए यावत् भयानक समुद्री तूफान का सामना करते हुए कालिक द्वीप पहुँच गए। वहाँ हमने स्वर्ण, चांदी एवं हीरों की बहुत सी खानें देखी तथा बहुत से अश्व भी देखे, जिनके शरीर पर हरी, काली, नीली धारियाँ थीं यावत् उन अश्वों ने ज्यों ही हमें देखा, हमारी गंध पाकर योजनों पर्यंत दौड़ पड़े। स्वामी! हमने कालिक द्वीप में उन घोड़ों के रूप में विलक्षण आश्चर्य देखा।

(१३)

तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजुत्तगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा ते संजुत्तए एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मम कोडुंबिय पुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह। तए णं ते संजुत्तावाणिबगा कणगकेउं एवं वयासी-एवं सामित्ति कट्टु आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तब राजा कनककेतु ने सांयात्रिकों का यह कथन सुनकर उनसे कहा - देवानुप्रियो! तुम मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिक द्वीप से उन घोड़ों को लाओ।

तब व्यापारियों ने 'स्वामी! ऐसा ही करेंगे' कहकर राजाज्ञा को स्वीकार किया।

(१४)

तए णं से कणगकेऊ कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संजुत्तएहिं (णावावाणियएहिं) सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह। तेवि पडिसुणेंति। तए णं ते कोडुंबिय० सगडीसागडं सज्जेंति २ त्ता तत्थ णं बहुणं वीणाण य वल्लकीण य भामरीण य कच्छभीण य भमाण य छब्भामरीण य विचित्तवीणाण य अण्णेसिं च बहूणं सोइंदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी सागडं भरेंति।

शब्दार्थ - **सोइंदिय पाउग्गाणं** - कानों को प्रिय लगने वाले।

भावार्थ - राजा कनककेतु ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा - देवानुप्रियो! तुम इन सांयात्रिक व्यापारियों के साथ कालिक द्वीप जाकर अश्वों को लाओ। उन्होंने राजाज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने गाड़े-गाड़ी तैयार किए। उनमें वल्लकी, भ्रामरी, कच्छपी, बंभा, षट्भ्रामरी आदि विभिन्न प्रकार की वीणाएं तथा और बहुत प्रकार के श्रोत्रेन्द्रिय प्रायोग्य-कानों को सुख प्रदान करने वाले द्रव्यों, पदार्थों को गाड़ी-गाड़ों में रखा।

(१५)

भरित्ता बहूणं किण्हाण य जाव सुक्किलाण य कट्ठकम्माण य ४ गंथिमाण ४ जाव संघाइमाण य अण्णेसिं च बहूणं चक्खिंदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति २ त्ता बहूणं कोट्ठपुडाण य केयइपुडाण य जाव अण्णेसिं च बहूणं घाणिंदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी सागडं भरेंति २ त्ता बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए य पुप्फुत्तरपउमुत्तर० अण्णेसिं च जिब्भिंदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी सागडं भरेंति २ त्ता अण्णेसिं च बहूणं कोयवया(वा)ण य कंबलाण य पावरणा (वारा) ण य णवतयाण य मलयाण य मसूराण य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिलावट्टाण य जाव हंस गब्भाण य अण्णेसिं च फासिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं जाव भरेंति।

शब्दार्थ - खंडस्स - खांड, **गुलस्स** - गुड़, **मच्छंडियाए** - कालपी मिश्री, **पुप्फुत्तर-पउमुत्तर** - विविध प्रकार के गुलकंद, **कोय वयाण** - रुई से बने वस्त्र, **पावरणाण** - चद्दरें, **णवतयाण** - ऊन की बनी काठियाँ, **मलयाण** - मलयदेश में निर्मित वस्त्र विशेष, **मसूराण**-मसनद-गोलाकार आसन विशेष, **सिलावट्टाण** - पट्टों के आकार की चिकनीशिलाएं, **हंस गब्भाण**-रेशम के कीड़ों से बने श्वेत वस्त्र, **फासिंदिय पाउग्गाणं** - स्पर्शनेन्द्रिय के प्रयोग में आने वाले।

भावार्थ - उन्होंने फिर काले यावत् सफेद आदि बहुत रंगों के काष्ठ कर्म-काष्ठ पट्टों पर, कागजों पर बनाए गए चित्र, मृतिका से बनाए गए विभिन्न आकार यावत् ग्रथित, वेष्टित, संघातित-विविध प्रकार से योजित चक्षु इन्द्रियों के लिए रुचिकर विभिन्न द्रव्यों से गाड़ी-गाड़े भरे। फिर उन्होंने कोष्ठ, केतकी यावत् विविध पदार्थों के परिपाक द्वारा तैयार किए गए, घ्राणेन्द्रियों को प्रिय लगने वाले सौगंधिक द्रव्य गाड़े-गाड़ियों में रखे।

पुनश्च बहुत सी खांड, गुड़, शक्कर, मिश्री, कालपी मिश्री, विविध प्रकार के गुलकंद आदि और भी बहुत से रसनेन्द्रिय को प्रिय लगने वाले द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे।

वैसा करने के उपरांत उन्होंने रुई से बने वस्त्र, कंबल, ओढने के चद्दर, ऊन की बनी काठिया-जीन, मलय देश में निर्मित वस्त्र विशेष मसनद, चिकने सिलापट्टक यावत् रेशम के कीड़ों से बने श्वेत वस्त्र तथा और भी स्पर्शनेन्द्रिय को मनोज्ञ प्रतीत होने वाले द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में लादे।

(१६)

भरित्ता सगडी सागडं जोएंति २ त्ता जेणेव गंभीरए पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति० सगडी सागडं मोएंति २ त्ता पोयवहणं सज्जेंति २ त्ता तेसिं उक्किट्ठाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव अण्णेसिं च बहूणं पोयवहण पाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति।

शब्दार्थ - समियस्स - आटा, **गोरसस्स** - गोघृत आदि।

भावार्थ - उपर्युक्त सभी द्रव्यों से भरे हुए उन गाड़ी-गाड़ों को जोता। जोतकर जहाँ गंभीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामक बंदरगाह था, वहाँ पहुँचे। गाड़ी-गाड़ों को खोला। जहाज को सुसज्ज-तैयार किया। उन उत्तम शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध विषयक पदार्थों को तथा ईंधन, तृण, पानी चावल, आटा तथा घृत यावत् और भी बहुत सी यात्रोपयोगी वस्तुएं जहाज में रखी।

(१७)

भरित्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पोयवहणं लंबेति २ त्ता ताइं उक्किट्ठाइं सद्दफरिसरसरूवगंधाइं एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तारेंति २ त्ता जहिं जहिं च णं ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्टंति वा तहिं २ च णं ते कोडुंबिय पुरिसा ताओ वीणाओ य जाव विचित्त वीणाओ य अण्णाणि बहूणि सोइंदिय पाउग्गाणि य दव्वाणि समुदी(दी)रेमाणा चिट्ठंति तेसिं च परिपेरंतेणं पालए ठवेंति० णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

शब्दार्थ - **तुयट्टंति** - थकान मिटाने हेतु भूमि पर लोटना, **समुद्दीरेमाणा** - मधुर ध्वनि से बजाते हुए, **परिपेरंतेणं** - चारों ओर, **पासए** - जाल।

भावार्थ - जहाज को भरकर दक्षिण दिशा से चलने वाली अनुकूल हवा के साथ आगे बढ़ते हुए वे कालिक द्वीप पहुँचे। वहाँ जहाज के लंगर डाले। उन उत्तम शब्द, रस, स्पर्श, रूप गंध युक्त पदार्थों को नौकाओं से कालिक द्वीप पर उतारा फिर जहाँ-जहाँ वे घोड़े, बैठते, सोते, खड़े होते, जमीन पर लोटते, वहाँ-वहाँ वे कौटुंबिक पुरुष यावत् विविध प्रकार की वीणाओं तथा अन्य बहुत से श्रुतिप्रिय तथा कर्ण प्रिय वाद्यों को मधुर ध्वनि से बजाने लगते। वहाँ चारों और जाल बिछा दिए। वे निश्चल, निष्पंद, हलन-चलन रहित, चुपचाप वहाँ स्थित हुए।

(१८)

जत्थ जत्थ ते आसा आसयंति वा जाव तुयट्टंति तत्थ २ णं ते कोडुंबिया बहूणि किण्हाणि य ५ कट्ठकम्माणि य जाव संघाइमाणि य अण्णाणि य बहूणि चक्खिंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेंति तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति २ त्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार जहाँ वे घोड़े बैठते यावत् जमीन पर लौटते, वहाँ-वहाँ उन कौटुंबिक पुरुषों ने बहुत से कृष्ण, नील आदि विविध रंगों में काष्ठ पर बनाए गए चित्रांकन यावत् संघातिम आदि और भी अनेक प्रकार के आँखों को प्रिय लगने वाली वस्तुएं वहाँ रख दी। उनके चारों ओर जाल फैला दिए तथा वे निश्चल, निष्पद, निःशब्द होकर, वहाँ छिप कर बैठ गए।

(१६)

जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा तेसिं बहूणं कोट्ठपुडाण य अण्णेसिं च घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेंति २ त्ता तेसिं परिपेरंते जाव चिट्ठंति।

शब्दार्थ - **णियरे** - निकर (बिखरे हुए समूह)

भावार्थ - जहाँ-जहाँ वे घोड़े बैठते, सोते, खड़े होते या जमीन पर लोटते वहाँ वहाँ कौटुंबिक पुरुषों ने बहुत से कोष्ठपुट आदि घ्राणेन्द्रियों को प्रिय लगने वाले सुगंधित पदार्थों के ढेर फैला दिए। वहाँ जाल बिछा दिए यावत् वे छिप कर चुपचाप बैठ गए।

(२०)

जत्थ णं ते आसा आसयंति ४ तत्थ-तत्थ गुलस्स जाव अण्णेसिं च बहूणं जिब्भिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेंति २ त्ता वियरए खणंति २ त्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स पोरपाणगस्स अण्णेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेंति २ त्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति जाव चिट्ठंति।

शब्दार्थ - **वियरए** - खड्डे, **पोरपाणगस्स** - गन्ने का रस।

भावार्थ - जहाँ-जहाँ वे घोड़े बैठते-खड़े होते या जमीन पर लोटते, वहाँ-वहाँ कौटुंबिक पुरुषों ने गुड़ यावत् खांड, मिश्री आदि रसनेन्द्रिय को स्वादिष्ट लगने वाले द्रव्य ढेर के ढेर बिखेर दिए।

ऐसा कर उन्होंने खड्डे खोदे। उन खड्डों को गुड़ के पानी, खांड के पानी, गन्ने के रस तथा और भी बहुत प्रकार के पेय पदार्थों से भर दिया। उनके चारों ओर जाल लगा दिए तथा पूर्ववत् निश्चल, निष्पंद बैठ गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२१)

जहिं जहिं च णं ते आसा आस० तहिं तहिं च णं ते बहवे कोयवया जाव सिलावट्टया अण्णाणि य फासिंदियपाउग्गाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेंति २ त्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिट्ठंति।

भावार्थ - जहाँ-जहाँ वे घोड़े बैठते, सोते, खड़े होते, जमीन पर लौटते वहाँ-वहाँ उन्होंने बहुत से रूई के वस्त्र यावत् चिकने शिलापट्टक तथा अन्य बहुत से स्पर्शनेन्द्रियों के लिए सुखप्रद आस्तरण, प्रत्यास्तरण स्थापित किए। उनके चारों ओर भी जाल बिछा दिए यावत् वे पूर्ववत् स्थित हो गए।

(२२)

तए णं ते आसा जेणेव ते उक्किट्ठा सद्दफरिसरसरूवगंधा तेणेव उवागच्छंति०। तत्थ णं अत्थेगइया आसा अपुव्वा णं इमे सद्दफरिस-रसरूवगंधा तिकट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सद्दफरिसरसरूवगंधेसु अमुच्छिया ४ तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द जाव गंधाणं दूरंदूरेणं अवक्कमंति ते णं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।

भावार्थ - तदनंतर वे घोड़े जहाँ आए, जहाँ उत्तम शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध युक्त वस्तुएं रखी थीं। ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध मय पदार्थ हमने पहले कभी नहीं देखे, पहले कभी अनुभव नहीं किया, न जाने कैसे हैं, यह सोचकर कतिपय उन उत्तम शब्दादि पदार्थों में मूर्च्छित, लोलुप और आसक्त नहीं हुए। उन उत्तम शब्द यावत् गंध मय पदार्थों से बहुत दूर रहते हुए वहीं चले गए जहाँ बड़े-बड़े गोचर थे, घास और जल था। वहाँ वे भय रहित और अनुद्विग्न होते हुए सुखपूर्वक विचरने लगे।

(२३)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा सद्दफरिसरसरूवगंधा णो सज्जइ से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे जाव वीईवइस्सइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आयुष्मन् श्रमणो! जो निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थिणी गण शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध में आसक्त नहीं होते हैं, वे इस लोक में बहुत से श्रमणों-श्रमणियों-श्रावकों-श्राविकाओं के लिए अर्चनीय-पूजनीय होते हैं यावत् संसार रूपी भयानक जंगल को पार कर जाते हैं।

(२४)

तत्थ णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठा सद्दफरिसरसरूवगंधा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तेसु उक्किटठेसु सद्देसु ५ मुच्छिया जाव अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता यावि होत्था। तए णं ते आसा ते उक्किट्ठे सद्दे ५ आसेवमाणा तेहिं बहूहिं कूडेहि य पासेहि य गलएसु य पाएसु य बज्झंति।

भावार्थ - उनमें से कतिपय घोड़े, जहाँ उत्तम शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध पूर्ण पदार्थ थे, वहाँ गए। वे उनमें मोहित यावत् आसक्त हो गए, उनका सेवन करने में प्रवृत्त हुए। उन उत्तम शब्द-स्पर्श-रस-रूप एवं गंधमय पदार्थों का आस्वाद लेते हुए उन घोड़ों में कुछेक की गर्दनें कुछेक के पैर फंस गए। कौटुंबिक पुरुषों ने उन्हें पकड़ लिया।

(२५)

तए णं ते कोडुंबिया ते आसे गिण्हंति २ त्ता एगट्ठियाहिं पोयवहणे संचारेंति २ त्ता तणस्स कट्ठस्स जाव भरेंति। तए णं ते संजुत्ता (णावावाणियगा) दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीर पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पोयवहणं लंबेंति २ त्ता ते आसे उत्तारेंति २ त्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव वद्धावेंति० ते आसे उवणेंति। तए णं से कणगकेऊ राया तेसिं संजुत्तावाणियगाणं उस्सुक्कं वियरइ २ त्ता सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - तदनंतर उन कौटुबिक पुरुषों ने उन घोड़ों को अपने साथ लिया, नौकाओं में डाला फिर जहाज पर चढ़ाया। जहाज में तृण, काष्ठ यावत् यात्रोपयोगी आवश्यक सामान भरा। फिर वे सांयात्रिक नौका वणिक दक्षिण दिशा से चलती हुई अनुकूल वायु के साथ आगे बढ़ते हुए गंभीर नामक बंदरगाह पर पहुँचे। जहाज के लंगर डाले। घोड़ों को उतारा। हस्तिशीर्षनगर में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा कनककेतु के पास उपस्थित हुए। उन्हें हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि बांधकर नमन कर वर्धापित किया, जयनाद किया तथा घोड़े सौंपे।

तब राजा कनककेतु ने सांयात्रिक वणिकों का शुल्क माफ कर दिया, सत्कारित-सम्मानित कर विदा किया।

(२६)

तए णं से कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - तदनंतर राजा कनककेतु ने उस कौटुंबिक पुरुषों को, जिन्हें कालिकद्वीप भेजा था उन्हें बुलवाया, सत्कृत-सम्मानित किया एवं जाने की आज्ञा दी।

(२७)

तए णं से कणगकेऊ राया आसमद्दए सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम आसे विणएह। तए णं ते आसमद्दगा तहत्ति पडिसुर्णेति २ त्ता ते आसे बहूणिं मुहबंधेहि य कण्णबंधेहि य णासाबंधेहि य वालबंधेहि य खुरबंधेहि य कडगबंधेहि य खलिणबंधेहि य अहिलाणेणबंधेहि य पडियाणेहि य अंकणाहि य (वेलप्पहारेहि य) वित्तप्पहारेहि य लयप्पहारेहि य कसप्पहारेहि य छिवप्पहारेहि य विणयंति० कणगकेउस्स रण्णो उवर्णेति।

शब्दार्थ - **विणएह** - प्रशिक्षित करो, **आसमद्दगा** - अश्व शिक्षक, **कडग** - कमर, **खलिण** - लगाम, **अहिलाणेण** - जीन द्वारा, **पडियाणेहि** - जीन को नीचे से बांधने का चमड़े का पट्टा, **अंकणाहि** - लोहे आदि की गर्म शलाखों से दागकर, **वित्त** - बेंत, **कस** - कोड़ा, **छिव** - चमड़े का चिकना कोड़ा।

भावार्थ - राजा कनककेतु ने अश्व शिक्षकों को बुलाया, बुलाकर कहा - देवानुप्रियो! तुम मेरे अश्वों को विनीत, शिक्षित करो। अश्व प्रशिक्षकों ने जैसी आपकी आज्ञा-यों कहकर राजाज्ञा स्वीकार की।

उन्होंने अनेक प्रकार से घोड़ों के मुंह, कान, नाक, पूंछ के बाल, खुर, कमर आदि बांधे, उनके लगामें लगाई, जीनें लगाई तथा उन्हें चमड़े के पट्टों से कमर पर बांधा, लौह आदि की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्म सलाखों से उन्हें दागा। बेंतों, लताओं, कोड़ों, चमड़े के चिकने चाबुकों से उन्हें पीट-पीटकर प्रशिक्षित किया। और ले जाकर राजा को सौंपा।

(२८)

तए णं से कणगकेऊ ते आसमद्दए सक्कारेइ २ पडिविसज्जेइ। तए णं ते आसाबहूहिं मुहबंधेहि य जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीरमाणसाइं दुक्खाइं पावेंति।

भावार्थ - तदनंतर राजा कनककेतु ने उन अश्व प्रशिक्षकों का सत्कार सम्मान किया। फिर उन्हें विदा किया।

इस प्रकार वे घोड़े मुख बंध यावत् चमड़े के चाबुक आदि के प्रहार से शारीरिक एवं मानसिक कष्ट पाते रहे।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा पव्वइए समाणे इट्ठेसु सद्दफरिसरसरूवगंधेसु सज्जइ रज्जइ गिज्झइ मुज्झइ अज्झोववज्जइ से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं जाव सावियाण य हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टिस्सइ।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमणो! जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गंध रूप भोगों में आसक्त, अनुरक्त, लोलुप, मोहित एवं संलग्न होते हैं, वे इस लोक में बहुत से श्रमण-श्रमणियों यावत् साधु-साध्वियों द्वारा अवहेलनीय, तिरस्करणीय होते हैं यावत् वे संसार में भटकते रहते हैं।

(३०)

गाहा - कलरिभियमहुरतंतीतलतालवंसक उहाभिरामेसु।
सद्देसु रज्जमाणा रमंति सोइंदियवसट्टा॥१॥
सोइंदियदुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
दीविगरुयमसहंतो वह बंधं तित्तिरो पत्तो॥२॥
थणजहणवयणकरचरण णयण गव्वियविलासियगईसु।
रूवेसु रज्जमाणा रमंति चक्खिंदियवसट्टा॥३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्खिंदियदुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं जलणंमि जलंते पडइ पयंगो अबुद्धीओ॥४॥
अगरुवरपवरधूवण उउयमल्लाणु-लेवण-विहीसु।
गंधेसु रज्जमाणा रमंति घाणिंदियवसट्टा॥५॥
घाणिंदियदुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं ओसहि गंधेणं बिलाओ णिद्धावई उरगो॥६॥
तित्त कडुयं कसायं महुरं बहुखज्जपेज्जलेज्झेसु।
आसायंमि उ गिद्धा रमंति जिब्भिंदियवसट्टा॥७॥
जिब्भिंदियदुद्दंतत्तणस्स अह एतिओ हवइ दोसो।
जंगललग्गुक्खित्तो फुरइ थलविरेल्लिओ मच्छो॥८॥
उउभय माणसुहेसु य सविभवहिययमणणिव्वुइकरेसु।
फासेसु रज्जमाणा रमंति फासिंदियवसट्टा॥ ९॥
फासिंदियदुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहकुंसो तिक्खो॥१०॥
कलरिभियमहुर तंतीतलतालवंसककुहाभिरामेसु।
सद्देसु जे ण गिद्धा वसट्ट मरणं ण ते मरए॥११॥
थणजहण वयणकरचरणणयणगव्विय विलासियगईसु।
रूवेसु जे ण रत्ता वसट्टमरणं ण ते मरए॥१२॥
अगरुवरपवरधूवणउउयमल्लाणु-लेवण-विहीसु।
गंधेसु जे ण गिद्धा वसट्टमरणं ण ते मरए॥१३॥
तित्तकडुयं कसायं महुरं बहुखज्जपेज्जलेज्झेसु।
आसायंमि ण गिद्धा वसट्टमरणं ण ते मरए॥१४॥
उउभयमाण सुहेसु य सविभवहिययमण-णिव्वुइकरेसु।
फासेसु जे ण गिद्धा वसट्टमरणं ण ते मरए॥१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सद्देसु य भद्दयपावएसु सोयविसयं उवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया ण होयव्वं॥१६॥
रूवेसु य भद्दयपावएसु चक्खुविसयं उयगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया ण होयव्वं॥१७॥
गंधेसु य भद्दयपावएसु घाणविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया ण होयव्वं॥१८॥
रसेसु य भद्दय पावएसु जिब्भविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया ण होयव्वं॥१९॥
फासेसु य भद्दयपावएसु कायविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया ण होयव्वं॥२०॥

शब्दार्थ - कउह - ककुद-प्रधान, **दीविग** - पिंजरे में बंधी तीतरी, **दुद्दंतत्तणस्स** - दुर्दंतता-अविजेयता, **उउय** - ऋतुज-विभिन्न ऋतुओं में होने वाले, **अगरु** - विशेष गंध युक्त द्रव्य, **बिलाओ** - बिल से, **णिड्डावई** - निकल पड़ता है, **लेज्झेसु** - लेह्य-चाटने योग्य पदार्थों में, **भयमाण** - भज्यमाण-प्राप्त होने वाले, **सविभव** - संपत्तिशाली, **णिव्वुइकरेसु** - सुख प्रद।

भावार्थ - जो श्रोत्रेन्द्रिय के वश में होते हैं, वे वीणा आदि तन्तु वाद्य तल-ताल, मृदंग आदि तालवाध, बांसुरी आदि मुंह की हवा से बजाए जाने वाले वाद्यों के सुंदर, सुखद, मधुर अभिराम शब्दों में अनुरक्त रहते हुए, उनमें रमण करते हैं, उनका आनंद लेते हैं॥ १॥

श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्जेयता का बहुत बड़ा दोष होता है। व्याध (शिकारी पारधि) के पिंजरे में बंधी तीतरी के मोहक शब्द को सहन न करता हुआ, उससे पराङ्मुख न रहता हुआ, उस ओर बढ़ता हुआ तीतर बंधन और वध को प्राप्त होता है॥२॥

चक्षु - इन्द्रिय के वशवर्ती लोग स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर तथा नेत्रादि के सौंदर्य से गर्वित विलासिनी नारियों के रूप में राग रंजित होकर रमण करते हैं॥३॥

चक्षु इन्द्रिय की दुर्जेयता अत्यंत दोष उत्पन्न करती है। जैसे बुद्धि हीन पतंगिया जलती हुई अग्नि में पड़कर अपने प्राण गंवा देता है। उसी प्रकार चक्षु-इन्द्रिय के वशवर्ती मनुष्य अत्यंत कष्ट पाते हैं, अपना सर्वस्व गंवा बैठते हैं॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घ्राणेन्द्रिय के वशवर्ती लोग अगर, उत्तम, श्रेष्ठ धूप, विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न पुष्पों की मालाएं तथा चंदन आदि लेप प्रभृति सुगंधमय साधनों में अनुरंजित रहते हैं और उनके सेवन में बड़ा आनंद मानते हैं॥ ५॥

घ्राणेन्द्रिय की दुर्दांतता - अपरिजेय सुरभि, लोलुपता अत्यंत दोषोत्पादक है। उदाहरणार्थ सुगंधि में आसक्त होकर जब साँप बिल से निकल पड़ता है तो वह गारुड़िकों द्वारा पकड़ लिया जाता है, कष्ट पाता रहता है॥६॥

रसनेन्द्रिय के वशीभूत जन तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल तथा मधुर खाद्य, पेय लेह्य पदार्थों के आस्वादन में मूर्च्छित बने रहते हैं, उनका उपभोग करते रहने में बड़ा सुख मानते हैं॥७॥

रसनेन्द्रिय की दुर्जेयता के कारण बड़ा ही क्लेशमय दोष उत्पन्न हो जाता है। जैसे मछुए द्वारा खाद्य पदार्थ से आच्छन्न फेंका गया कांटा गले में फंस जाने से बाहर जमीन पर लाई गई मछली तड़फ-तड़फ कर प्राण गवां देती है। उसी प्रकार रसलोलुपी घोर दुःख पाते हैं॥८॥

स्पर्शनेन्द्रिय के वश में आर्त्त बने हुए समृद्धिशाली लोग विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले भोगों में अनुरंजित होते हुए उनमें रमण करते रहते हैं॥६॥

स्पर्शनेन्द्रिय की दुर्दमनीयता अत्यंत कष्टप्रद, दोषमय प्रतिफलित होती है। जैसे वन में स्वच्छंद विहरणशील हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वश में होकर जब हथिनी में मूर्च्छित, मोहाविष्ट होकर पकड़ लिया जाता है तब पराधीन होकर वह महावत के लौह के अंकुश से मस्तक में दी जाने वाली पीड़ा से दुःखित होता है॥१०॥

जो सुंदर, मनोज्ञ, मधुर वीणा आदि तन्तुवाद्य, मृदंग आदि तालवाद्य तथा मुख वायु द्वारा बजाई जाने वाले बांसुरी आदि के उत्तम, मनोहर शब्दों में, ध्वनि में मूर्च्छित नहीं होते, वे श्रोत्रेन्द्रिय लोलुपता जनित कष्टमय मृत्यु नहीं पाते॥११॥

जो स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर तथा नेत्र सौंदर्य में गर्वान्वित विलास प्रवण नारियों में आसक्त नहीं होते, वे चक्षु-इन्द्रिय की लोलुपता से होने वाली दुःख पूर्ण मौत नहीं मरते॥१२॥

जो उत्तम श्रेष्ठ धूपादि पदार्थों, विविध ऋतुओं में प्राप्यपुष्पों की माला तथा चंदनादि लेप जनित गंध में गृद्ध-मोहाविष्ट नहीं होते, वे घ्राणेन्द्रिय लोलुपता जनित मारणांतिक कष्ट नहीं पाते॥१३॥

जो तिक्त, कषाय, अम्ल, मधुर खाद्य पेय और लेह्य पदार्थों के आस्वादन में अत्यासक्त नहीं होते, वे रसनेन्द्रिय वशार्त्तता के परिणाम स्वरूप होने वाला दुःखद मरण नहीं पाते॥१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो विभिन्न ऋतुओं में प्राप्य, हृदय को सुख देने वाले स्पर्श-जन्य भोगों में लिप्त नहीं रहते, वे आर्त्तध्यानमय शोकान्वित मृत्यु प्राप्त नहीं करते॥१५॥

श्रमण को चाहिए कि वह भद्र अनुकूल-भक्ति पूर्ण श्रोत्र विषयों में कभी भी परितोष न माने और अशुभ, अश्रद्धामय वचनों को सुनने पर कभी भी रुष्ट न हों॥१६॥

साधु शुभ या अशुभ चक्षु विषयों के प्राप्त होने में न तो कभी संतुष्ट ही हों और न कभी दुःखित ही हो॥१७॥

साधु मनोज्ञ-अमनोज्ञ, घ्राणेन्द्रिय संबंधी पदार्थों के प्राप्त होने पर न तो कभी संतुष्ट ही हों और न कभी रूष्ट या उद्विग्न ही बनें॥१८॥

श्रमणों को चाहिए कि वे रसना के अनुकूल शुभ, सुखद पदार्थों के प्राप्त होने पर कभी भी सुख या संतोष का अनुभव न करें तथा प्रतिकूल पदार्थ प्राप्त करने पर कभी रोष न करें॥१९॥

साधु को जब स्पर्शनेन्द्रिय संबंधी अनुकूल विषय-पदार्थ स्वायत्त हों (प्राप्त हों) तो उन्हें सुखाचित या परितोषान्वित नहीं होना चाहिए तथा न तद्विपरीत पदार्थों की प्राप्ति पर दुःखान्वित ही अनुभव करना चाहिए॥२०॥

(३१)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने यावत् जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया, सतरहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ बतलाया है। जैसा मैंने श्रवण किया, वैसा ही कहता हूँ।

उवणय गाहाओ -

जह सो कालियदीवो अणुवमसोक्खो तहेव जइधम्मो।
जह आसा तह साहू वणियव्वऽणुकूलकारिजणा॥१॥
जह सद्दाइ अगिद्धा पत्ता णो पासबंधणं आसा।
तह विसएसु अगिद्धा बज्झंति ण कम्मणा साहू॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जह सच्छंद विहारी आसाणं तह य इह वरमुणीणं।
जरमरणाइं विवज्जिय संपत्ताणंदणिव्वाणं॥३॥
जह सद्दाइसु गिद्धा बद्धा आसा तहेव विसयरया।
पावेंति कम्म बंधं परमासुहकारणं घोरं॥४॥
जह ते कालियदीवा णीया अण्णत्थ दुहगणं पत्ता।
तह धम्मपरिब्भट्ठा अधम्मपत्ता इहं जीवा॥५॥
पावेंति कम्मणरवइवसया संसार वाहयालीए।
आसप्पमद्दएहि व णेरइयाइहिं दुक्खाइं॥६॥

॥ सत्तरसमं अज्झयणं समत्तं॥

उपनय गाथाओं का भावार्थ - जैसा कालिक द्वीप था, वैसा ही अनुपम सुखमय साधु धर्म है। जिस तरह वहाँ घोड़े थे, उसी प्रकार साधु हैं। जो अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं, वे वणिकजनों की तरह हैं अर्थात् उन्होंने घोड़ों के स्वतंत्र जीवन में बाधा उत्पन्न नहीं की॥१॥

जो घोड़े शब्द आदि में अमूर्च्छित, अलोलुप बने, वे जाल या फंदे के बंधन में नहीं आए। उसी प्रकार जो साधु विषयों में अलोलुप, अनासक्त बने रहते हैं, वे कर्मों के बंधन में नहीं पड़ते॥२॥

जो लोलुप नहीं बने वे घोड़े कालिकद्वीप में स्वच्छंदता पूर्वक विचरण करते रहे। उसी प्रकार भोग में अलोलुप श्रेष्ठ साधु जरा, मृत्यु को जीत कर परम निर्वाण प्राप्त करते हैं॥३॥

शब्दादि में मूर्च्छित बने घोड़ों की तरह जो साधु विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे कर्मों के बंधन में पड़ते रहते हैं, जो घोर दुःख का कारण है॥४॥

कालिक द्वीप से लाए गए घोड़े घोर अनर्थ और दुःख में पड़े, उसी तरह जो जीव धर्म से भ्रष्ट होकर अधर्म में संलग्न हो जाते हैं, वे राजा द्वारा मर्दित, पीड़ित, उद्वेलित घोड़ों की तरह कर्म रूपी राजा के कारण नारकीय आदि घोर दुःखों को पाते हैं॥५, ६॥

॥ सतरहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुंसुमा णामं अट्ठारसमं अज्झयणं
सुंसुमा नामक अठारहवाँ अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं० सत्तरसमस्स (णायज्झयमस्स) अयमट्ठे पण्णत्ते अट्ठारसमस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - श्री जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासित किया कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सतरहवें ज्ञाताध्ययन का इस रूप में विवेचन किया है तो अठारहवें अध्ययन का उन्होंने किस प्रकार प्रतिपादन किया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था वण्णओ। तत्थ णं धण्णे णामं सत्थवाहे भद्दा भारिया। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंच सत्थवाहदारगा होत्था तंजहा-धणे धणपाले धणदेवे धणगोवे धणरक्खिए। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा णामं दारिया होत्था सूमाल पाणिपाया। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चिलाए णामं दासचेडे होत्था अहीणपंचिंदियसरीरे मंसोवचिए बालकीलावण कुसले यावि होत्था।

भावार्थ - सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन यहाँ औपपातिक सूत्र के अनुसार ग्राह्य है। वहाँ धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था।

धन्यसार्थवाह के भद्रा की कोख से उत्पन्न धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप तथा धन रक्षित नामक पांच लड़के थे।

उसके पांच पुत्रों के पश्चात् भद्रा से उत्पन्न सुंसुमा नामक पुत्री थी। वह हाथ-पैर आदि से सर्वांग सुन्दर एवं संपन्न थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन्य सार्थवाह के चिलात नामक दास पुत्र था। वह परिपूर्ण पंचेन्द्रिय युक्त एवं हृष्ट-पुष्ट देह वाला था। बच्चों को खिलाने-क्रीड़ा करवाने में विशेष निपुण था।

दासपुत्र का उद्दण्ड स्वभाव

(३)

तए णं से दास चेडे सुंसुमाए दारियाए बालग्गाहे जाए यावि होत्था सुंसुमं दारियं कडीए गिण्हइ २ त्ता बहूहि दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं अभिरममाणे २ विहरइ।

शब्दार्थ - बालग्गाहे - बच्चों को खिलाने का कार्य।

भावार्थ - वह दास पुत्र बालिका सुंसुमा को खिलाने के लिए नियुक्त किया गया। सुंसुमा बालिका को कमर में लेता-गोदी में लेता, बहुत से बालक-बालिकाओं, बच्चे-बच्चियों के साथ खेलता हुआ रहता।

(४)

तए णं से चिलाए दास चेडे तेसिं बहुणं दारयाण य ६ अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ एवं वट्टए आडोलियाओ तिंदूसए पोत्तुल्लए साडोल्लए अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ अप्पेगइए आउसइ एवं अवहसइ णिच्छोडेइ णिब्भच्छेइ तज्जेइ अप्पेगइए तालेइ।

शब्दार्थ - खुल्लए - कौड़ियाँ, **वट्टए** - लाख से निर्मित गोले, **आडोलियाओ** - आडोलिया संज्ञक खिलौने, **तिंदूसए** - बड़ी गेंदें, **पोत्तुल्लए** - कपड़े की गुड़ियाँ, **साडोल्लए** - उत्तरीय वस्त्र, **आउसइ** - निष्ठुर वचनों से आक्रोश करता, **णिच्छोडेइ** - डराता, धमकाता, **णिब्भच्छेइ** - भर्त्सना करता, **तज्जेइ** - तर्जित करता, **तालेइ** - ताड़ित करता।

भावार्थ - वह दासपुत्र उन बहुत से कुमारों-कुमारियों में से कईयों की कौड़ियाँ, कुछेक के लाख के गोले, कतिपय के आडोलिक नामक खिलौने, गेंदे, कपड़े से बनी गुड़िया, उत्तरीय वस्त्र छीन लेता। किन्हीं पर कड़े वचनों से आक्रोश दिखाता। किसी पर हंसता कईयों को डराता, धमकाता, तर्जित करता तथा ताड़ित भी करता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन्य सार्थवाह को उपालंभ

(५)

तए णं ते बहवे दारगा य ६ रोयमाणा य ५ साणं साणं अम्मापिऊणं णिवेदेंति। तए णं तेसिं बहूणं दारगाण य ६ अम्मापियरो जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंटणाहि य उवालंभणाहि य खिज्जमाणा य रुंटमाणा य उवालंभेमाणा य धण्णस्स स० एयमट्ठं णिवेदेंति।

शब्दार्थ - **खिज्जणियाहिं** - खेदयुक्त वचनों द्वारा, **रुंटणाहि** - रुआँसे होते हुए।

भावार्थ - बहुत से बालक-बालिकाएँ, बच्चे-बच्चियाँ, कुमार-कुमारिकाएं रोते हुए दुःखित होते हुए, आँसू बहाते हुए, विलाप करते हुए, अपने-अपने माता-पिता से यह कहते-शिकायत करते।

तब उनके माता-पिता धन्य सार्थवाह के पास आते और सार्थवाह को बड़े ही खेद जनक, दुःख युक्त शब्दों में सारी बातें बतलाते।

(६)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे चिलायं दासचेडं एयमट्ठं भुज्जो-भुज्जो णिवारेइ णो चेव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ। तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारगाण य ६ अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ।

शब्दार्थ - **उवरमइ** - उपरत हुआ।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने दासपुत्र - चिलात को इस कार्य से बार-बार निवारित किया, रोका किन्तु दासपुत्र ने वह शरारत नहीं छोड़ी। इस प्रकार वह दास पुत्र उन बालक-बालिकाओं, बच्चे-बच्चियों आदि के खिलौने पूर्ववत् चुराता रहता यावत् उन्हें ताड़ित करता रहता।

(७)

तए णं ते बहवे दारगा य ६ रोयमाणा य जाव अम्मापिऊणं णिवेदेंति। तए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं ते आसुरुत्ता ५ जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता बहूहिं खिज्जणाहि य जाव एयमट्ठं णिवेदेंति।

भावार्थ - तब उन बहुत से बच्चे-बच्चियों ने पूर्ववत् रोते हुए अपने माता-पिता से शिकायत की। उनके माता-पिता एकाएक क्रोध, रोष एवं कोप से प्रचण्ड हो गए। वे तमतमाते हुए धन्य सार्थवाह के घर पहुँचे। उसको पूर्ववत् बड़े ही खेद पूर्ण शब्दों में यावत् दास पुत्र की शरारत बतलाई।

निष्कासित दासपुत्र का कुसंगति में पड़ना

(८)

तए णं से धण्णे २ बहूणं दारगाणं ६ अम्मापिऊणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते चिलायं दासचेडं उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ उद्धंसइ णिब्भच्छेइ णिच्छोडेइ तज्जेइ उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ साओ गिहाओ णिच्छुभइ।

शब्दार्थ - **उद्धंसइ** - कठोर शब्दों में डांटा।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह उन बच्चे-बच्चियों के माता-पिता का कथन सुनकर तत्काल बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने उस दास पुत्र को ऊंचे-नीचे शब्दों में, आक्रोश पूर्वक कड़े शब्दों में डांटा, धमकाया, तर्जित किया और अनेक प्रकार से ताड़ित किया तथा घर से निकाल दिया।

(९)

तए णं से चिलाए दास चेडे साओ गिहाओ णिच्छूढे समाणे रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव पहेसु देव कुलेसु य सभासु य पवासु य जूयखलएसु य वेसाघर एसु य पाणघरएसु य सुहं सुहेणं परिवट्टइ। तए णं से चिलाए दास चेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी मज्जप्पसंगी चोज्जप्पसंगी (मंस०) जूयप्पसंगी वेसप्पसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - **जूयखलएसु** - जूए के अड्डों में, **पाणघरएसु** - पानगृह-मदिरालयों में, **अणोहट्टिए** - निरंकुश, **सइरप्पयारी** - स्वच्छंद विहारी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - फिर वह दासपुत्र सार्थवाह द्वारा अपने घर से निकाल दिए जाने पर राजगृह नगर के तिराहों यावत् पथों, मार्गों, गलियों आदि में देवालयों, सभा स्थानों, प्रपाओं, द्यूतगृहों में, वेश्याओं के कोठों में तथा मदिरालयों में यथेच्छ-जहाँ चाहे, भटकने लगा।

इस प्रकार वह दासपुत्र चिलात् निरंकुश, अनिवारित, स्वच्छंद, उच्छृंखलता पूर्वक विहरणशील, मदिरा पायी, चोरी में निरत, मांस भोजी, वेश्या एवं परस्त्रीगामी हो गया।

चोराधिपति विजय तथा उसका दुर्जेय अड्डा

(१०)

तए णं रायगिहस्स णयरस्स अदूरसामंते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए सीहगुहा णामं चोरपल्ली होत्था विसमगिरिकडगको(डं)लंबसण्णिविट्ठा वंसीकलंक पागारपरिक्खित्ता छिण्णसेलविसमप्पवायफरिहोवगूढा एगदुवारा अणेगखंडी विदितजण-णिग्गमप्पवेसा अब्भिंतरपाणिया सुदुल्लभजलपेरंता सुबहुस्सवि कूवियबलस्स आगयस्स दुप्पहंसा यावि होत्था।

शब्दार्थ - **चोरपल्ली** - चोरों का अड्डा, **गिरिकडगकोलंब** - पर्वत के मध्यवर्ती भाग के किनारे पर, **वंसीकलंक** - बांसों का समूह, **छिण्ण** - अनेक भागों में बंटे हुए, **पवाय** - गड्ढा, **फरिहोवगूढा** - खाई से घिरी हुई, **अणेगखंडी** - रक्षा निमित्त निर्मित अनेक स्थान, **कूवियबलस्स**- चोरों की खोज में आई हुई सेना का, **दुप्पहंसा** - जिसको ध्वस्त न किया जा सके।

भावार्थ - उस समय राजगृह नगर से न अधिक दूर न अधिक समीप दक्षिण पूर्व दिशा-आग्नेय कोण में सिंह गुफा नामक चोरपल्ली थी। वह ऊंचे-नीचे पर्वत के मध्यवर्ती भाग के किनारे पर स्थित थी। उसके चारों ओर उगे हुए बांसों का समूह ही उसे परकोटे के रूप में घेरे हुए था। अनेक भागों में बंटे हुए पर्वत के मध्यवर्ती स्थानों में विद्यमान गड्ढे ही उसकी खाई थी। उसमें आने जाने हेतु एक ही दरवाजा था। वह रक्षार्थ बनाए हुए अनेक छोटे-छोटे स्थानों से निर्मित थी। भली भांति परिचितजनों का ही उसमें आना-जाना संभव था। उसके भीतर ही जल व्यवस्था थी।

उसके बाहर पानी दुर्लभ था। वह इतनी सुरक्षित थी कि चोरों की खोज में आई हुई बड़ी सेना द्वारा भी उसका ध्वस्त किया जाना संभव नहीं था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(११)

तत्थ णं सीहगुहाए चोरपल्लीए विजय णामं चोरसेणावई परिवसइ अहम्मिए जाव अहम्मकेऊ समुट्ठिए बहुणगर-णिग्गयजसे सूरे दढप्पहारी साहसीए सद्दवेही। से णं तत्थ सीहगुहाए चोर पल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं जाव विहरइ।

शब्दार्थ - अहम्मकेऊ - अधर्म की ध्वजा।

भावार्थ - उस सिंह गुफा नामक चोर पल्ली में विजय नामक चोरों का सरदार रहता था। वह बड़ा ही अधार्मिक यावत् घोर हिंसक था, मानों वह पाप की ऊंची ध्वजा हो। बहुत नगरों में उसके चौर्य कौशल का यश व्याप्त था। वह बहादुर, दृढ़ प्रहारी, दुःसाहसी एवं शब्द सुनकर बाण चलाने में निपुण था। उस सिंह गुफा नामक-चोर पल्ली में पांच सौ चोरों का आधिपत्य करता हुआ रहता था।

(१२)

तए णं से विजय तक्करे (चोर) सेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण य बालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अण्णेसिं च बहूणं छिण्णभिण्ण बाहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था।

शब्दार्थ - **गंठिभेयगाण** - गांठ काटने वालों का, **संधिच्छेयगाण** - सेंध लगाने वालों का, चोरी के लिए दीवार में छेद करने वाले, **अणधारगाण** - ऋणधारकों का, **वीसंभ** - विश्वास, **खंडरक्खाण** - भूमाफियों का, **छिण्णभिण्ण बाहिराहयाणं** - हाथ, पैर, कान, नाक आदि काटकर देश-निर्वासितों का, **कुडंगे** - आश्रयदाता।

भावार्थ - वह चोर सेनापति विजय तस्कर बहुत से चोरों, परस्त्रीगामियों, ग्रंथि भेदकों, सेंधमारों-भित्तिछेदकों, राज्यापराधियों, कर्जदारों, बाल हत्यारों, विश्वासघातियों, जुआरियों, भूमाफियों तथा हस्त-पाद-कर्ण-नासिक छेद पूर्वक देशनिष्कासितों के लिए शरणदाता था।

(१३)

तए णं से विजय (तक्करे) चोर सेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमं जणवयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहूहि गामघाएहि य णगरघाएहि य गोग्गहणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य उवीलेमाणे २ विद्धंसेमाणे २ णित्थाणं णिद्धणं करेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - **बंदिग्गहणेहि** - लोगों को बंदी बनाकर, **पंथकुट्टणेहि** - राहगीरों को कूट-पीटकर, **णित्थाणं** - निःस्थान-स्थान रहित, **णिद्धणं** - निर्धन।

भावार्थ - वह चोर सेनापति राजगृह नगर के अग्निकोण में स्थित जनपद के अन्तवर्ती ग्रामों, नगरों को उजाड़ देता। गायों को चुरा लेता। लोगों का अपहरण कर लेता। राहगीरों को मार-पीटकर लूट लेता। दीवालों में छेद कर, चोरी कर लेता। इस प्रकार वह विनाश का कहर ढहाता हुआ लोगों को स्थान रहित, धन रहित करता रहता।

चिलात का चोर पल्ली में आश्रय, प्राधान्य

(१४)

तए णं से चिलाए दासचेडे रायगिहे णयरे बहूहिं अत्थाभिसंकीहि य चोज्जाभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूइकरेहि य परब्भवमाणे २ रायगिहाओ णगरीओ णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ २ त्ता विजयं चोर सेणावइं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

शब्दार्थ - **अत्थाभिसंकीहि** - धन चुरा लिए जाने की शंका से युक्त, **चोज्जाभिसंकीहि**- भविष्य में चोरी की आशंका से युक्त, **दाराभिसंकीहि** - स्त्रियों से दुराचरण की शंका से युक्त, **उवसंपज्जित्ताणं** - चोरपल्ली में आश्रय पाकर।

भावार्थ - तत्पश्चात् राजगृह नगर में दास पुत्र चिलात् द्वारा धन चुराए जाने से आकुल, भविष्य में उसकी चोरी से आशंकित, स्त्रियों से दुराचार की शंका से युक्त, जिनका पैसा नहीं चुकाया, ऐसे धनी जुआरियों से वह पराभव तिरस्कार पाता हुआ, राजगृह नगर से निकल पड़ा। वह पूर्वोक्त सिंह गुफा स्थित चोर पल्ली में पहुँचा तथा विजय चोर की शरण प्राप्त कर रहने लगा।

(१५)

तए णं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणावइस्स अग्गे असिलट्ठिग्गाहे जाए यावि होत्था। जाहे वि य णं से विजए चोर सेणावई गामघायं वा जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंथकोट्टिं वा काउं वच्चइ ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडें सुबहुंपि (हु) कूवियबलं हयमहिय जाव पडिसेहेइ (२) पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लिं हव्वमागच्छइ।

शब्दार्थ - **असिलट्ठिग्गाहे** - प्रमुख खडग एवं यष्टिधारी, **वच्चइ** - व्रजति-जाता है, **हयमहिय** - मार डालता, ध्वस्त कर डालता, **अणहसमग्गे** - मार्ग में निर्विघ्नतया।

भावार्थ - दासपुत्र चिलात चोर सेनापति विजय के मुखिया के रूप में खडग और यष्टिका हाथ में लिए आगे चलता। जहाँ भी चोर सेनापति गांवों को उजाड़ने यावत् नगरादि को नष्ट करने, राहगीरों को कूट-पीटकर धन लूटने के कार्य से निकलता, तब वह दासपुत्र चिलात चोरों की खोज करने आए नगर रक्षकों को हताहत कर देता यावत् उन्हें प्रवेश से रोक देता। फिर वह अपना कार्य सिद्ध कर निर्विघ्नतया रास्ता पार कर सिंहगुफा नामक उस चोर पल्ली में शीघ्र ही आ जाता।

(१६)

तए णं से विजए चोर सेणावई चिलायं तक्करं बहूओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य चोरणिगडीओ य सिक्खावेइ।

भावार्थ - चोर सेनापति विजय ने चिलात तस्कर को बहुत से चोर विद्याएं, चोर मंत्र चोरी विषयक मायाचार तथा उसे छिपाने के लिए छल प्रयोग सिखलाए।

विजय की मृत्यु : चिलात उत्तराधिकारी

(१७)

तए णं से विजए चोर सेणावई अण्णया कयाइं कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था। तए णं ताइं पंच-चोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया २ इड्ढी सक्कारसमुदएणं णीहरणं करेंति २ त्ता बहूणं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेंति २ त्ता जाव विगयसोया जाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - **णीहरणं** - श्मशान भूमि में ले जाना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - किसी समय चोराधिपति विजय मरण को प्राप्त हुआ। तब उसके अनुयायी पांच सौ चोरों ने विजय सेनापति का बड़ी ही ऋद्धि-सत्कार के साथ दाह संस्कार किया एवं अन्य मृतक संबंधी कार्य किए। तदुपरांत बीतते समय के साथ वे शोक रहित हो गए।

(१८)

तए णं ताइं पंचचोरसयाइं अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! विजय चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते। अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूओ चोरविज्जाओ य जाव सिक्खाविए। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! चिलायं तक्करं सीहगुहाए चोर पल्लीए चोर सेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए - त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता चिलायं (तीए) सीह गुहाए (चोर पल्लीए) चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति। तए णं से चिलाए चोर सेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ।

भावार्थ - तदनंतर पांच सौ चोर आपस में मिले और परस्पर बोले - देवानुप्रियो! हमारा सेनापति विजय कालधर्म को प्राप्त हो गया है। इस चिलात तस्कर को हमारे सेनापति ने बहुत सी चोर विद्याएं यावत् मायाचार, छलकपट सिखला दिए थे। अतः यही उचित होगा कि हम चिलात को इस चोर पल्ली का सेनापति अभिषिक्त करें - इसे सेनापति बना लें। वे सभी इस पर सहमत हो गए और चिलात का सिंह गुफा चोरपल्ली के सेनापति के रूप में चयन किया।

यों चिलात चोर सेनापति बन गया। वह अति पाप पूर्ण यावत् दुष्टता पूर्ण चौर्य कर्म आदि करता हुआ रहने लगा।

(१९)

तए णं से चिलाए चोर सेणावई चोरणायगे जाव कुंडगे यावि होत्था। से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाण य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स णयरस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लं जणवयं जाव णित्थाणं णिद्धणं करेमाणे विहरइ।

भावार्थ - चोर सेनापति चिलात यावत् बांस समूह के प्राकार आदि से परिवृत्त होता हुआ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहने लगा। वह सिंह गुफा चोरपल्ली के पाँच सौ चोरों का आधिपत्य करने लगा। यहाँ विजय चोर विषयक चोरी के कार्यकलापों का वर्णन योजनीय है यावत् वह राजगृह नगर के दक्षिण पूर्वी जनपद में लूटमार करता हुआ यावत् लोगों को धन एवं घर से रहित करता हुआ, पापकृत्य में संलग्न रहा।

धन्य सार्थवाह को लूटने की योजना

(२०)

तए णं से चिलाए चोर सेणावई अण्णया कयाइ विपुलं असणं ४ उवक्खडावेत्ता ते पंच चोरसए आमंतेइ तओ ण्हाए कयबलिकम्मे भोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विपुलं असणं ४ सुरं च जाव पसण्णं च आसाएमाणे ४ विहरइ जिमियभुत्तुत्तरागए ते पंच चोरसए विपुलेणं धूवपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता एवं वयासी -

भावार्थ - चोर सेनापति चिलात ने किसी एक दिन प्रचुर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तैयार करवाए। पाँच सौ चोरों को आमंत्रण भेजा। तत्पश्चात् वह स्नान, नित्य नैमित्तिक बलिकर्म आदि से निवृत्त हुआ।

पाँच सौ चोरों के साथ भोजन मंडप में विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य, सुरा यावत् विभिन्न प्रकार की मदिराओं का आस्वादन लिया। भोजन करने के पश्चात् उन पाँच सौ चोरों को धूप, गंध, मालाओं, अलंकारों से सत्कारित, सम्मानित किया एवं उनसे इस प्रकार कहा।

(२१)

एवं खलु देवाणुप्पिया! रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे अड्ढे तस्स णं धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा णामं दारिया (यावि) होत्था अहीणा जाव सुरूवा, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! धणस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंपामो, तुब्भं विपुले धणकणग जाव सिलप्पवाले ममं सुंसुमा दारिया। तए णं ते पंच चोरसया चिलायस्स० पडिसुणेंति।

शब्दार्थ - विलुंपामो - लूटें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - देवानुप्रियो! राजगृह नगर में अत्यंत धनी धन्य नामक सार्थवाह है। उसके पांच पुत्रों के अनंतर, भार्या भद्रा से उत्पन्न सुंसुमा नामक पुत्री है। वह सर्वांग सुंदरी यावत् अत्यधिक रूपवती है। देवानुप्रियो! चलो, धन्य सार्थवाह के घर को लूटें। तुम लोग विपुल धन, सुवर्ण यावत् रत्नादि लेना। मैं सुंसमा कन्या को लूंगा।

इस प्रकार उन पाँच सौ चोरों ने नायक चिलात के कथन को स्वीकार किया।

(२२)

तए णं से चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहि चोरसएहिं सद्धिं अल्लचम्मं दुरूहइ २ पच्चावरण्हकालसमयंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सण्णद्ध जाव गहिया उहपहरणा माइय गोमुहिएहिं फलएहिं णि(क)क्किट्ठाहिं असिलट्ठीहिं अंसगएहिं तोणेहिं सज्जीवेहिं धणूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं दीहाहिं ओसारियाहिं उरुघंटियाहिं छिप्पतूरेहिं, वज्जमाणेहिं महया २ उक्किट्ठसीहणाय (चोरकलकलरवं) जाव समुद्दरवभूयं (पिव) करेमाणा सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिणिक्खमंति २ त्ता जेणेव रायगिहे णयरे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता रायगिहस्स अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुप्पविसंति २ त्ता दिवसं खवेमाणा चिट्ठंति।

शब्दार्थ - **अल्लचम्मं** - गीला चमड़ा, **माइयगोमुहिएहिं** - रींछ के बालों से युक्त गोमुखाकार, **फलएहिं** - पट्टियों से, **णिक्किट्ठाहिं** - म्यानों से निकाली हुई, **तोणेहिं** - तूणीर, **सज्जीवेहिं** - प्रत्यंचारोपित, **समुक्खित्तेहिं** - बाहर निकाले हुए, **समुल्लालियाहिं** - ऊपर उठाई हुई, **दीहाहिं** - बर्छियों से, **ओसारियाहिं** - अवस्वरित-नादित, **छिप्प** - शीघ्र, **तूरेहिं**- तूरीवाद्य, **समुद्दरवभूयं** - उछाले मारते समुद्र की सी ध्वनि।

भावार्थ - चोर सेनापति चिलात अपने पाँच सौ चोरों के साथ चोर्यसिद्धि हेतु तत्परंपरानुरूप गीले चमड़े के आसन पर बैठा। फिर दिन के आखिरी प्रहर में अपने पाँच सौ चोर साथियों के साथ तैयार हुआ यावत् उसने शस्त्रास्त्र ग्रहण किए। भालू के बालों से युक्त गोमुखाकार पट्टियाँ देह पर बांधी। म्यानों से तलवारें निकाल लीं। कंधों पर तूणीर रखे। धनुषों पर प्रत्यंचाएँ चढ़ालीं। हाथ में बाण ले लिये। बर्छियाँ ऊँची उठा ली। बड़े-बड़े घंटे और तूरी वाद्य शीघ्र ही बज उठे। इस धूमधाम के साथ जोर-जोर से सिंहनाद का कलरव यावत् उछालें मारते हुए समुद्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की सी ध्वनि करता हुआ सिंह गुफा-चोरपल्ली से बाहर निकला। राजगृह नगर के निकट आया और उससे न अधिक दूर न अधिक समीप एक गहन वन में प्रविष्ट हुआ तथा दिन छिपने की प्रतीक्षा करता रहा।

(२३)

तए णं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्तकाल समयंसि णिसंतपडिणिसंतंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं माइयगोमुहिएहिं फलएहिं जाव मूइयाहिं उरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहे णयरे पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ० उदगवत्थिं परामुसइ आयंते चोक्खे परमसुइभूए तालुग्घाडणिविज्जं आवाहेइ २ त्ता रायगिहस्स दुवारकवाडे उदएणं अच्छोडेइ २ त्ता कवाडं विहाडेइ २ त्ता रायगिहं अणुप्पविसइ २ त्ता महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी।

शब्दार्थ - **मूइयाहिं** - स्वर रहित, **उदगवत्थिं** - पानी की मशक, **आयंते** - आचमन किया, **चोक्खे** - स्वच्छ, **तालुग्घाडणिविज्जं** - तालोद्‌घाटनी विद्या, **अच्छोडेइ** - छिड़का।

भावार्थ - तब चोर सेनापति चिलात आधी रात के समय, जब चारों और खामोशी थी, पाँच सौ चोरों के साथ रीछ के बालों से आच्छादित गोमुखाकार पट्टियों से देह को रक्षित करते हुए यावत् अपनी बड़ी-बड़ी घंटियों को निःशब्द कर राजगृह नगर के पूर्वी द्वार पर पहुँचा। पहुँच कर पानी की मशक ली। उससे आचमन किया, स्वच्छ और परम शुद्ध हुआ। ऐसा कर तालोद्‌घाटिनी विद्या का आह्वान किया। राजगृह नगर के द्वार के किवाड़ को पानी से सिंचित किया। फिर किवाड़ को खोलकर नगर में प्रविष्ट हुआ। उच्चस्वर से उद्‌घोषित करने लगा।

धन्य सार्थवाह के घर पर धावा

(२४)

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! चिलाए णामं चोर सेणावई पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागए धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे। तं जो णं णवियाए माउयाए दुद्धं पाउकामे से णं णिग्गच्छउ त्तिकट्टु जेणेव धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता धण्णस्स गिहं विहाडेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - देवानुप्रियो! मैं चिलात नामक चोर सेनापति अपने पाँच सौ चोरों के साथ सिंह गुफा-चोरपल्ली से यहाँ आया हूँ। मैं धन्य सार्थवाह के घर को लूटना चाहता हूँ। इसलिए यदि कोई नई माता का दूध पीना चाहता हो-मरना चाहता हो तो वह बाहर निकले। ऐसा कर वह धन्य सार्थवाह के घर आया और उसे खोला।

धन दौलत के साथ सुंसमा का अपहरण

(२५)

तए णं से धण्णे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ २ त्ता भीए तत्थे ४ पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ। तए णं से चिलाए चोरसेणावई धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ २ त्ता सुबहुं धणकणग जाव सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेण्हइ २ त्ता रायगिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - **सावएज्जं** - धन-दौलत।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने जब चोर नायक चिलात द्वारा अपने घर को लूटते हुए देखा तो वह बहुत ही भयभीत और त्रस्त हुआ। अपने पाँचों पुत्रों के साथ भागकर एकांत स्थान में छिप गया। चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह के घर को खूब लूटा। बहुत से स्वर्ण यावत् धन-दौलत तथा श्रेष्ठि कन्या सुंसुमा को उठा लिया एवं राजगृह नगर से निकलकर वापस सिंहगुफा-चोरपल्ली की ओर चल पड़ा।

आरक्षीजनों से शिकायत

(२६)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सुबहुं धणकणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं ३ पाहुडं गहाय जेणेव णगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं महत्थं पाहुडं जाव उवणे(न्ति)इ २ त्ता एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! चिलाए चोर सेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता सुबहुं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धणकणगं सुंसुमं च दारियं गहाय जाव पडिगए, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सुंसुमाए दारियाए कूवं गमित्तए, तुब्भे णं देवाणुप्पिया! से विपुले धणकणगे ममं सुंसुमा दारिया।

भावार्थ - तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह अपने घर आया। उसने देखा कि चोर धन संपत्ति को लूट ले गए हैं एवं उसकी पुत्री को भी अपहृत कर लिया है। वह बहुमूल्य भेंट लेकर नगर गुप्तिक-आरक्षी पुरुषों के पास गया और उनको बहुमूल्य भेंट देकर निवेदन किया कि देवानुप्रियो! चोर सेनापति चिलात कुछ समय पूर्व ही यहाँ आया। मेरे घर को लूटा, स्वर्ण धन आदि ले गया और मेरी कन्या को भी ले गया।

देवानुप्रियो! मैं और मेरे पारिवारिकजन चाहते हैं कि आप मेरी कन्या सुंसुमा की खोज के लिए निकलें। चोरों द्वारा चुराए गए धन और लड़की को वापस लाएँ।

देवानुप्रियो! चोरों से प्राप्त सारा धन आपका होगा। मैं केवल पुत्री सुंसुमा को ही लूंगा।

चिलात का पराभव

(२७)

तए णं ते णगरगुत्तिया धण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता सण्णद्ध जाव गहिया उहपहरणा महया २ उक्किट्ठ जाव समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओ णिग्गच्छंति २ त्ता जेणेव चिलाए चोरे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

भावार्थ - नगर रक्षकों ने धन्य सार्थवाह का यह प्रस्ताव स्वीकार किया। वे कवच धारण कर तस्कर का पीछा करने को तैयार हुए यावत् शस्त्रास्त्र लिए। जोर-जोर से सिंहनाद किया यावत् मानो उछालें मारते हुए समुद्र की ध्वनि हो।

वे राजगृह नगर से निकले। जिस ओर चिलात चोर भाग कर गया था, वहाँ पहुँचे और उस चोर सेनापति के साथ लड़ने लगे।

(२८)

तए णं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसेहेंति। तए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं ते पंच-चोरसया णगरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विपुलं धणकणगं विच्छड्ढे(ड्डे)माणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था। तए णं ते णगरगुत्तिया तं विपुलं धणकणगं गेण्हंति २ त्ता जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छंति।

शब्दार्थ - **विच्छड्डेमाणा** - छोड़ते हुए।

भावार्थ - नगर रक्षकों ने चोर सेनापति चिलात को हत, मथित यावत् पराभूत कर डाला। तब नगर रक्षकों द्वारा यों हत, मथित यावत् पराजित हुए वे पाँच सौ चोर विपुल धन, संपत्ति को वहीं छोड़, इधर-उधर फेंकते हुए, चारों ओर भाग छूटे। तब नगर रक्षकों ने धन आदि विशाल संपत्ति को अपने कब्जे में किया और राजगृह नगर की ओर चल पड़े।

पुत्रों सहित धन्य सार्थवाह द्वारा पीछा

(२९)

तए णं से चिलाए तं चोरसेण्णं तेहिं णगरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव भीए तत्थे सुंसुमं दारियं गहाय एगं महं अगामियं दीहमद्धं अडविं अणुप्पविट्ठे। तए णं धण्णे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं चिलाएणं अडवीमु(हि)हं अवहीरमाणिं पासित्ताणं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे सण्णद्धबद्ध० चिलायस्स पयमग्ग विहिं (अभिगच्छति) अणुगच्छमाणे अभिग(ज्जमाणे)जंते हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभितासेमाणे पिट्ठओ अणुगच्छइ।

शब्दार्थ - **दीहमद्धं** - दीर्घमार्ग, **हक्कारेमाणे** - फटकारते हुए, **अभितासेमाणे** - अत्यंत त्रस्त करते हुए।

भावार्थ - चोर सेनापति चिलात नगर रक्षकों द्वारा हत, मथित और पराभूत होकर सार्थवाह कन्या सुंसुमा को लेकर एक भयानक जंगल में प्रविष्ट हो गया, जिसके रास्ते का कोई आर-पार नहीं था।

धन्य सार्थवाह ने जब चिलात को अपनी पुत्री को लिए हुए जंगल की ओर जाते हुए देखा तो अपने पाँचों पुत्रों के साथ कवच आदि धारण कर चिलात के पदचिह्नों को देखते हुए उसे दुत्कारता-फटकारता-पुकारता, अभितर्जित एवं अभित्रस्त करता हुआ उसके पीछे भागा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिलात द्वारा सुंसुमा का शिरच्छेद

(३०)

तए णं से चिलाए तं धण्णं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं (सद्धिं) अप्पछट्ठं सण्णद्धबद्धं समणुगच्छमाणं पासइ २ त्ता अत्थामे ४ जाहे णो संचाएइ सुंसुमं दारियं णिव्वाहित्तए ताहे संते तंते परितंते णीलुप्पलं असिं परामुसइ २ त्ता सुंसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिंदइ २ त्ता तं गहाय तं अगामियं अडविं अणुप्पविट्ठे।

भावार्थ - चिलात ने कवच आदि से सन्नद्ध धन्य सार्थवाह को अपने पाँचों पुत्रों के साथ पीछा करते हुए देखा तो वह अस्थिर, बलरहित, पराक्रमशून्य एवं शक्तिरहित हो गया और उसे जब लगा कि श्रेष्ठि कन्या सुंसुमा को ले जा नहीं सकेगा तो उसने अत्यंत श्रांत, ग्लान एवं खिन्न होकर नीले कमल जैसी तीक्ष्ण तलवार को म्यान से निकाला और सार्थवाह कन्या का मस्तक काट डाला। कटे हुए मस्तक को लेकर वह अगम्य वन में प्रविष्ट हो गया।

(३१)

तए णं (से) चिलाए तीसे अगामियाए अडवीए तण्हाए (छुहाए) अभिभूए समाणे पम्हु(ह)ट्ठदिसाभाए सीहगुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए।

शब्दार्थ - तण्हाए - प्यास।

भावार्थ - चिलात को उस दुर्गम घोर वन में बड़ी प्यास लगी। वह आकुल हो उठा। उसे दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा। वह अपनी सिंहगुफा नामक चोरपल्ली तक नहीं पहुँच सका, मार्ग में ही मर गया।

(३२)

एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे इमस्स ओरालिय सरीरस्स वंता-सवस्स जाव विद्धंसणधम्मस्स वण्णहेउं जाव आहारं आहारेइ से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं ४ हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टिस्सइ जहा व से चिलाए तक्करे।

शब्दार्थ - वंतासवस्स - वमन आदि अशुचि पदार्थों का स्त्रोत रूप, **विद्धंसणधम्मस्स**-स्वभावतः विनश्वर, **वण्णहेउं** - कांति, सुंदरता आदि हेतु।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमणो! यावत् जो साधु-साध्वी प्रव्रजित होकर वमन आदि अशुचि पदार्थों के निर्झर इस औदारिक यावत् विनश्वर शरीर की कांति, सुंदरता बढ़ाने हेतु यावत् आहार करते हैं, वे इस लोक में बहुत से साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं द्वारा अवहेलना योग्य होते हैं यावत् वे इस संसार में पर्यटन करते रहते हैं। उनकी वैसी ही दशा होती है, जैसी चिलात तस्कर की हुई।

धन्य शोक-निमग्न

(३३)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे चिलायं (तीसे अगामियाए सव्वओ समंता) परिधाडेमाणे २ (तण्हाए छुहाए य) संते तंते परितंते णो संचाएइ चिलायं चोर सेणावइं साहत्थिं गिण्हित्तए। से णं तओ पडिणियत्तइ २ त्ता जेणेव सा सुंसुमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोवि(ल्लि)या तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सुंसुमं दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ २ त्ता परसुणियत्तेव्व चंपगपायवे।

शब्दार्थ-परिधाडेमाणे - पीछा करता हुआ, परसु-**णियत्तेव्व** - कुल्हाड़े द्वारा काटे गए।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह अपने पांचों पुत्रों के साथ चिलात का पीछा करते-करते प्यास और भूख से परिश्रांत, खिन्न और उत्साहहीन हो गया। वह चोर सेनापति चिलात को अपने हाथ से पकड़ने में असमर्थ रहा। वापस लौट पड़ा और चिलात द्वारा जहाँ सुंसुमा मारी गई थी, वहाँ पहुँचा। सुंसुमा को प्राण रहित देखकर वह उसी तरह गिर पड़ा, जिस प्रकार कुठार द्वारा काटा गया चंपक वृक्ष गिर पड़ता है।

(३४)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे (पंचहिं पु०) अप्पछट्ठे आसत्थे कूवमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया २ सद्देणं कुहकुहुस्सपरुण्णे सुचिरं कालं बाह(प्प)मोक्खं करेइ।

शब्दार्थ - **कूवमाणे** - कूकता हुआ-दुःखपूर्ण स्वर में रुदन करता हुआ, **कुहकुहुस्सपरुण्णे**- सिसकियाँ भरता हुआ, **बाहमोक्खं** - अश्रुपात।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - धन्य सार्थवाह अपने पांचों पुत्रों के साथ तीव्रगति से सांस छोड़ता हुआ, दुःख पूर्ण स्वर में रुदन-क्रंदन और विलाप करता हुआ जोर-जोर से सिसकियाँ भरता हुआ, बहुत समय तक आंसू बहाता रहा।

आहार-पानी के अभाव में प्राण त्याग का विचार

(३५)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य परब्भं (रद्धं)ते समाणे तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गणगवेसणं करेइ २ त्ता संते तते परितंते णिव्विण्णे (समाणे) तीसे अगामियाए (अडवीए) उदगस्स मग्गण गवेसणं करेमाणे णो चेव णं उदगं आसाएइ।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह अपने पांचों पुत्रों के साथ दुर्गम जंगल में चिलात के पीछे दौड़ते रहने के कारण प्यास और भूख से अत्यंत पीड़ित हो गया था। उस दुर्गम, घोर वन में चारों ओर जल की खोज करने लगा। उस अगम्य वन में बहुत खोजने पर भी उसे पानी नहीं मिला। वह बहुत ही श्रांत, खिन्न एवं विषाद युक्त हो गया।

(३६)

तए णं उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जेट्ठं पुत्तं धण्णे (स०) सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता! सुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चिलायं तक्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणा णो चेव णं उदगं आसादेमो। तए णं उदगं अणासाएमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए। तण्णं तुब्भे ममं देवाणुप्पिया! जीवियाओ ववरोवेह (मम) मंसं च सोणियं च आहारेह० तेणं आहारेणं अव(हिट्ठा)थद्धा समाणा तओ पच्छा इमं अगामियं अडविं णित्थरिहिह रायगिहं च संपाविहह मित्तणाइ० अभिसमागच्छिहिह अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - अवथद्धा - स्थिर हुए।

भावार्थ - कहीं भी जल न मिलने से वे जहाँ सुंसुमा की हत्या की गई थी, वहाँ आए। धन्य सार्थवाह ने अपने पुत्रों से कहा-पुत्रो! बेटी सुंसुमा को छुडाने के लिए तस्कर चिलात के पीछे-पीछे हम सब ओर दौड़ते रहे, जिससे हम भूख-प्यास से व्याकुल हो गए। इस अगम्य अटवी में पानी की हम लोगों ने बहुत खोज़ की किन्तु वह कहीं नहीं मिला। जल न मिलने के कारण अब हम राजगृह नगर पहुँच नहीं सकते। इसलिए देवानुप्रियो! तुम मुझे मार डालो। मेरे मांस और रक्त का आहार करो। जिससे तुम कुछ स्थिर हो पाओगे। वैसा होने के पश्चात् तुम इस दुर्गम वन को पार कर राजगृह नगर पहुँच जाओगे। मित्र जातीयजन, पारिवारिक संबंधी आदि से मिलोगे। वहाँ रहते हुए तुम अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी बनोगे—आर्थिक धार्मिक और पुण्य-निष्पन्न जीवन जीओगे।

पांचों पुत्रों द्वारा क्रमशः प्राणांत का प्रस्ताव

(३७)

तए णं जेट्ठे पुत्ते धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-तुब्भे णं ताओ! अम्हं पिया गुरुजणया देवभूया ठावका पइट्ठावका संरक्खगा संगोवगा। तं कहण्णं अम्हे ताओ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो तुब्भं णं मंसं च सोणियं च आहारेमो? तं तुब्भे णं ताओ! ममं जीवियाओ ववरोवेह मंसं च सोणियं च आहारेह अगामियं अडविं णित्थरह तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव आभागी भविस्सह।

शब्दार्थ - ठावका - स्थापक-पारिवारिक कार्यों के नीति-निर्देशक, **पइट्ठावका** - परिवार को राजादि के समक्ष प्रतिष्ठा दिलाने वाले।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह द्वारा यों कहे जाने पर उसके बड़े पुत्र ने अपने पिता से कहा - तात! आप हमारे पिता, गुरु, जन्मदाता, देव स्वरूप, स्थापक, प्रतिष्ठापक, संरक्षक एवं संगोपक हैं। इसलिए तात! हम आपके जीवन का व्यपरोपण कैसे करें - आपको कैसे मारें? आपके मांस और शोणित का कैसे आहार करें? इसलिए पिता श्री मेरे मांस और रक्त से अपनी भूख प्यास शांत करें, दुर्गम जंगल को पार करें। यहाँ वह सब कथनीय है, जो पूर्व सूत्र में कहा गया है यावत् अर्थ, धर्म एवं पुण्यात्मक जीवन जीओगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३८)

तए णं धण्णं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-मा णं ताओ! अम्हे जेट्ठं भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो तुब्भे णं ताओ! ममं जीवियाओ ववरोवेह जाव आभागी भविस्सह। एवं जाव पंचम पुत्ते।

भावार्थ - तब धन्य सार्थवाह के दूसरे पुत्र ने कहा - तात! हमारे गुरु और देव स्वरूप बड़े भाई को मत मारो। मेरे जीवन का अंत कर दो यावत् आप सब राजगृह जाकर अर्थ, धर्म एवं पुण्य के भागी बनें यावत् इसी प्रकार पांचों पुत्रों ने क्रमशः स्वयं को मारने का प्रस्ताव किया।

पुत्री की मृत देह से क्षुधा-तृषा की शांति

(३९)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंच पुत्ते एवं वयासी-मा णं अम्हे पुत्ता! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो। एस णं सुंसुमाए दारियाए सरीरए णिप्पाणे जाव जीवविप्पजढे। तं सेयं खलु पुत्ता! अम्हं सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो।

शब्दार्थ - जीवविप्पजढे - जीव रहित।

भावार्थ - तदनंतर धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के हृदय की इच्छा-भावना को जानकर कहा - पुत्रो! हम अपने में से किसी एक के भी जीवन का अन्त न करें। पुत्री सुंसुमा का शरीर निष्प्राण यावत् (निश्चेष्ट) जीव रहित है। इसलिए पुत्रो! यही श्रेयस्कर है, उसके शरीर के मांस और रक्त से अपनी भूख प्यास शांत करें। यों आश्वस्त, स्थिर होकर हम राजगृह नगर पहुँच जायेंगे।

(४०)

तए णं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणेंति। तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ २ त्ता सरगं च करेइ त्ता सरएणं अरणिं महेइ २ त्ता अग्गिं पाडेइ २ त्ता अग्गिं संधुक्खेइ २ त्ता दारुयाइं प(रि)क्खेवेइ २ त्ता अग्गिं पज्जालेइ २ त्ता सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - **महेइ** - घिसा रगड़ा, **पाडेइ** - उत्पन्न की, **संधुक्खेइ** - फूंक मार कर तेज किया, **पज्जालेइ** - प्रज्वलित की।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह के इस कथन को पांचों पुत्रों ने स्वीकार किया। धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के साथ अरणि काष्ठ तैयार किया। फिर शरकंडे काष्ठ को लेकर उसे अरणिकाष्ठ पर घिसा, अग्नि प्रज्वलित की। उसे फूंक देकर धुकाया। उस पर लकड़ियाँ रखी। अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उस पर पुत्री सुंसमा के मांस को पकाया, मांस-रक्त का आहार किया।

राजगृह आगमन

(४१)

तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा रायगिहं णयरिं संपत्ता मित्तणाइणियग० अभिसमण्णागया तस्स य विउलस्स धण कणगरयण जाव आभागी जाया (वि होत्था)। तए णं से धण्णे सत्थवाहे सुंसुमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं जाव विगयसोए जाए यावि होत्था।

भावार्थ - मांस-शोणित के आहार से वे सब स्थिर, आश्वस्त हुए। राजगृह नगरी में आए। मित्र, जातीयजन, पारिवारिक, संबंधी आदि से मिले यावत् विपुल रत्न, स्वर्ण यावत् संपत्ति के भागी बने।

फिर सार्थवाह ने अपनी पुत्री सुंसुमा के बहुत से लौकिक यावत् मरणोपरांत किए जाने वाले कार्य किए यावत् समय बीतने पर वह शोक रहित हुआ।

(४२)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे गुणसिलए चेइए समोसढे (से) तए णं धण्णे सत्थवाहे संपत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए एक्कारसंगवी मासियाए संलेहणाए सोहम्मे उववण्णो महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय में भगवान् महावीर स्वामी का गुणशील चैत्य में पदार्पण हुआ। धन्य सार्थवाह वंदन, नमन हेतु उनकी सेवामें आया। उनसे धर्म सुना, प्रव्रजित हुआ, ग्यारह अंगों का वेत्ता बना। एकमासिक संलेखना के साथ अनशन पूर्वक प्राण त्याग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया। सौधर्म कल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ आयुष्य पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि-मुक्ति प्राप्त करेगा।

(४३)

जहा वि य णं जंबू! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा णो रूवहेउं वा णो बलहेउं वा णो विसयहेउं वा सुंसुमाए दारियाए मंस सोणिए आहारिए णण्णत्थ एगाए रायगिहं संपावणट्ठयाए, एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स जाव अवस्सं विप्पजहियव्वस्स णो वण्णहेउं वा णो रूवहेउं वा णो बलहेउं वा णो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ णण्णत्थ एगाए सिद्धिगमण संपावणट्ठयाए से णं इह-भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे जाव वीईवइस्सइ।

भावार्थ - हे जंबू! जैसे धन्य सार्थवाह ने वर्ण-शारीरिक दीप्ति सुंदरता तथा बल एवं विषय बढ़ाने के लिए पुत्री सुंसमा के मांस-शोणित का आहार नहीं किया। किसी तरह राजगृह पहुँचने हेतु ही वैसा किया। उसी प्रकार आयुष्मन् श्रमणो! जो साधु या साध्वी इस वमन, पित्त, शुक्र, शोणित आदि के स्रोत रूप यावत् विनश्वर औदारिक शरीर की कांति, सुंदरता, बल और विषय-वृद्धि के लिए आहार नहीं करते। एक मात्र मुक्ति-प्राप्त के साधनभूत देह रक्षा हेतु आहार करते हैं, वे बहुत से श्रमण-श्रमणियों-श्रावक-श्राविकाओं के लिए अर्चनीय, पूजनीय होते हैं। संसार रूपी घोर अटवी को पार कर जाते हैं।

(४४)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अठारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया। जैसा उनसे मैंने सुना वैसा ही तुम्हें कहा है, कहता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - साधुओं को आहार पानी ग्रहण करने में कितना उदास रहना चाहिए। इस बात को बताने के लिए ही यह दृष्टान्त दिया गया है। साधुओं के लिए भी एकेन्द्रिय आदि जीवों के मृत शरीर संतान के मृत शरीर के समान है। चिलाती पुत्र चोर की तरह सांसारिक लोगों ने अपने स्वार्थ से उन जीवों को हनन किया है। मोक्ष रूपी नगर की ओर जाते हुए धन्ना सेठ एवं उनके पुत्रों के समान साधु साध्वी भी जीवन रूपी अटवी में संयम रूपी प्राणों की रक्षा के लिए सन्तानों के मृत शरीर के समान प्राप्त हुए प्रासुक एषणीय आहार को उदासीन भाव से सेवन करते हैं। धन्ना सेठ उस समय जैनी नहीं थे। भावना की उदासीनता बताने के लिए ही यह दृष्टान्त बतलाया गया है।

उवणय गाहाओ -

जह सो चिलाइपुत्तो सुंसुमगिद्धो अकज्जपडिबद्धो।
धणपारद्धो पत्तो महाडविं वसणसयकलियं॥१॥
तह जीवो विसयसुहे लुद्धो काऊण पावकिरियाओ।
कम्म व सेणं पावइ भवाडवीए महादुक्खं॥२॥
धणसेट्ठी विणगुरुणो पुत्ता इव साहवो भवो अडवी।
सुयमंसमिवाहारो रायगिहं इह सिवं णेयं॥३॥
जह अडविणयरणित्थरण पावणत्थं तएहिं सुयमंसं।
भुत्तं तहेह साहू गुरुण आणाए आहारं॥४॥
भवलंघण सिवपावण हेउं भुंजं(भुज्जं)ति ण उण गेहीए।
वण्ण बलरूवहेउं च भावियप्पा महासत्ता॥५॥

॥ अट्ठारसमं अज्झयणं समत्तं॥

उपनय गाथाओं का भावार्थ -

चिलातपुत्र जिस प्रकार श्रेष्ठी कन्या सुंसमा पर गृद्ध-अति आसक्त होकर अकार्य करने पर उद्धत हुआ, धन श्रेष्ठी द्वारा पीछा किए जाने पर सैकड़ों संकटों से व्याप्त घोर जंगल में पहुँच गया, उसी प्रकार जो जीव विषय सुखों में लुब्ध-लोलुप होकर पाप पूर्ण क्रियाएं करता है, वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनके परिणाम स्वरूप सैकड़ों दुःखों से युक्त संसार रूपी भयावह अटवी में घोर दुःख पाता रहता है॥ १, २॥

यहाँ धन्य श्रेष्ठी गुरु स्थानीय है, साधु उसके पुत्रों के सदृश हैं तथा संसार घोरवन है। पुत्री के आमिष के सदृश आहार है और राजगृह नगर मोक्ष के तुल्य है।

जैसे घोर जंगल को पार करने के लिए और राजगृह नगर तक पहुँचने के लिए उन्होंने सुंसुमा के मांस का भक्षण किया, उसी प्रकार साधु गुरु की आज्ञा से प्रासुक, एषणीय आहार करते हैं।

भावितात्मा, महासत्त्व-आत्मपराक्रमी मुनि संसार सागर को पार करने और मोक्ष पद को प्राप्त करने हेतु आहार करते हैं। वे गृद्धि-आसक्ति वश होकर अपने देह के वर्ण, बल और रूप को बढ़ाने हेतु आहार नहीं करते।

॥ अठारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुंडरीए णामं एगूणवीसइमं अज्झयणं

पुण्डरीक नामक उन्नीसवां अध्ययन

(१)

जइ णं भंते! समणेणं० अट्ठारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते एगूणवीसइमस्स(०) के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - श्री जंबूस्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासा की-श्रमण भगवान् यावत् सिद्धि प्राप्त प्रभु महावीर स्वामी ने अठारहवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो उन्नीसवें ज्ञात अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है? कृपया फरमाएं।

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे सीयाए महाणईए उत्तरिल्ले कूले णीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स सीयामुहवण-संडस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलगस्स वक्खार पव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते। तत्थ णं पुंडरिगिणी णामं रायहाणी पण्णत्ता णव जोयण-वित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा जाव पच्चक्खं देवलोयभूया पासाईया दरिस-णीया अभिरूवा पडिरूवा। तीसे णं पुंडरिगिणीए णयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए णलिणिवणे णामं उज्जाणे होत्था वण्णओ।

भावार्थ - हे जंबू! उस काल, उस समय इसी जंबू द्वीप में, पूर्व विदेह क्षेत्र में, सीता महानदी के उत्तरी तट पर, नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, उत्तर दिशावर्ती सीतामुखवन खण्ड के पश्चिम में तथा एक शैलक संज्ञक वक्षस्कार पर्वत के पूर्वी दिग् भाग में पुष्कलावती नामक विजय बतलाई गई है।

वहाँ पुंडरीकिणी नामक राजधानी बतलाई गई है। वह नौ योजन विस्तार तथा बारह योजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयाम युक्त है यावत् वह प्रत्यक्ष देवलोक जैसी है, अत्यंत आह्लादप्रद सुंदर और आकर्षक है। पुंडरीकिणी नगरी के उत्तर पूर्वी दिशा भाग में नलिनीवन नामक उद्यान था। उद्यान का वर्णन औपपातिक सूत्रानुसार ग्राह्य है।

राजामहापद्म : दीक्षा, सिद्धि

तत्थ णं पुंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था। तस्स णं पउमावई णामं देवी होत्था। तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था तं जहा-पुंडरीए य कंडरीए य सुकुमालपाणिपाया। पुंडरीए जुवराया।

भावार्थ - पुंडरीकिणी राजधानी का महापद्म नामक राजा था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। उसकी कोख से पुंडरीक और कंडरीक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे हाथ पैर आदि सभी अंगों से सुंदर एवं सुकुमार थे। पुंडरीक युवराजपद पर अधिष्ठित था।

(४)

तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं।

भावार्थ - उस काल, उस समय स्थविर भगवंत धर्मघोष का आगमन हुआ।

(५)

महापउमे राया णिग्गए, धम्मं सोच्चा पुंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए पुंडरीए राया जाए कंडरीए जुवराया। महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, तए णं थेरा बहिया जणवय विहारं विहरंति। तए णं से महापउमे बहूणि वासाणि जाव सिद्धे।

भावार्थ - राजा महापद्म उनके दर्शन-वंदन हेतु आया। धर्मश्रवण किया। उसे वैराग्य हुआ। उसने युवराज पुंडरीक को राज्याधिष्ठित किया एवं स्वयं दीक्षित हो गया। पुंडरीक राजा हुआ, कंडरीक युवराज बना। अनगार महापद्म ने चवदह पूर्वों का अध्ययन किया।

स्थविर धर्मघोष बाहरी जनपदों में विहरणशील रहे। मुनि महापद्म ने बहुत वर्ष पर्यंत साधु जीवन का पालन किया यावत् वह सिद्ध हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा पुंडरीक द्वारा श्रावक धर्म स्वीकार

(६)

तए णं थेरा अण्णया कयाइ पुणरवि पुंडरिगिणीए रायहाणीए णलिणवणे उज्जाणे समोसढा। पुंडरीए राया णिग्गए कंडरीए महाजणसद्दं सोच्चा जहा महब्बलो जाव पज्जुवासइ। थेरा धम्मं परिकहेंति पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए।

भावार्थ - तदनंतर फिर कभी, एक समय स्थविर भगवंत का पुंडरिकिणी राजधानी में आगमन हुआ। वे नलिनीवन नामक उद्यान में ठहरे। राजा पुंडरीक उनके दर्शन-वंदन हेतु गया। कंडरीक भी बहुत से लोगों से स्थविर भगवंत का आगमन सुनकर यावत् महाबल की तरह उनके वंदन-नमन हेतु गया, उसकी पर्य्युपासना, सान्निध्य लाभ किया। स्थविर भगवंत ने धर्मोपदेश दिया। राजा पुंडरीक श्रमणोपासक बना यावत् वापस लौट आया।

युवराज कंडरीक प्रव्रजित

(७)

तए णं कंडरीए उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता जाव से जहेयं तुब्भे वयह जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि तए णं जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - तत्पश्चात् युवराज कंडरीक उठा यावत् उसने श्रमण भगवंतों से निवेदन किया- जैसा आप फरमाते हैं, वही सत्य है, संसार वैसा ही है-त्याज्य है। मैं राजा पुंडरीक से अनुज्ञा प्राप्त करूँगा यावत् दीक्षा ग्रहण करूँगा।

स्थविर भगवंत बोले—देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख पहुँचे, वैसा करो।

(८)

तए णं से कंडरीए जाव थेरे वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता (थेराण) अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता तमेव चाउघंटं आसरहं दुरूहइ जाव पच्चोरुहइ जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव पुंडरीयं एवं वयासी-एवं खलु देवा०! मए थेराणं अंतिए (जाव) धम्मे णिसंते से धम्मे अभिरुइए। तए णं देवा०! जाव पव्वइत्तए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तब कंडरीक ने यावत् स्थविर भगवंत को वंदन किया तथा उनके पास से रवाना हुआ। चातुर्घण्ट अश्व पर सवार होकर यावत् राजमहल में आया। रथ से नीचे उतर कर जहाँ राजा पुंडरीक थे, वहां पहुँचा। हाथ जोड़ कर उनसे ऐसा निवेदन किया-देवानुप्रिय! मैंने श्रमण भगवंत का धर्मोपदेश सुना है। धर्म में मेरी विशेष रुचि उत्पन्न हुई है। देवानुप्रिय! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

(९)

तए णं से पुंडरीए कंडरीयं एवं वयासी-मा णं तुमं भाउ(देवाणुप्पि)या! इयाणिं मुंडे जाव पव्वयाहि, अहं णं तुमं महारायाभिसेएण अभिसिंचामि। तए णं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं णो आढाइ जाव तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं पुंडरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

भावार्थ - राजा पुंडरीक ने युवराज कंडरीक से कहा - देवानुप्रिय! तुम अभी मुंडित यावत् प्रव्रजित मत बनो। मैं तुम्हारा महान् समारोह के साथ राज्याभिषेक करना चाहता हूँ।

युवराज कंडरीक ने राजा पुंडरीक के इस कथन को आदर नहीं दिया, चुपचाप खड़ा रहा। राजा पुंडरीक ने दो बार-तीन बार इसे दोहराया यावत् कंडरीक चुप रहा।

(१०)

तए णं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे णो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य ४ ताहे अकामए चेव एयमट्ठं अणुमण्णित्था जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव थेराणं सीसभिक्खं दलयइ पव्वइए अणगारे जाए एक्कारसंगवी। तए णं थेरा भगवंतो अण्णया कयाइ पुंडरीगिणीओ णयरीओ णलिणिवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता बहिया जणवय विहारं विहरंति।

भावार्थ - जब पुंडरीक युवराज कंडरीक को बहुत प्रकार के युक्ति पूर्ण कथनों से समझा कर भी रोकने में सफल नहीं हुआ, तब उसने न चाहते हुए भी प्रव्रज्या स्वीकार करने की अनुमति दे दी यावत् निष्क्रमणाभिषेक से अभिषिक्त किया, अत्यधिक समारोह पूर्वक उसे दीक्षार्थ विदा किया यावत् शिष्य रूप में स्थविर भगवंत को सौंपा। इस प्रकार कंडरीक दीक्षित हुआ, अनगार बना, ग्यारह अंगों का अध्येता हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फिर किसी समय स्थविर भगवंत ने पुंडरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से प्रस्थान किया, वे बहिर्वर्ती जनपदों में विहरणशील रहे।

अनगार कंडरीक रोगाक्रांत

(११)

तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य जहा सेलगस्स जाव दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।

भावार्थ - तदनंतर अनगार कंडरीक रूक्ष, शुष्क, पर्युसित आहार सेवन के कारण शैलक मुनि की तरह यावत् दाहज्वर से पीड़ित हो गया।

(१२)

तए णं थेरा अण्णया कयाइ जेणेव पोंडरीगिणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता णलिणिवणे समोसढा। पुंडरीए णिग्गए धम्मं सुणेइ। तए णं पुंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कंडरीयं वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वाबाहं सरोगं पासइ २ त्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ २ त्ता थेरे भगवंते वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता एवं वयासी - अहण्णं भंते! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसहभेसज्जेहिं जाव तिगिच्छं आ(उट्टा)उंटामि, तं तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह।

भावार्थ - किसी समय पुंडरीकिणी नगरी में स्थविर भगवंतों का पदार्पण हुआ। वे वहाँ नलिनीवन उद्यान में रूके। राजा पुंडरीक दर्शन-वंदन हेतु आया। उसने धर्मोपदेश सुना।

फिर राजा पुंडरीक, जहाँ कंडरीक अनगार था, वहां गया। उनको वंदन नमन किया। उनके शरीर को सब प्रकार की बाधाओं और रोग से युक्त देखा। तब वह स्थविर भगवंतों के पास आया। उन्हें वन्दन नमन कर निवेदन किया - भगवन्! मैं अनगार कण्डरीक की यथा प्रवृत्त-साधु-समाचारी के अनुकूल औषध, भेषज द्वारा यावत् चिकित्सा करवाना चाहता हूँ। भगवन्! आप मेरी यानशाला में विराजें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा पुंडरीक द्वारा चिकित्सा

(१३)

तए णं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेंति जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरंति। तए णं पुंडरीए राया जहा मंडुए सेलगस्स जाव बलियसरीरे जाए।

भावार्थ - स्थविर भगवंतों ने राजा पुंडरीक का निवेदन स्वीकार किया यावत् वे यानशाला में ठहर गए। तब राजा पुंडरीक ने, जिस तरह मंडुक ने मुनि शैलक की चिकित्सा करवाई थी, उसी तरह कंडरीक अणगार की चिकित्सा करवाई यावत् उनका शरीर स्वस्थ-सबल हो गया।

कंडरीक का शैथिल्य

(१४)

तए णं थेरा भगवंतो पुंडरीयं रायं आपुच्छंति २ त्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति। तए णं से कंडरीए ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुण्णंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे णो संचाएइ पुंडरीयं आपुच्छित्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए तत्थेव ओसण्णे जाए।

शब्दार्थ - **अब्भुज्जएणं** - उग्र विहार पूर्वक, **ओसण्णे** - साध्वाचार में शिथिल।

भावार्थ - तत्पश्चात् स्थविर भगवंत पुंडरीक से पूछकर - उसका परामर्श लेकर बाहर जनपद विहार में निकल पड़े। मुनि कंडरीक बीमारी की बाधाओं से विमुक्त हो जाने पर भी इष्ट, मनोज्ञ अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य में मूर्च्छित, गृद्ध, लोलुप एवं आसक्त बना रहा। वह पुंडरीक को पूछकर वहाँ से उग्र विहार पूर्वक जनपदों में विचरण हेतु नहीं गया। साधु आचार में शिथिल होकर वहीं रहने लगा।

पुंडरीक द्वारा व्याज-स्तुति

(१५)

तए णं से पुंडरीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए अंतेउरपरियालसंपरिवुडे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कंडरीयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ, वं० २ त्ता एवं वयासी - धण्णेसि! णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले जे णं तुमं रज्जं च जाव अंतेउरं च (वि) छ(ड्डइ) ड्डेत्ता विगोवइत्ता जाव पव्वइए, अहण्णं अहण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे णो संचाएमि जाव पव्वइत्तए, तं धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव जीवियफले।

शब्दार्थ - विगोवइत्ता - तिरस्कार कर।

भावार्थ - जब राजा पुंडरीक को इस बात का पता चला तो वह स्नानादि से निवृत्त हुआ। अंतःपुर परिवार से घिरा हुआ वहाँ आया जहाँ कंडरीक था। मुनि कंडरीक को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन नमन किया और कहा - देवानुप्रिय! आप धन्य हैं, कृतार्थ हैं, कृत्पुण्य हैं, शुभ लक्षणयुक्त हैं। आपने मनुष्य जन्म और जीवन सफल बना लिया। क्योंकि आपने राज्य यावत् अंतःपुर का परित्याग कर, तिरस्कार कर यावत् प्रव्रज्या स्वीकार की। मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ यावत् राज्य अंतःपुर और मनुष्य जीवन संबंधी काम-भोगों में मूर्च्छित हूँ। अतः मैं सर्वस्व त्याग कर यावत् प्रव्रजित होने में असमर्थ हूँ।

देवानुप्रिय! आप धन्य हैं यावत् आपने अपना जीवन सफल बना लिया।

तात्कालिक प्रभाव, पुनः पूर्ववत्

(१६)

तए णं से कंडरीए अणगारे पुंडरीयस्स एयमट्ठं णो आढाइ जाव संचिट्ठइ। तए णं से कंडरीए पोंडरीयएणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पुंडरीयं रायं आपुच्छइ २ त्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवय विहारं विहरइ। तए णं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं किंचि कालं उग्गं उग्गेणं विहरइ तओ पच्छा समणत्तणपरितंते समणत्तण-णिव्विण्णे समणत्तण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिब्भ(त्थि)च्छिए समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं २ पच्चोसक्कइ २ त्ता जेणेव पुंडरिगिणी णयरी जेणेव पुंडरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि णिसीयइ २ त्ता ओहयमण संकप्पे ज़ाव झियायमाणे संचिट्ठइ।

शब्दार्थ - अवस्सवसे - बाध्यतावश।

भावार्थ - राजा पुंडरीक के इस कथन को अनगार कंडरीक ने आदर नहीं दिया यावत् उस पर ध्यान नहीं दिया, चुपचाप बैठा रहा। तब पुंडरीक ने दूसरी बार, तीसरी बार भी वैसा ही कहा। वैसा किए जाने पर, वह न चाहता हुआ भी, बाध्यतावश, लज्जा और साधु जीवन की गरिमा को देखते हुए, राजा पुंडरीक से पूछ कर स्थविर भगवंतों के साथ जनपद विहार हेतु निकल गया। कुछ समय वह उग्र विहार करता रहा किंतु बाद में वह श्रमण जीवन के पालन में परिश्रांति, उद्विग्नता अनुभव करने लगा। उसे श्रमण जीवन अनिष्ट, परिहेय लगने लगा। श्रमण जीवन के गुणानुरूप चलने में उसके मानसिक, वाचिक, कायिक योग अस्थिर हो गए। वह स्थविर भगवंत के पास से, चुपके से चला गया। पुंडरीकिणी नगरी पहुँचा। वहाँ राजा पुंडरीक के भवन के निकट गया। वहाँ अशोक वाटिका में उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर बैठा तथा अस्थिर चित्त होता हुआ यावत् आर्त्तध्यान में लग गया।

(१७)

तए णं तस्स पोंडरीयस्स अम्मधाई ज़ेणेव असोग वणिया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि ओहयमण-संकप्पं जाव झियायमाणं पासइ २ त्ता जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पुंडरीयं रायं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! तव पिउ(य)भाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।

भावार्थ - उस समय पुंडरीक की धायमाता अशोकवाटिका में आई। उसने अनगार कंडरीक को अशोकवृक्ष के नीचे शिलापट्ट पर आर्त्तध्यानरत देखा। उसे, उस स्थिति में देखकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह राजा पुंडरीक के पास आई और बोली - देवानुप्रिय! तुम्हारा प्रिय भाई अनगार कंडरीक अशोकवाटिका में, अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर विचलित चेता होकर बैठा है यावत् वह आर्त्तध्यान निमग्न है।

(१८)

तए णं (से) पुंडरीए अम्मधाईए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तहेव संभंते समाणे उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता अंतेउरपरियालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जाव कंडरीयं तिक्खुत्तो० एवं वयासी - धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव पव्वइए, अहं णं अधण्णे (३) जाव पव्वइत्तए, तं धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव जीवियफले।

भावार्थ - धायमाता से यह सुनते ही पुंडरीक हक्का-बक्का रह गया। अपने स्थान से उठा। अंतःपुर परिवार से घिरा हुआ, वह अशोक वाटिका में यावत् जहाँ कंडरीक बैठा था, आया। तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा पूर्वक वंदना कर बोला - देवानुप्रिय! आप धन्य हैं यावत् दुःखमय संसार का त्याग कर आप प्रव्रजित हुए। मैं कितना अभागा हूँ यावत् प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सका। देवानुप्रिय! आप भाग्यशाली हैं, जीवन को आपने सार्थक बना लिया।

(१९)

तए णं कंडरीए पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ दोच्चंपि तच्चंपि जाव चिट्ठइ।

भावार्थ - राजा पुंडरीक द्वारा यों कहे जाने पर कंडरीक चुप रहा। दूसरी बार, तीसरी बार कहे जाने पर भी यावत् वह मौन बैठा रहा।

श्रामण्य से वैमुख्य, राज्याभिषेक

(२०)

तए णं पुंडरीए कंडरीयं एवं वयासी - अट्ठो भंते! भोगेहिं? हंता अट्ठो।

भावार्थ - तब राजा पुंडरीक ने कंडरीक से पूछा - भगवन्! क्या आपका भोगों से प्रयोजन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कंडरीक बोला - हाँ, यही बात है।

(२१)

तए णं से पुंडरीए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कंडरीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेयं उवट्ठवेह जाव रायाभिसेएणं अभिसिंचइ।

भावार्थ- यह सुनकर राजा पुंडरीक ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! शीघ्र ही कंडरीक का बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक आयोजन करो यावत् कंडरीक का राज्याभिषेक कर दिया गया।

पुंडरीक प्रव्रजित

(२२)

तए णं पुंडरीए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ २ त्ता कंडरीयस्स संतियं आयारभंडयं गेण्हइ २ त्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-कप्पइ मे थेरे वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं तओ पच्छा आहारं आहारित्तए त्तिकट्टु इमं च एयारूवं अभिग्गहं आभिगिण्हेत्ताणं पुंडरिगिणीए पडिणिक्खमइ २ त्ता पुव्वाणुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे (जेणेव) थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - इसके उपरांत पुंडरीक ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया एवं चातुर्याम धर्म स्वीकार कर लिया। वैसा कर उसने राजा कंडरीक के पास से साधु जीवनोपयोगी पात्रोपकरण ले लिए और उसने ऐसा अभिग्रह किया कि स्थविर भगवंतों के पास से चातुर्याम धर्म स्वीकार करने के पश्चात् ही मैं आहार ग्रहण करूँगा। इस प्रकार का अभिग्रह कर, वह पुंडरीकिणी नगरी से रवाना हुआ। तदनंतर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, जहाँ स्थविर भगवंत थे, उस ओर चल पड़ा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कंडरीक पुनः रोगाक्रांत, कालगत

(२३)

तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तं पणीयं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स अइजागरिएण य अइभोयणप्पसंगेण य से आहारे णो सम्मं परिणमइ। तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला विउला पगाढा जाव दुरहियासा पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।

शब्दार्थ - पणीयं - प्रणीत-रसाप्लावित, पौष्टिक।

भावार्थ - तदनंतर रस स्निग्ध, पौष्टिक आहार करते रहने से, भोगासक्ति के कारण अधिक जागने तथा अत्यधिक मात्रा में खाने-पीने के कारण, भोजन का भलीभाँति परिपाक नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप राजा कंडरीक के शरीर में एक दिन मध्य रात्रि के समय बहुत ही तीव्र, प्रगाढ यावत् प्रचण्ड, दुःखद, असह्य पित्तज्वर होने के कारण सारा शरीर दाह से आक्रांत हो उठा।

(२४)

तए णं से कंडरीए राया रज्जे य रट्ठे य अंतेउरे य जाव अज्झोववण्णे अट्टदुहट्टवसट्टे अकामए अवस्सवसे कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि णरयंसि णेरइयत्ताए उववण्णे।

भावार्थ - वैसा होने पर राजा कंडरीक राज्य, राष्ट्र, अन्तःपुर यावत् राजकीय वैभव इत्यादि में अत्यधिक आसक्त होता हुआ, आर्त्तध्यान में संलग्न हुआ। वह यद्यपि मृत्यु को नहीं चाहता था किंतु जीवित रहना उसके बस की बात नहीं थी। इसलिए वह मृत्यु प्राप्त कर सातवीं नारक भूमि में सर्वोत्कृष्ट (तैंतीस सागरोपम) स्थिति युक्त नारक के रूप में उत्पन्न हुआ।

(२५)

एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे आसाइए जाव अणुपरियट्टिस्सइ जहाव से कंडरीए राया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार आयुष्मन् श्रमणो! यावत् जो साधु-साध्वी प्रव्रजित होकर मनुष्य जीवन विषयक कामभोगों की अभिलाषा करते हैं यावत् कंडरीक राजा की तरह संसार में बार-बार अनुपर्यटन करते हैं, भटकते रहते हैं।

पुंडरीक आत्म-साधना में अग्रसर

(२६)

तए णं से पुंडरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ २ त्ता थेरे भगवंते वंदइ णमंसइ, वं० २ त्ता थेराणं अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ छट्ठखमण पारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ २ त्ता जाव अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ २ त्ता अहापज्जत्तमितिकट्टु पडिणियत्तइ जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ २ त्ता थेरेहि भगवंतेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए ४ बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणं ४ सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ।

भावार्थ - अनगार पुंडरीक चलकर जहाँ स्थविर भगवंत थे, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने स्थविर भगवंत को वंदन, नमन किया तथा दूसरी बार स्थविर भगवंत से चातुर्याम धर्म स्वीकार किया। तत्पश्चात् बेले के पारणे के दिन, पहले पहर में स्वाध्याय किया। दूसरे पहर में ध्यान किया। तदनंतर तीसरे पहर में भिक्षा हेतु पर्यटन करते हुए ठंडा, रूखा जैसा भी आहार-पानी मिला, लिया। मेरे लिए यह यथा पर्याप्त-यथेष्ट है, यों सोचकर वह जहाँ स्थविर भगवंत थे, वहाँ वापस लौटा। उन्हें आहार-पानी दिखलाया तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर मूर्च्छा, लोलुपता, आसक्ति से रहित होकर, उसी प्रकार उस प्रासुक-अचित्त एषणीय-कल्पनीय आहार को उसी तरह शरीर रूपी कोष्ठ में डाला, जिस तरह साँप अपने बिल में प्रवेश कर जाता है।

(२७)

तए णं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स तं कालाइक्कंतं अरसं विरसं सीयलुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि धम्म जागरियं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जागरमाणस्स से आहारे णो सम्मं परिणमइ। तए णं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा पित्तज्जरपरिगय सरीरे दाहवक्कंतीए विहरइ।

भावार्थ - अनगार पुंडरीक द्वारा कालातिक्रान्त-जिसके खाने का समय व्यतीत हो गया हो, वैसे पर्युषित-बासी शीतल, रूक्ष आहार-पानी का सेवन करते रहने से एक दिन मध्य रात्रि के समय, जब वह धर्म जागरणा-धर्मानुचिंतन कर रहा था, उस समय उसके शरीर में तीव्र यावत् असह्य पित्त ज्वर जनित घोर दाह उत्पन्न हुआ।

जीवन यात्रा का साफल्य

(२८)

तए णं से पुंडरीए अणगारे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कार परक्कमे करयल जाव एवं वयासी-णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं। णमोत्थुणं थेराणं भगवंताणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं। पुव्विं पि य णं मए थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव मिच्छादंसणसल्लेणं पच्चक्खाए जाव आलोइय पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे उववण्णे। तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्व-दुक्खाणमंतं काहिइ।

भावार्थ - तदनंतर जब अनगार पुंडरीक अस्थिर, निर्बल, अशक्त पौरुष-पराक्रम रहित हो गया तब उसने दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर अंजलि बांधे यों कहा -

सिद्धि प्राप्त अरहंत भगवंतों को, मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक स्थविर भगवंतों को नमस्कार हो। मैंने पहले स्थविर भगवंतों के समीप समस्त प्राणातिपात आदि का प्रत्याख्यान किया था यावत् मिथ्यादर्शन शल्य आदि अठारह पापों का त्याग किया था यावत् उसने शरीर का ममत्व मिटाकर आलोचना, प्रतिक्रमण कर यथा समय काल धर्म को प्राप्त किया। वह सर्वार्थसिद्ध विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धिप्राप्त करेगा यावत् समस्त दुःखों का अंत करेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२९)

एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं कामभोगेहिं णो सज्जइ णो रज्जइ जाव णो विप्पडिघायमावज्जइ से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे वंदणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे-त्तिकट्टु परलोए वि य णं णो आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य तज्जणाणि य ता(ड)लणाणि य जाव चाउरंतं संसारकंतारं जाव वीईवइस्सइ जहा व से पुंडरीए अणगारे।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमणो! जिन्होंने प्रव्रज्या स्वीकार की हो, वे साधु-साध्वी यदि मनुष्य विषयक कामभोगों में आसक्त, रंजित, अनुराग युक्त नहीं होते यावत् वे विप्रतिहत-बाधाओं द्वारा प्रभावित नहीं होते, वे इस भव में बहुत से साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के अर्चनीय, वंदनीय, सत्कारणीय सम्माननीय, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवोपम, आदरणीय, ज्ञानरूप एवं पर्युपासनीय होते हैं तथा परलोक में भी वे दंड केशोत्पाटन, तर्जन तथा ताड़न नहीं पाते यावत् चतुर्गतिमय संसार सागर में नहीं भटकते, जिस तरह राजा पुंडरीक नहीं भटका।

विवेचन - आगम में संयम का फल संवर और तप का फल निर्जरा बताया है (उत्तरा० अ० २९) तदनुसार कण्डरीक जी के भी जब तक संयम तप के भाव रहे तब तक तो संवर निर्जरा रूप तात्कालिक फल हुआ ही है। संयम के साथ शुभ योगों से जिन पुण्य प्रकृतियों का बन्ध किया उनका अशुभभावों में आयुबन्ध होने के कारण आयु के साथ में निषेक नहीं होने से भोगने रूप में नहीं जुड़ने से वे प्रकृतियाँ उदय में नहीं आकर सत्ता में रह गई इसलिए उन्हें दुर्गति में जाना पड़ा।

पुण्डरीकजी के राज्यावस्था में भी लूखे विचार होने से एवं संयम के बाद भी भावना की धारा बहुत अधिक ऊँची होने से तीन दिनों में ही संयम के पर्याय बहुत अधिक बढ़ा लिये। ऊंचे संवर निर्जरा से राज्यावस्था में किये गये पाप कर्मों की निर्जरा करके संयम के साथ के ऊंचे शुभ योगों से ऊंची पुण्य प्रकृतियों का बन्ध करके शुभभावों में आयु का बन्ध करके उन पुण्य प्रकृतियों को आयु के साथ जोड़ देने से सर्वार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक समय में दो बांधव चविया, अन्तर मेरु समान।

एक गया नरक सातवीं, एक सर्वार्थसिद्ध विमान।।

दोनों तरफ भावना की धारा अत्यन्त निम्न स्तरीय एवं अत्यन्त उच्च स्तरीय होने से ही अल्प समय में यह परिवर्तन हो सका। अतः इसे सस्ता नहीं समझना चाहिए। भावों की धारा से कठिन कर्मों की शीघ्र अन्तर्मुहूर्त्त में निर्जरा की जा सकती है एवं तंदुलमत्स्य की तरह अशुभभावों से अन्तर्मुहूर्त्त में अशुभतम कर्मों का बन्ध भी किया जा सकता है। अतः इसमें विचारणीय जैसा कुछ भी ध्यान में नहीं आता।

(३०)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीसइमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! आदिकर, तीर्थंकर, सिद्धि प्राप्त-सिद्ध भगवान् महावीर स्वामी ने उन्नीसवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

(३१)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइ-णामधेज्ज ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भावार्थ - हे जंबू! सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने छठे अंग सूत्र ज्ञाताध्ययन के पहले श्रुतस्कन्ध का यह आशय, भाव प्रज्ञापित किया है। जैसा मैंने उनसे सुना, वैसा तुम्हें बतलाया है।

(३२)

तस्स णं सुयक्खंधस्स एगूणवीसं अज्झयणाणि एक्कसरगाणि एगूणवीसाए दिवसेसु समप्पंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस प्रकार ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं, जो प्रतिदिन एक-एक अध्ययन पढ़ने से उन्नीस दिनों में समाप्त होते हैं।

उवणय गाहाउ -

वाससहस्सं पि जई काऊणं संजमं सुविउलं पि।
अंते किलिट्ठभावो ण विसुज्झइ कंडरीउव्व॥१॥
अप्पेण वि कालेणं केइ जहागहियसील सा मण्णा।
साहिंति णिययकज्जं पुंडरीय महारिसिव्व जहा॥२॥

॥ एगूणवीसइमं अज्झयणं समत्तं॥

॥ पढमो सुयक्खंधो समत्तो॥

भावार्थ - सहस्त्रों वर्ष पर्यंत भी सुविपुल-आचार नियमोपनियम सहित संयम का पालन करते हुए भी यदि अंत में क्लिष्ट भाव-दूषित आचार में साधक गिर जाता है तो वह कंडरीक की तरह विशुद्ध नहीं हो पाता॥ १॥

कोई साधक थोड़े समय तक भी अपने द्वारा गृहीत शील एवं श्रमण पर्याय का भली-भांति पालन करता है, तो वह पुंडरीक की तरह अपना कार्य जीवन का लक्ष्य सिद्ध कर लेता है॥२॥

॥ उन्नीसवां अध्ययन समाप्त॥
॥ प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय श्रुतस्कन्ध-धर्मकथा

प्रथम वर्ग

काली नामक प्रथम अध्ययन

सूत्र-१

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था वण्णओ। तस्स णं रायगिहस्स (णयरस्स) बहिया उत्तर पुरत्थिमे दिसीभाए तत्थ णं गुणसिलए चेइए णामं होत्था वण्णओ।

भावार्थ - उस काल उस समय राजगृह नामक नगर था। उसका विस्तृत वर्णन यहाँ औपपातिक से योजनीय है। राजगृह नगर के उत्तर पूर्व दिशा भाग में गुणशील नामक चैत्य था। उसका वर्णनं भी औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है।

सूत्र-२

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मा णामं थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा जाव चउद्दसपुव्वी चउणाणोवगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दुइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

भावार्थ - उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अंतेवासी, कुलसंपन्न, जातिसंपन्न यावत् चतुर्दश पूर्वधर, चार ज्ञानों से युक्त, पंचविध आचार से संपरिवृत्त स्थविर भगवंत सुधर्मा स्वामी पूर्वानुपूर्व, ग्रामानुग्राम सुखपूर्वक विहार करते हुए राजगृह नगर में, गुणशील चैत्य में पधारे यावत् संयम एवं तप द्वारा आत्मानुभावित होते रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-३

परिसा णिग्गया धम्मो कहिओ, परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी अज्ज जंबू णामं अणगारे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी-जइ णं भंते! समणेणं (३) जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स णायसुयाणं अयमट्ठे पण्णत्ते दोच्चस्स णं भंते! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं समणेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी को वंदन, नमन करने हेतु परिषद् आई। आर्य सुधर्मा ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गई।

उस काल, उस समय आर्य सुधर्मा स्वामी के जम्बू नामक अंतेवासी यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए उनसे बोले-भगवन्! सिद्धि-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने छट्ठे अंग ज्ञाताध्ययन के प्रथम श्रुतस्कन्ध-ज्ञात श्रुतस्कन्ध का यह अर्थ बतलाया है तो सिद्धि प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने यावत् दूसरे धर्मकथा संज्ञक श्रुतस्कन्ध का क्या अर्थ फरमाया है?

सूत्र-४

एवं खलु जंबू! समणेणं० धम्मकहाणं दस वग्गा पण्णत्ता तंजहा-चमरस्स अग्गमहिसीणं पढमे वग्गे, बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो अग्गमहिसीणं बीए वग्गे असुरिंदवज्जियाणं दाहिणिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीणं तइए वग्गे, उत्तरिल्ला णं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासिइंदाणं अग्गमहिसीणं चउत्थे वग्गे दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं पंचमे वग्गे, उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं छट्ठे वग्गे, चंदस्स अग्गमहिसीणं सत्तमे वग्गे, सूरस्स अग्गमहिसीणं अट्ठमे वग्गे सक्कस्स अग्गमहिसीणं णवमे वग्गे, ईसाणस्स (य) अग्गमहिसीणं दसमे वग्गे।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! सिद्धि प्राप्त यावत् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने धर्मकथासंज्ञक द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दस वर्ग बतलाए हैं, वे इस प्रकार हैं -

१. चमरेन्द्र की अग्रमहीषियों (प्रमुख देवियों) का पहला वर्ग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की अग्रमहीषियों का द्वितीय वर्ग।

३. असुरेन्द्र वर्जित अवशिष्ट नौ दक्षिण दिशावर्ती भवनपति इन्द्रों की अग्रमहीषियों का तृतीय वर्ग।

४. असुरेन्द्र वर्जित उत्तर दिशावर्ती भवनपति इन्द्रों की अग्रमहीषियों का चतुर्थ वर्ग।

५. दक्षिण दिशावर्ती वाणव्यंतर देवों के इन्द्रों की अग्रमहीषियों का पंचम वर्ग।

६. उत्तरदिशावर्ती वाणव्यंतर देवों के इन्द्रों की अग्रमहीषियों का षष्ठ वर्ग।

७. चन्द्र देव की अग्रमहीषियों का सप्तम वर्ग।

८. सूर्य देव की अग्रमहीषियों का अष्टम वर्ग।

९. शक्रेन्द्र की अग्रमहीषियों का नवम वर्ग।

१०. ईशानेन्द्र की अग्रमहीषियों का दशम वर्ग।

सूत्र-५

जइ णं भंते! समणेणं० धम्मकहाणं दस वग्गा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते।

एवं खलु जंबू! समणेणं० पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-काली रायी रयणी विज्जू मेहा। जइ णं भंते! समणेणं० पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - हे भगवन्! श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने यदि धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दस वर्ग बतलाए हैं तो कृपया फरमाएं, सिद्धि प्राप्त यावत् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग का क्या विस्तार-अर्थ कहा है?

श्री सुधर्मा स्वामी बोले-श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन बतलाए हैं। वे इस इस प्रकार हैं - १. काली २. राई ३. रयणी ४. विज्जू तथा ५. मेहा।

जंबू स्वामी ने पुनः जिज्ञासा की - श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने पहले वर्ग के यदि पांच अध्ययन बतलाएं हैं तो प्रथम अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-६

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सेणिए राया चेलणा देवी सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था। उसमें गुणशील नामक चैत्य था। वहाँ का राजा श्रेणिक था और चेलना रानी थी। भगवान् महावीर स्वामी वहाँ समवसृत हुए। दर्शन, वंदन हेतु परिषद् आई यावत् पर्युपासना करने लगी।

कालीदेवी का ऐश्वर्य

सूत्र-७

तेणं कालेणं तेणं समएणं काली णामं देवी चमरचंचाए रायहाणी कालवडेंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं मयहरियाहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णे य बहूहिं कालवडिंसयभवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडा महया हय जाव विहरइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय चमरचंचा राजधानी में, कालावतंसक भवन में, काली देवी, काल नामक सिंहासन पर समासीन थी। चार सहस्र सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवियों, सपरिवार तीनों परिषदों, सात सेनाओं सात सेनाधिपतियों सोलह सहस्त्र आत्मरंक्षक देवों तथा बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों से संपरिवृत्त अत्यधिक गीत-वाद्यादि यावत् मनोरंजक साधनों के साथ सुख-निमग्न थी।

सूत्र-८

इमं च णं केवलकप्पं जंबूद्दीवं २ विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी २ पासइ। ए (त)त्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा जाव (हय) हियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ त्ता पाउया ओमुयइ २ त्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि णिहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि णिवेसेइ (०) ईसिं पच्चुण्णमइ २ त्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरइ २ त्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी-

शब्दार्थ - केवलकप्पं - संपूर्ण, **अंचेइ** - ऊँचा किया, **ईसिं** - कुछ, **पच्चुण्णमइ** - मस्तक ऊपर की ओर उठाया, **साहरइ** - उतारे।

भावार्थ - उस काली देवी ने विपुल अवधिज्ञान का प्रयोग करते हुए समग्र जंबू द्वीप को देखा। वहाँ भारतवर्ष में, राजगृह नगर के अंतर्गत, गुणशील चैत्य में, यथाप्रतिरूप-आचार मर्यादानुरूप स्थान में अवस्थित, संयम, तप द्वारा आत्मानुभावित होते हुए, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को देखा। वह हर्षित, परितुष्ट, आनंदित हुई। उसके मन में भक्ति का उद्रेक हुआ। मन में हर्ष छा गया। वह अपने सिंहासन से उठी। पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरी। अपनी पादुकाएँ उतारीं। तीर्थंकर भगवान् के सम्मुख सात-आठ कदम आगे चली। फिर अपना बायां घुटना ऊंचा उठाया, दाहिना घुटना भूतल पर रखा। तीन बार मस्तक से पृथ्वी का संस्पर्श किया। फिर मस्तक को ऊँचा किया, कड़े और बाजूबंद सहित हाथों को मिलाया। हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अंजलि बांधे उसने कहा -

सूत्र-६

णमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं। णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए(ए)या पासउ मे समणे ३ तत्थ-गए इह गयं तिकट्टु वंदइ णमंसइ वं० २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा णिसण्णा।

भावार्थ - उन अरहंत भगवंतों को यावत् जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, नमस्कार हो। भगवान् महावीर स्वामी को यावत् जो मोक्ष गमनोद्यत हैं, नमस्कार हो। यहाँ स्थित मैं, वहाँ भरत क्षेत्र, राजगृह नगर गुणशील चैत्य में स्थित भगवान् महावीर स्वामी को वंदन करती हूँ। वहाँ विद्यमान् भगवान् महावीर स्वामी यहाँ स्थित मुझे देखें। यों कह कर उसने वंदन, नमन किया और पूर्व दिशा की ओर मुख कर सिंहासन पर बैठी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-१०

तए णं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव समुप्पजित्था-सेयं खलु मे समणं ३ वंदित्ता जाव पज्जुवासित्तए - त्ति कट्टु एवं संपेहेइ २त्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे ३ एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तियं देइ जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेह २ त्ता जाव पच्चप्पिणह। तेवि तहेव करेत्ता जाव पच्चप्पिणंति। णवरं जोयणसहस्स-वित्थिण्णं जाणं सेसं तहेव। तहेव णामगोयं साहेइ तहेव णट्टविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया।

भावार्थ - तदनंतर काली देवी के मन में ऐसा भाव यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ-मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि मैं भगवान् महावीर स्वामी की वंदना यावत् पर्युपासना करने जाऊं। यों विचार कर उसने अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और उनसे कहा - देवानुप्रियो! सूर्याभदेव की तरह भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष नाट्य आदि प्रदर्शन की व्यवस्था करो यावत् देवों के गमन योग्य विमान तैयार करो। यह व्यवस्था कर मुझे अवगत कराओ। उन्होंने वैसा ही किया यावत् काली देवी को अवगत कराया। यहाँ विशेषता यह है कि जो यान तैयार किया गया, वह एक हजार योजन विस्तीर्ण था। शेष सारा वर्णन सूर्याभ देव की तरह है।

उस यान द्वारा काली देवी अपने देव-देवी परिवार सहित वहाँ पहुँची। अपना नाम व गोत्र बतलाया एवं विविध प्रकार के नाटकों का प्रदर्शन किया यावत् वैसा कर वह वापस लौट गई।

सूत्र-११

भंते त्ति! भगवं गोयमे समणं ३ वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्डी ३ कहिं गया०? कूडागारसालादिट्ठंतो।

भावार्थ - गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर स्वामी को 'भंते' शब्द द्वारा संबोधित कर वंदन, नमन किया और जिज्ञासा की-भगवन्! काली देवी की वह दिव्य ऋद्धि कहां चली गई?

भगवान् ने पूर्व वर्णित कूटागार शाला के दृष्टांत ✿ से इस जिज्ञासा का समाधान किया।

✿ अध्ययन-१३ सूत्र ४ (विवेचन देखें)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालीदेवी का पूर्वभव वृत्तांत

सूत्र-१२

अहो णं भंते! काली देवी महिड्डिया (३)! कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्डी ३ किण्णा लद्धा किण्णा पत्ता किण्णा अभिसमण्णागया? एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्दीवे २ भारहे वासे आमलकप्पा णामं णयरी होत्था वण्णओ। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया।

भावार्थ - भगवन्! काली देवी दिव्य ऋद्धि वाली है। काली देवी को वह दिव्य देवर्द्धि किस प्रकार मिली? कैसे प्राप्त हुई और किस प्रकार उसके सामने आई - उपभोग में आने योग्य हुई?

यहाँ भी सूर्याभ देव के समान ही समझना चाहिये यावत् हे गौतम! उस काल और उस समय में इस जम्बूद्वीप के भारत वर्ष में आमलकल्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन कहना चाहिये। उस नगरी के बाहर आम्रशालवन नामक चैत्य था। वहाँ जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था।

सूत्र-१३

तत्थ णं आमलकप्पाए णयरीए काले णामं गाहावई होत्था अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी णामं भारिया होत्था सुकुमाल (पाणिपाया) जाव सुरूवा। तस्स णं काल(ग)स्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली णामं दारिया होत्था वड्डा वड्डकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी णिव्विण्णवरा वरपरिवज्जिया वि होत्था।

भावार्थ - उस आमलकल्पा नगरी में काल नामक गाथापति था। वह धनाढ्य यावत् सर्वमान्य था। गाथापति की कालश्री नामक भार्या थी। उसके हाथ-पैर आदि अंग यावत् सारा शरीर सौंदर्य युक्त था। उसके अपनी पत्नी कालश्री की कोख से काली नामक कन्या थी। वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छोटी आयु में भी वृद्धा लगती थी। इसीलिए उसे सभी वृद्धकुमारी जीर्णकुमारी कहते थे। उसका नितंब प्रदेश तथा स्तन भाग लटक गए थे। कोई भी पुरुष उसका पति बनने को राजी नहीं था।

भगवान् पार्श्व का पदार्पण

सूत्र-१४

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्ठत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे जाव अंबसालवणे समोसढे। परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

शब्दार्थ - पुरिसादाणीए - पुरुषों में उत्तम-आदेय नाम कर्म युक्त।

भावार्थ - उस काल, उस समय पुरुषादानीय आदिकर तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ जिनकी विशेषताएं भगवान् महावीर स्वामी जैसी थी, केवल इतना अंतर था-वे नौ हाथ ऊंचे, सोलह हजार साधुओं एवं अड़तीस हजार साध्वियों से घिरे हुए थे यावत् आमलकल्पा नगरी के आम्रशालवन में पधारे।

दर्शन, वंदन हेतु परिषद् आई, धर्मोपदेश सुना यावत् उनकी पर्युपासना-सान्निध्य लाभ करने लगी।

काली द्वारा दर्शन, वंदन

सूत्र-१५

तए णं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठ जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी- एवं खलु अम्मयाओ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स (णं) अरहओ पुरिसा-दाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।

भावार्थ - गाथापति कन्या ने जब यह सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुई यावत् उसके हृदय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बड़ा आनंद उत्पन्न हुआ। अपने माता-पिता के पास आई। हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि बांधे बोली-माता-पिता! पुरुषादानीय, तीर्थंकर, आदिकर-धर्मतीर्थ के प्रवर्तक, भगवान् पार्श्वनाथ यावत् यहाँ आमलकल्पा नगरी में, आम्रशालवन में विराजित हैं। मैं आपसे आज्ञा लेकर भगवान् के चरण-वंदन हेतु जाना चाहती हूँ। माता-पिता ने कहा-पुत्री! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो। उत्तम कार्य में विलंब मत करो।

सूत्र-१६

तए णं सा काली दारिया अम्मापिइहिं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा चेडियाचक्कवाल परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

भावार्थ - गाथापति पुत्री काली माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर हर्षित यावत् प्रसन्न हुई। उसने स्नान, बलिकर्म, मंगलोपचार, प्रायश्चित्तादि दैनिक कृत्य किए। शुद्ध मांगलिक वस्त्र धारण किए। बहुमूल्य अलंकार पहने। दासियों के समूह से घिरी हुई घर से निकली। बाह्य उपस्थान शाला में आई। वहाँ आकर धार्मिक कार्यों में प्रयोज्य श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई।

सूत्र-१७

तए णं सा काली दारिया धम्मियं जाणप्पवरं एवं जहा दोवई जाव तहा पज्जुवासइ। तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं कहेइ।

भावार्थ - धार्मिक यान पर सवार गाथापति पुत्री काली वहाँ से चली। यहाँ का विस्तृत वर्णन द्रौपदी के वृत्तांत की तरह योजनीय है यावत् वह भगवान् पार्श्वनाथ के सान्निध्य में पहुँची, वंदन, नमन किया, पर्युपासनारत हुई। भगवान् पार्श्वनाथ ने गाथापति कन्या काली को तथा वहाँ उपस्थित अति विशाल परिषद् को धर्मोपदेश दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-१८

तए णं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिक्खुत्तो वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिए।

भावार्थ - काली भगवान् पार्श्वनाथ का धर्मोपदेश सुनकर बड़ी हर्षित हुई यावत् उसके हृदय में बड़ा ही आनंद उत्पन्न हुआ। उसने भगवान् पार्श्वनाथ को तीन बार वंदन, नमन किया और निवेदन किया-भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करती हूँ यावत् वह वैसा ही है, जैसा आप फरमाते हैं। देवानुप्रिय! मैं केवल माता-पिता की अनुज्ञा ले लूं फिर आपके पास यावत् मुण्डित प्रव्रजित होकर श्रमण दीक्षा ले लूँ।

प्रभु पार्श्वनाथ ने फरमाया - देवानुप्रिये! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो।

सूत्र-१९

तए णं सा काली दारिया पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ जाव हियया पासं अरहं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ २ त्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव आमलकप्पा णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आमलकप्पं णयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ २ त्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल (परिग्गहियं) जाव एवं वयासी-

भावार्थ - वह काली भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा यों कहे जाने पर बहुत हर्षित यावत् आनंदित हुई। भगवान् को वंदन नमन किया। धार्मिक यान पर आरूढ़ होकर आम्रशालवन से रवाना हुई। आमलकल्पा नगरी में पहुँची। उसके बीचोबीच होती हुई बाहरी उपस्थानशाला में गई। वहाँ धार्मिक यान को रोका, उससे नीचे उतरी और जहाँ माता-पिता थे, वहाँ जाकर इस प्रकार बोली -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-२०

एवं खलु अम्मयाओ! मए पासस्स अरहओ अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तए णं अहं अम्मयाओ! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।

भावार्थ - माता-पिता! मैंने तीर्थंकर पार्श्वनाथ का धर्मोपदेश सुना है। धर्म मुझे इच्छित, वांछित एवं अभिरुचित है। माता-पिता! मैं जन्म-मरण रूप संसार की विकरालता से उद्विग्न एवं भयभीत हूँ। मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर भगवान् पार्श्वनाथ के सान्निध्य में गृहत्याग कर मुण्डित होकर, अनगार धर्म स्वीकार करना चाहती हूँ।

माता-पिता ने कहा - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य में विलंब मत करो।

सूत्र-२१

तए णं से काले गाहावइ विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ २त्ता मित्त-णाइ-णियग-सयणं-संबंधि-परियणं आमंतेइ २ त्ता तओ पच्छा ण्हाए जाव विपुलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ (२) तस्सेव मित्त-णाइ-णियगसयणसंबंधिपरियणस्स पुरओ कालियं दारियं सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ २ त्ता सव्वालंकार विभूसियं करेइ २ त्ता पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरुहेइ २ त्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबधिपरियणेणं सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं आमलकप्पं णयरिं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ २त्ता जेणेव अंबसालवणे चेइए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ २त्ता सीयं ठवेइ २त्ता (कालियं दारियं सीयाओ पच्चोरुहइ। तए णं तं) कालियं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तदनंतर काल गाथापति ने विपुल मात्रा में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाए। मित्र, जातीय जन, पारिवारिक वृंद, कौटुंबिक वर्ग, संबंधी आदि को आमंत्रित किया। तत्पश्चात् उसने स्नानादि किया यावत् उन्हें भोजन करवाया, विपुल पुष्प, वस्त्र, सुगंधित पदार्थ, माला आदि से उनका सत्कार सम्मान किया। उन सबकी उपस्थिति में अपनी पुत्री काली को चांदी-सोने के कलशों में भरे जल से स्नान करवाया सर्वविध आभूषणों से अलंकृत किया। एक सहस्त्र पुरुषों द्वारा वहनीय शिविका पर आरूढ़ करवाया। अपने मित्रादि समस्तजनों से घिरा हुआ, समस्त प्रकार के ऋद्धि, ऐश्वर्य से युक्त यावत् उछालें मारते समुद्र की तरह गंभीर मंगलमय निनाद के साथ आमलकल्पा नगरी के बीचोंबीच होता हुआ, आम्रशालवन नामक चैत्य में आया। वहाँ तीर्थंकर प्रभु के छत्र, चामरादि अतिशय को देखा, शिविका को रोककर, उससे पुत्री काली को नीचे उतारा। पुत्री काली को आगे कर उसके माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा में उपस्थित हुए, वंदन, नमन कर यों बोले -

सूत्र-२२

एवं खलु देवाणुप्पिया! काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता जाव किमगं पुण पासणयाए? एस णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता (णं) जाव पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणि-भिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणिभिक्खं।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं (करेह)।

भावार्थ - देवानुप्रिय! पुत्री काली हमको बहुत ही प्रिय, कांत, इष्ट यावत् मनोज्ञ है। अधिक क्या कहें? इसको देखते-देखते हमारा मन नहीं भरता। देवानुप्रिय! संसार-आवागमन के भय से उद्विग्न होकर यह आपके पास मुण्डित होकर यावत् दीक्षित होना चाहती है।

देवानुप्रिय! हम शिष्या के रूप में यह भिक्षा देना चाहते हैं। आप इसे शिष्या के रूप में स्वीकार करें।

भगवान् ने कहा - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो। उत्तम धर्मकार्य को विलंबित, बाधित मत करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काली द्वारा श्रामण्य स्वीकार

सूत्र-२३

तए णं (सा) काली कुमारी पासं अरहं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ २ त्ता सयमेव लोयं करेइ २ त्ता जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासं अरहं तिक्खुत्तो वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-आलित्ते णं भंते! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव सयमेव पव्वाविउं।

भावार्थ - कुमारी काली ने भगवान् पार्श्वनाथ को वंदन, नमन किया। वैसा कर वह उत्तर पूर्व दिशा भाग में गई। स्वयं ही अपने आभरण, मालाएं, अलंकार उतार दिए। स्वयमेव अपना केशलोचन किया। जहाँ पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ थे, वहाँ आई। उन्हें तीन बार वंदन नमन किया और निवेदन किया-भगवन्! यह लोक जन्म-मरणादि दुःखों से प्रज्वलित है। मैं इसे त्याग कर देवानंदा की तरह यावत् मैं चाहती हूँ आप स्वयं मुझे दीक्षित करें।

सूत्र-२४

तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ। तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं कुमारिं सयमेव पव्वावेइ जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सा काली अज्जा जाया इरिया-समिया जाव गुत्तबंभयारिणी। तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ बहूहिं चउत्थ जाव विहरइ।

भावार्थ - पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ ने स्वयं काली को पुष्पचूला आर्या को शिष्या के रूप में दिया। आर्या पुष्पचूला ने काली को स्वयं प्रव्रजित यावत् श्रमण धर्म में दीक्षित किया।

इस प्रकार वह काली ईर्या आदि समितियों से युक्त यावत् ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों से युक्त साध्वी के रूप में परिणत हो गई। साध्वी काली ने आर्या पुष्पचूला के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया यावत् उपवास आदि अनेकानेक तपश्चरण पूर्वक साधनारत रहने लगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्या काली की देहासक्ति

सूत्र-२५

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था, अभिक्खणं २ हत्थे धो(व)वेइ पाए धोवेइ सीसं धोवेइ मुहं धोवेइ थणंतरा(इं)णि धोवेइ कक्खंतराणि धोवेइ गुज्झंतराणि धोवेइ जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइए तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा आसयइ वा सयइ वा।

भावार्थ - तदनंतर किसी समय साध्वी काली देह को अत्यंत साफ-सुथरा रखने में आसक्त हो गई। वह क्षण-क्षण हाथ, मुंह, मस्तक, कांख, स्तनांतराल, गुप्तांग धोती। जहाँ-जहाँ खड़ी होती, बैठती, सोती, कायोत्सर्ग करती, वहाँ पहले पानी छिड़कती। ऐसा करने के बाद ही बैठती, सोती।

सूत्र-२६

तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं अज्जं एवं वयासी-णो खलु कप्पइ देवाणुप्पिए! समणीणं णिग्गंथीणं सरीरबाउसियाणं होत्तए, तुमं च णं देवाणुप्पिए! सरीरबाउसिया जाया अभिक्खणं २ हत्थे धोवसि जाव आसयाहि वा सयाहि वा तं तुमं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।

भावार्थ - आर्या पुष्पचूला ने साध्वी काली से इस प्रकार कहा - देवानुप्रिये! श्रमणियों, निर्ग्रंथिनियों को शरीर की स्वच्छता में इस प्रकार आसक्त रहना नहीं कल्पता। देवानुप्रिये! तुम शारीरिक स्वच्छता में आसक्त हो गई हो। क्षण-क्षण हाथ धोती हो यावत् विभिन्न अंगों को, उठने-बैठने के स्थान आदि को धोती हो, फिर बैठती हो, सोती हो।

देवानुप्रिये! इस पाप स्थान-पापपूर्ण आचरण की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त स्वीकार करो।

सूत्र-२७

तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्ठं णो आढाइ जाव तुसिणिया संचिट्ठइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साध्वी काली ने आर्या पुष्पचूला की इस बात को कोई आदर नहीं दिया यावत् वह चुप रही।

सूत्र-२८

तए णं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जं अभिक्खणं २ हीलेंति णिंदंति खिंसंति गरहंति अवमण्णंति अभिक्खणं २ एयमट्ठं णिवारेंति।

भावार्थ - तब आर्या पुष्पचूला साध्वी काली की बार-बार अवहेलना निंदा, भर्त्सना, गर्हा, अवमानना करती रहती तथा उसे उस पापस्थान से रोकती रहती।

सूत्र-२९

तए णं तीसे कालीए अज्जाए समणीहिं णिग्गंथीहिं अभिक्खणं २ हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था- जया णं अहं अगारवासमज्झे वसित्था तया णं अहं सयंवसा। जप्पभिइं च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते पाडि(क्कि)क्कयं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए-त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २त्ता कल्लं जाव जलंते पाडि(ए)क्कं उवस्सयं गिण्हइ तत्थ णं अणिवारिया अणोहट्टिया सच्छंदमइ अभिक्खणं २ हत्थे धोवेइ जाव आसयइ वा सयइ वा।

शब्दार्थ - जप्पभिइं - यदाप्रभृति-जब से, पाडिक्कयं - पृथक्।

भावार्थ - श्रमणियों, निर्ग्रंथिनियों द्वारा बार-बार अवहेलना किए जाने पर यावत् स्वच्छता की आसक्ति से निवारित किए जाने पर काली के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ-जब मैं गृहस्थ जीवन में थी तब स्वच्छंद थी, इच्छानुसार वर्तन करती थी। जब से मैं मुंडित होकर प्रव्रजित हुई हूँ, तब से परवश-परतंत्र हो गई हूँ।

इसलिए कल प्रातःकाल होने पर, सूर्य की किरणें फैल जाने पर मैं पृथक् उपाश्रय में जाकर रहूँगी।

यों विचार कर वह दूसरे दिन, प्रातःकाल होने पर पृथक् उपाश्रय में चली गई। वहाँ किसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा निवारित न की जाती हुई वह स्वच्छंदता पूर्वक बार-बार हाथों को धोती यावत् अंगादि धोती फिर बैठती, सोती।

देवी के रूप में उत्पत्ति

सूत्र-३०

तए णं सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाछंदा अहाछंदविहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्ण परियागं पाउणइ २ त्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ २ त्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ २ त्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय अपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए कालवडिंसए भवणे उववाय-सभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिया अंगुलस्स असंखेज्जाइ भागमेत्ताए ओगाहणाए कालिदेवित्ताए उववण्णा।

भावार्थ - पार्श्वस्था-विपथगामिनी, पार्श्वस्थविहारिणी, अवसन्ना, अवसन्न-विहारिणी, कुशीला, कुशीलविहारिणी, स्वच्छंदा, स्वच्छंदविहारिणी, संसक्ता-ज्ञानाचार आदि के विपरीत, संसक्त विहारिणी साध्वी काली ने बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। वैसा करती हुई अंत में अर्द्ध मासिक संलेखना स्वीकार कर स्वयं को क्षीण करती हुई, अनशन द्वारा तीस भक्तों का छेदन कर, अपने द्वारा सेव्यमान पाप स्थान का आलोचन, प्रतिक्रमण किए बिना ही कालधर्म को प्राप्त कर, चमरचंचा राजधानी में कालावतंसक नामक विमान में, उपपात सभा-देवों के उत्पन्न होने के स्थान में, देवशय्या में, देवदूष्य वस्त्र से अंतरित-आच्छादित होती हुई, अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना द्वारा, काली देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

सूत्र-३१

तए णं सा काली देवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए जहा सूरियाभो जाव भासामणपज्जत्तीए।

शब्दार्थ - **अहुणोववण्णा** - तत्काल समुत्पन्न।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यों तत्काल समुत्पन्न काली देवी सूर्याभ देव की तरह भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति आदि पांचों पर्याप्तियों से समायुक्त हो गई।

सूत्र-३२

तए णं सा कालीदेवी चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव अण्णेसिं च बहूणं कालवडेंसगभवणवासीणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव विहरइ। एवं खलु गोयमा! कालीए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी ३ लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

भावार्थ - तत्पश्चात् काली देवी चार सहस्त्र सामानिक देवियों यावत् और बहुत से कालावतंसक विमानवासी बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य करती हुई यावत् विहरणशील रही, सुख भोगती रही।

भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम को फरमाया कि काली देवी को वह उत्तम देव ऋद्धि, श्रेष्ठ देवद्युति तथा उज्ज्वल आभा इस प्रकार लब्ध, प्राप्त, स्वायत्त हुई।

सूत्र-३३

कालीए णं भंते! देवीए केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। काली णं भंते! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ।

भावार्थ - गौतम स्वामी ने पूछा-भगवन्! काली देवी की देवलोक में कितने काल की स्थिति बतलाई गई है?

भगवान् बोले - हे गौतम! उसकी स्थिति ढाई पल्योपम बतलाई गई है।

भगवन्! काली देवी उस देवलोक के बाद वहाँ से च्यवन कर फिर कहाँ उत्पन्न होगी?

हे गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी यावत् संयम-साधना द्वारा सिद्धत्व, बुद्धत्व, मुक्तत्व प्राप्त करेगी, समस्त दुःखों का अंत करेगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - भगवती सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र आदि आगमों में देवों एवं देवियों की स्थिति का वर्णन है। वहाँ पर सर्वत्र भवनपति देवों के असुरकुमार के दक्षिणीय इन्द्र "चमरेन्द्र" की अग्रमहिषियों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट के बिना साढ़े तीन पल्योपम एवं उत्तरीय इन्द्र बलीन्द्र की अग्रमहिषियों की स्थिति साढे चार पल्योपम की ही बतलाई गई है। यहाँ पर चमरेन्द्र के अग्रमहिषियों की स्थिति अढाई पल्योपम बतलाई गई है। उपर्युक्त आगम पाठों को देखते हुए यहाँ का आगम पाठ लिपि प्रमाद से अशुद्ध हो जाना संभव लगता है।

इसी प्रकार द्वितीय वर्ग (बलीन्द्र की अग्रमहिषियों) की स्थिति साढे चार पल्योपम ही होना उचित है। यहाँ पर जो साढे तीन पल्योपम बतलाई गई है वह भी लिपि प्रमाद से अशुद्ध पाठ हो जाना संभव है।

सूत्र-३४

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने आर्य जंबू को संबोधित कर कहा - हे जंबू! श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ बतलाया है। जैसा मैंने उनसे सुना, वैसा ही तुम्हें कहा है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राई णामं बीयं अज्झयणं

राई नामक द्वितीय अध्ययन

सूत्र-३५

जइ णं भंते समणेणं० धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते बिइयस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं (३) जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया - भगवन्! श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने धर्म कथा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह आशय परिज्ञापित किया है तो कृपया बतलाएं, उन्होंने दूसरे अध्ययन का क्या अभिप्राय बतलाया है?

सूत्र-३६

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! इस काल, उस समय राजगृह नगर में गुणशील नामक चैत्य था। भगवान् महावीर स्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ। जनसमुदाय दर्शन, वंदन हेतु आया यावत् भगवान् की धर्मदेशना सुनी और उनकी पर्युपासना में निरत हुआ।

भगवान् की सेवा में राईदेवी का आगमन

सूत्र-३७

तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली तहेव आगया णट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया। भंतेत्ति! भगवं गोयमे पुव्वभवपुच्छा।

भावार्थ - उस काल उस समय जिस प्रकार चमरचंचा राजधानी से काली देवी आई थी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसी प्रकार राई देवी भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित हुई। उसने वहाँ बहुत प्रकार के नाटक दिखलाए। यह देखकर श्री गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर स्वामी को वंदन, नमन कर राई देवी के पूर्व भव के वृत्तांत के संबंध में जिज्ञासा की।

सूत्र-३८

एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा णयरी अंबसालवणे चेइए जियसत्तू राया राई गाहावई राईसिरी भारिया राई दारिया पासस्स समोसरणं राई दारिया जहेव काली तहेव णिक्खंता तहेव सरीरबाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिइ।

भावार्थ - भगवान् महावीर स्वामी ने कहा - हे गौतम! उस काल, उस समय आमलकल्पा नामक नगरी थी। वहाँ आम्रशालवन नामक उद्यान था। जितशत्रु वहाँ का राजा था। वहाँ राई नामक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम राईश्री था। उसके राई नामक पुत्री थी। किसी समय भगवान् पार्श्वनाथ का पदार्पण हुआ। जिस तरह काली उनकी सेवामें गई थी, उसी तरह राई उनकी सेवामें गई। शेष वर्णन काली देवी जैसा ही है। काली की ही तरह वह शरीर प्रक्षालन में आसक्त हो गई। सब उसी तरह करती रही यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगी।

सूत्र-३९

एवं खलु जंबू! बिइयज्झयणस्स णिक्खेवओ।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! द्वितीय अध्ययन का यह निक्षेप-संक्षिप्त वृत्तांत है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रयणी णामं तीयं अज्झयणं

रजनी नामक तृतीय अध्ययन

सूत्र-४०

जइ णं भंते! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ।

भावार्थ - जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से तृतीय अध्ययन के उत्क्षेप-उपोद्घात के रूप में पूछा - भगवन्! यदि प्रभु महावीर स्वामी ने दूसरे अध्ययन का यह अर्थ बतलाया है तो कृपया कहें, तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है।

सूत्र-४१

एवं खलु जंबू! रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए एवं जहेव राई तहेव रयणी वि णवरं आमलकप्पा णयरी रयणी गाहावई रयणसिरी भारिया रयणी दारिया सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ।

भावार्थ - इस पर आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल उस समय राजगृह नामक नगर था। वहां गुणशील नामक चैत्य था। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त 'राई' अध्ययन की तरह ग्राह्य है यावत् रयणी महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगी, समस्त दुःखों का अंत करेगी।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त॥

विज्जू णामं चउत्थं अज्झयणं

विज्जू नामक चतुर्थ अध्ययन

सूत्र-४२

एवं विज्जूवि आमलकप्पा णयरी विज्जू गाहावई विज्जूसिरी भारिया विज्जू दारिया सेसं तहेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - विज्जू देवी का वृत्तांत भी इसी प्रकार है। विशेष बात यह है कि आमलकल्पा नगरी में विज्जू नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम विज्जूश्री था। पुत्री का नाम विज्जू था। अवशिष्ट समस्त वृत्तांत पूर्ववत् है।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त॥

मेहा णामं पंचमं अज्झयणं

मेहा नामक पंचम अध्ययन

सूत्र-४३

एवं मेहा वि आमलकप्पाए णयरीए मेहे गाहावई मेहसिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव।

भावार्थ - मेहा देवी का वृत्तांत भी इसी प्रकार है। विशेष बात यह है कि आमलकल्पा नगरी में मेह नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम मेहाश्री था। पुत्री का नाम मेहा था। शेष वर्णन पूर्ववत् ज्ञातव्य है।

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त॥

सूत्र-४४

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

॥ प्रथम वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय वर्ग

सूत्र-१

जइ णं भंते! समणेणं० दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ।

भावार्थ - आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा - भगवन्! श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो कृपया बतलाएं दूसरे वर्ग का क्या अर्थ बतलाया है? इस प्रकार यह द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप-उपोद्घात है।

सूत्र-२

एवं खलु जंबू! समणेणं० दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा- सुंभा णिसुंभा रंभा णिरंभा मदणा।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले-हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन कहे हैं - शुंभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा तथा मदना।

प्रथम अध्ययन

सूत्र-३

जइ णं भंते! समणेणं० धम्मकहाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने धर्मकथा के द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन बतलाए हैं तो कृपया कहें, उन्होंने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञापित किया है।

सूत्र-४

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - जंबू! उस काल, उस समय राजगृह नगर में गुणशील नामक चैत्य था। प्रभु महावीर स्वामी वहाँ समवसृत हुए। जनसमूह वंदन, नमन हेतु आया। यावत् धर्मोपदेश सुना, पर्युपासना की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-५

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुंभा देवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेंसए भवणे सुंभंसि सीहासणंसि कालीगमएणं जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता जाव पडिगया।

भावार्थ - उस काल, उस समय शुंभा नामक देवी, बलिचंचा राजधानी में शुभावतंसक भवन में, शुभ संज्ञक आसन पर समासीन थी। शेष सारा वर्णन काली देवी के वृत्तांत सदृश है यावत् उसने भगवान् के समक्ष बहुविध नाटकों का प्रदर्शन किया और वापस लौट गई।

सूत्र-६

पुव्वभवपुच्छा। सावत्थी णयरी कोट्ठए चेइए जियसत्तू राया सुंभे गाहावई सुंभसिरी भारिया सुंभा दारिया सेसं जहा कालिए णवरं अद्धुट्ठाइं पलिओवमाइं ठिई।

एवं खलु जंबू! णिक्खेवओ अज्झयणस्स।

भावार्थ - गौतम स्वामी ने शुंभा देवी के पूर्व भव के संबंध में प्रश्न किया।

प्रभु महावीर स्वामी ने बतलाया - उस काल, उस समय श्रावस्ती नामक नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नाम उद्यान था। राजा का नाम जितशत्रु था। वहाँ शुंभ नामक गाथापति रहता था। इसकी पत्नी का नाम शुंभश्री था। इनके शुंभा नामक पुत्री थी। शेष वर्णन काली देवी की भांति योजनीय है। अंतर यह है कि देवलोक में उसकी स्थिति साढ़े तीन पल्योपम कही गई है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! दूसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह निक्षेप-सार-संक्षेप है।

विवेचन - दूसरे वर्ग के पांचों अध्ययनों वाली देवियों की स्थिति का खुलासा प्रथम वर्ग की देवियों की स्थिति के खुलासे के साथ (सूत्र संख्या ३३ के विवेचन में) बता दिया गया है। अतः जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्ययन से पंचम अध्ययन तक

सूत्र-७

एवं सेसावि चत्तारि अज्झयणा। सावत्थीए। णवरं-माया-पिया सरिसणामया।

एवं खलु जंबू! णिक्खेवओ बिइयवग्गस्स।

भावार्थ - शेष चारों अध्ययन पूर्वोक्त प्रकार से बतलाए गए हैं। श्रावस्ती नगरी चारों में ही कथनीय है। अंतर इतना सा है कि प्रत्येक अध्ययन में माता-पिता का नाम अध्ययनानुरूप ही जानना चाहिए।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! इस प्रकार द्वितीय वर्ग संपन्न होता है-यह द्वितीय वर्ग का निक्षेप-सार-संक्षेप है।

॥ २-५ चारों अध्ययन समाप्त॥

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय वर्ग

सूत्र-१

उक्खेवओ तइयवग्गस्स। एवं खलु जंबू! समणेणं० तइयवग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पण्णत्ता - पढमे अज्झयणे जाव चउपण्णइमे अज्झयणे।

भावार्थ - तृतीय वर्ग का उत्क्षेप-उपोद्घात यहाँ योजनीय है। यथा - जंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से जब इस वर्ग के संबंध में जिज्ञासा की तब सुधर्मा स्वामी बोले -

हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तृतीय वर्ग के प्रथम से लेकर यावत् चौपन तक अध्ययन बतलाए हैं।

प्रथम अध्ययन

सूत्र-२

जइ णं भंते! समणेणं० धम्मकहाणं तइयवग्गस्स चउप्पण्णज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने पुनः निवेदन किया-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने धर्मकथा के तृतीय वर्ग के प्रथम यावत् चौपन अध्ययन बतलाए हैं तो कृपया फरमाएँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है?

इला देवी का भगवान् की सेवा में आगमन

सूत्र ३

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए सामी समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं इला देवी धारणीए रायहाणीए इलावडेंसए भवणे इलंसि सीहासणंसि एवं काली गमएणं जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था। उसमें गुणशील नामक चैत्य था। भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। वंदन, दर्शन करने परिषद् आई यावत् धर्मोपदेश सुना, पर्युपासना की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस काल, उस समय इला देवी धरणी नामक राजधानी में, इलावतंसक प्रासाद में इलासंज्ञक सिंहासन पर आसीन थी। आगे का वर्णन काली देवी के वृत्तांत की तरह है यावत् वह भगवान् महावीर स्वामी की सेवामें आई, विविध प्रकार के नाटकों का प्रदर्शन किया और वापस लौट गई।

सूत्र-४

पुव्वभवपुच्छा। वाणारसीए णयरीए काममहावणे चेइए इले गाहावई इलसिरी भारिया इला दारिया सेसं जहा कालीए णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई सेसं तहेव।

भावार्थ - गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से इसके पूर्व भव के संबंध में पूछा। भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तर देते हुए फरमाया-वाराणसी नामक नगरी थी। वहाँ काम महावन नामक चैत्य था। जहाँ इल नामक गाथापति अपनी पत्नी इलश्री के साथ रहता था। इनके इला नामक पुत्री थी। अवशिष्ट वर्णन काली देवी की तरह है।

विशेष बात यह है कि वह धरणेन्द्र की अग्रमहिषी-प्रधान देवी के रूप में उत्पन्न हुई। उसकी स्थिति वहाँ आधे पल्योपम से कुछ अधिक बतलाई गई है।

सूत्र-५

एवं खलु जंबू! णिक्खेवओ पढमज्झयणस्स।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! इस प्रकार यह प्रथम अध्ययन का निक्षेप-सार-संक्षेप है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥

अध्ययन २ से ६ तक

सूत्र-६

एवं कमा सतेरा सोयामणी इंदा घणा विज्जुया-वि। सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ एव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी क्रम से सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घना तथा विद्युता-इन पांच देवियों के पांच अध्ययन ज्ञातव्य हैं। ये सब धरणेन्द्र की अग्रमहीषियाँ कही गई हैं।

अध्ययन ७ से १२ तक

सूत्र-७

एए छ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा।

भावार्थ - इसी प्रकार वेणुदेव के भी छह अध्ययन अविशेष रूप में-बिना किसी अंतर के कथनीय हैं।

अध्ययन १३ से ५४ तक

सूत्र-८

एवं जाव घोसस्स वि एए चेव छ अज्झयणा।

भावार्थ - इसी प्रकार हरि, अग्निशिख, पूर्ण, जलकांत, अमितगति, वेलंब एवं घोष-इन सात इन्द्रों की पटरानियों के भी छह-छह अध्ययन - कुल बयालीस अध्ययन कथनीय हैं।

सूत्र-९

एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं चउप्पण्णं अज्झयणा भवंति सव्वाओ वि वाणारसीए काममहावणे चेइए।

तइय वग्गस्स णिक्खेवओ।

भावार्थ - इस प्रकार दक्षिण दिशावर्ती इन्द्रों के चौपन अध्ययन होते हैं। ये सभी देवियाँ पूर्वभव में, वाराणसी में उत्पन्न हुई और काममहावन चैत्य में भगवान् पार्श्व से दीक्षित हुई।

इस प्रकार यहाँ तृतीय वर्ग का निक्षेप योजनीय है।

॥ चौपन अध्ययन समाप्त॥

॥ तृतीय वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ वर्ग

सूत्र-१

चउत्थस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! समणेणं० धम्मकहाणं चउत्थवग्गस्स चउप्पण्णं अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-पढमे अज्झयणे जाव चउप्पण्णइमे अज्झयणे।

भावार्थ - चौथे वर्ग का उत्क्षेप-प्रारंभ यहाँ पूर्ववत् योजनीय है।

अर्थात् आर्य जंबू की जिज्ञासा का समाधान करते हुए सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने धर्मकथा के चौथे वर्ग के चौपन अध्ययन बतलाए हैं जो प्रथम से चौपन अध्ययन पर्यन्त इस प्रकार हैं -

प्रथम अध्ययन

सूत्र-२

पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

भावार्थ - यहाँ प्रथम अध्ययन का उपोद्घात-प्रारंभ पूर्व की भांति योजनीय है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल, उस समय, राजगृह नामक नगरी थी। भगवान् महावीर स्वामी वहाँ समवसृत हुए यावत् वंदन, नमन हेतु परिषद् आई। धर्मोपदेश सुना, भगवान् की पर्युपासना की।

रूपादेवी

सूत्र-३

तेणं कालेणं तेणं समएणं रूय देवी रूयाणंदा रायहाणी रूयगवडेंसए भवणे रुयगंसि सीहासणंसि जहा कालीए तहा णवरं पुव्वभवे चंपाए पुण्णभद्दे चेइए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूयगगाहावई रूयगसिरी भारिया रूया दारिया सेसं तहेव। णवरं भूयाणंद अग्गमहिसित्ताए उववाओ देसूणं पलिओवमं ठिई।

णिक्खेवओ।

भावार्थ - उस काल, उस समय रूपानंदा नामक राजधानी में, रूपावतंसक भवन में, रूपक नामक सिंहासन पर रूपादेवी आसीन थी। उसका शेष वर्णन काली देवी की तरह है।

इसके पूर्व भव का विशेष वृत्तांत यह है - चंपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। वहाँ रूपक नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम रूपकश्री था। इनके रूपा नामक कन्या थी। बाकी वर्णन पूर्ववत् है।

अंतर यह है, वह भूतानंद नामक इन्द्र की प्रधान देवी के रूप में उत्पन्न हुई। उसकी स्थिति एक पल्योपम से कुछ कम बतलाई गई है।

चतुर्थ वर्ग के प्रथम अध्ययन का निक्षेप यहाँ योजनीय है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥

अध्ययन २ से ६ तक

एवं खलु सुरुया वि रुयंसा वि रुयगावई वि रुयकंता वि रुयप्पभा वि।

भावार्थ - सुरूपा, रूपांशा, रूपकवती, रूपकांता और रूपप्रभा के संबंध में भी इसी प्रकार ज्ञातव्य है–इन पांच देवियों के पांच अध्ययन भी इसी प्रकार हैं।

अध्ययन ७ से ५४ तक

एयाओ चेव उत्तरिल्लाणं इंदाणं भाणियव्वाओ जाव महाघोसस्स। णिक्खेवओ चउत्थवग्गस्स।

भावार्थ - इसी प्रकार उत्तरदिशावर्ती इन्द्र-वेणुदाली, हरिस्सह, अग्निमाणवक, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन तथा महाघोष की यावत् छह-छह पटरानियों के छह-छह अध्ययन यहाँ कथनीय हैं। यों कुल (६+४८) चौपन अध्ययन हो जाते हैं।

इस प्रकार चतुर्थ वर्ग का निक्षेप यहाँ पूर्ववत् योजनीय है।

॥२-५४ अध्ययन समाप्त॥

॥ चतुर्थ वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचम वर्ग

सूत्र-१

पंचमवग्गस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! जाव बत्तीसं अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-

कमला कमलप्पभा चेव, उप्पला य सुदंसणा।
रूववई बहुरूवा, सुरूवा सुभगा वि य॥१॥
पुण्णा बहुपुत्तिया चेव, उत्तमा भारिया वि य।
पउमा वसुमई चेव, कणगा कणगप्पभा॥२॥
वडेंसा केऊमइ चेव, वइरसेणा रइप्पिया।
रोहिणी णवमिया चेव, हिरी पुप्फवई (ति) वि य॥३॥
भुयगा भुयगवई चेव, महाकच्छाऽपराइया।
सुघोसा विमला चेव, सुस्सरा य सरस्सई॥४॥

भावार्थ - पंचम वर्ग का उपोद्घात पूर्ववत् योजनीय है।

सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! यावत् पंचम वर्ग के बत्तीस अध्ययन परिज्ञापित हुए हैं, वे इस प्रकार हैं -

१. कमला	२. कमलप्रभा	३. उत्पला	४. सुदर्शना
५. रूपवती	६. बहुरूपा	७. सुरूपा	८. सुभगा
९. पूर्णा	१०. बहुपुत्रिका	११. उत्तमा	१२. भारिका
१३. पद्मा	१४. वसुमती	१५. कनका	१६. कनकप्रभा
१७. अवतंसा	१८. केतुमति	१९. वज्रसेना	२०. रतिप्रिया
२१. रोहिणी	२२. नवमिका	२३. ह्री	२४. पुष्पवती
२५. भुजगा	२६. भुजगवती	२७. महाकच्छा	२८. अपराजिता
२९. सुघोषा	३०. विमला	३१. सुस्वरा	३२. सरस्वती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन

कमलादेवी

सूत्र-२

उक्खेवओ पढमज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

भावार्थ - प्रथम अध्ययन का उपोद्घात यहाँ पूर्ववत् योजनीय है। श्री सुधर्मा स्वामी ने जंबू से कहा-उस काल, उस समय राजगृह नगर में भगवान् महावीर स्वामी पधारे यावत् परिषद् आई, धर्मोपदेश सुना, पर्युपासनारत हुई।

सूत्र-३

तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला देवी कमलाए रायहाणीए कमलवर्डेसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव णवरं पुव्वभवे णागपुरे णयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अंतिए णिक्खंता कालस्स पिसायकुमारिंदस्स अग्गमहिसी अद्धपलिओवमं ठिई।

शेष अध्ययन

सूत्र-४

एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं भाणियव्वाओ (सव्वाओ) णागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे मायापियरो धूया सरिसणामया ठिई अद्ध पलिओवमं।

पंचमो वग्गो समत्तो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस काल, उस समय कमला राजधानी में कमलावतंसक भवन में, कमल संज्ञक सिंहासन पर कमलादेवी समासीन थी। उसका अवशिष्ट वर्णन काली देवी की तरह योजनीय है।

उसके पूर्वभव के वृत्तांत की विशेषता यह है -

नागपुर नामक नगर में सहस्त्राम्रवन नामक उद्यान था। वहाँ कमल नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम कमलश्री था। उसके कमला नामक पुत्री थी। वह भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा में उपस्थित हुई। धर्मोपदेश श्रवण कर प्रव्रजित हुई।

अंततः साधनापूर्वक देह-त्याग कर, वह काल नामक पिशाचकुमारेन्द्र की प्रधान देवी के रूप में उत्पन्न हुई। वहाँ उसकी स्थिति अर्द्धपल्योपम बतलाई गई है।

शेष इकतीस अध्ययन दक्षिणदिशावर्ती वाणव्यंतर इन्द्रों की अग्रमहीषियों के कहे गए हैं। इनके पूर्वभव का वृत्तांत इस प्रकार हैं -

नागपुर नगर में ये सभी उत्पन्न हुईं इनके माता-पिता के नाम पुत्रियों के नाम सदृश थे। सहस्त्राम्रवन उद्यान में वे प्रव्रजित हुईं। साधनापूर्वक मरण प्राप्त कर वाणव्यंतर देवों की अग्रमहीषियों के रूप में उत्पन्न हुई। वहां इनके देव भव की स्थिति आधे-आधे पल्योपम की बतलाई गई है।

इस प्रकार पंचम वर्ग का समापन होता है।

॥ पांचवाँ वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ वर्ग

अध्ययन १-३२

छट्ठो वि वग्गो पंचम वग्ग सरिसो णवरं महाकायाईणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीओ। पुव्वभवे सागेय णयरे उत्तरकुरुउज्जाणे मायापियरो धूया सरिसणामया। सेसं तं चेव।

छट्ठो वग्गो समत्तो।

भावार्थ - छठा वर्ग भी पांचवें वर्ग के सदृश है। विशेषता यह है कि उनमें उत्तरदिशावर्ती महाकाल इन्द्रों की अग्रमहीषियों का वर्णन है।

उनके पूर्वभव का वृत्तांत इस प्रकार है -

साकेत नामक नगर में उत्तरकुरु नामक उद्यान था। माता-पिता एवं पुत्रियों के नाम सदृश कहे गए हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

इस प्रकार छठा वर्ग समाप्त होता है।

॥ छठा वर्ग समाप्त॥

❋ ❋ ❋ ❋

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम वर्ग

सूत्र-१

सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! जाव चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-सूरप्पभा आयवा अच्चिमाली पभंकरा।

भावार्थ - सातवें वर्ग का उपोद्घात पूर्ववत् योजनीय है।

आर्य जंबू के प्रश्न का समाधान करते हुए सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! यावत् सातवें वर्ग के चार अध्ययन बतलाए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

सूर्यप्रभा, आतपा, अर्चिमाली तथा प्रभंकरा।

प्रथम अध्ययन

सूत्र-२

पढमज्झयणस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

भावार्थ - यहाँ प्रथम अध्ययन का उपोद्घात पूर्ववत् योजनीय है।

श्री सुधर्मा स्वामी ने जंबू के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा - हे जंबू! उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर में पधारे यावत् विशाल जनसमूह दर्शन, वंदन हेतु आया, धर्मोपदेश सुना, पर्युपासनारत हुआ।

सूत्र-३

तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहा णवरं पुव्वभवो अरक्खुरीए णयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्पभा दारिया सूरस्स अग्गमहिसी ठिई अद्धपलिओवमं पंच वाससएहिं अब्भहियं सेसं जहा कालीए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस काल उस समय सूर(सूर्य) विमान में सूरप्रभ सिंहासन पर, सूरप्रभादेवी समासीन थी। शेष वर्णन कालीदेवी की तरह योजनीय है।

उसके पूर्व भव की विशेष बात यह है -

अरक्षुरी नामक नगरी में सूरप्रभ नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम सुरश्री था। इनकी पुत्री का नाम सूरप्रभा था।

प्रव्रज्योपरांत, साधनापूर्वक देह-त्याग कर 'सूरप्रभा' सूर नामक ज्योतिष्केन्द्र की प्रधान देवी के रूप में उत्पन्न हुई। इसकी स्थिति पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम बतलाई गई है। अवशिष्ट वर्णन काली देवी की तरह है।

शेष अध्ययन

सूत्र-४

एवं सेसाओ वि सव्वाओ अरक्खुरीए णयरीए।

सत्तमो वग्गो समत्तो।

भावार्थ - इस प्रकार सभी कन्याएं अरक्षुरी नगरी में उत्पन्न हुई।

इस प्रकार सप्तम वर्ग पूर्ण होता है।

॥ सप्तम समाप्त॥

☆ ☆ ☆ ☆

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठवां वर्ग

सूत्र-१

अट्ठमस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! जाव चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा - चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा।

भावार्थ - अष्टम वर्ग का उपोद्घात पूर्वानुरूप कथनीय है।

जंबू के प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! यावत् अष्टम वर्ग के चार अध्ययन बतलाए गए हैं, वे इस प्रकार हैं -

चंद्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली तथा प्रभंकरा।

प्रथम अध्ययन

सूत्र-२

पढमज्झयणस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

भावार्थ - प्रथम अध्ययन का उत्क्षेप पूर्वानुसार यथावत् योजनीय है। श्री सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि-हे जंबू! उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर में पधारे यावत् विशाल जनसमूह दर्शन, वंदन हेतु आया। धर्मोपदेश सुना, पर्युपासनारत हुआ।

सूत्र-३

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पभादेवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए भंडि(चंद)वडेंसए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंदप्पभा दारिया चंदस्स अग्गमहिसी ठिई अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, सेसं जहा कालीए।

भावार्थ - उस काल, उस समय चन्द्रप्रभ नामक विमान में चन्द्रप्रभ संज्ञक सिंहासन पर चन्द्रमा देवी समासीन थी। अवशिष्ट वर्णन काली देवी की भांति ग्राह्य है।

उसके पूर्वभव की विशेषता यह है -

मथुरा नामक नगरी थी। चन्द्रावतंसक नामक उद्यान था। वहाँ चन्द्रप्रभ नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम चन्द्रश्री था। उनके चन्द्रप्रभा नाम कन्या थी। वह प्रव्रजित होकर, साधना पूर्वक देह-त्याग कर चन्द्र नामक ज्योतिष्केन्द्र की प्रधान देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

इसकी स्थिति पचास सहस्त्र वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम बतलाई गई है। शेष काली देवी की तरेह योजनीय है।

शेष तीन अध्ययन

सूत्र-४

एवं सेसाओ वि महुराए णयरीए माया पियरो (वि) धूया सरिसमाणा। अट्ठमो वग्गो समत्तो।

भावार्थ - अवशिष्ट सभी देवियाँ अपने पूर्व भव में मथुरा नगर में जन्मी। माता-पिता का नाम पुत्रियों के सदृश था।

इस प्रकार आठवां वर्ग परिसमाप्त होता है।

॥ आठवां वर्ग समाप्त॥

☆ ☆ ☆ ☆

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवम वर्ग

सूत्र-१

णवमस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! जाव अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-पउमा सिवा सई अंजू रोहिणी णवमिया (इय) अचला अच्छरा।

भावार्थ - नवम अध्ययन का उपोद्घात पूर्वानुरूप यथावत् योजनीय है।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा कि - हे जंबू! यावत् नवम् वर्ग के आठ अध्ययन प्रज्ञप्त हुए हैं, वे इस प्रकार हैं -

१. पद्मा	२. शिवा	३. शची	४. अंजू
५. रोहिणी	६ नवमिका	७. अचला	८. अप्सरा

प्रथम अध्ययन

पद्मादेवी

सूत्र-२

पढमज्झयणस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई देवी सोहम्मे कप्पे पउमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए पउमंसि सीहासणंसि जहा कालीए।

भावार्थ - प्रथम अध्ययन का उत्क्षेप पूर्वानुसार यथावत् योजनीय है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर में समवसृत हुए। वंदन, नमन हेतु परिषद् आई, धर्मोपदेश सुना, पर्युपासनारत हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस काल, उस समय सौधर्मकल्प में, पद्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में पद्म नामक सिंहासन पर पद्मा देवी आसीन थी। शेष वर्णन कालीदेवी की भांति योजनीय है।

शेष सात अध्ययन

सूत्र-३

एवं अट्ठ वि अज्झयणा कालीगमएणं णायव्वा णवरं सावत्थीए दोजणीओ हत्थिणाउरे दोजणीओ कंपिल्लपुरे दोजणीओ सागेय णयरे दोजणीओ पउमे पियरो विजया मायराओ सव्वाओ वि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ सक्कस्स अग्गमहिसीओ ठिई सत्त पलिओवमाइं महाविदेहे वासे अंतं काहिंति।

णवमो वग्गो समत्तो।

भावार्थ - इसी प्रकार आठों अध्ययन काली देवी के वृत्तांत के अनुसार ज्ञातव्य है।

उनके पूर्वभव के संबंध में विशेष बात यह है कि-उनमें से दो का जन्म श्रावस्ती में, दो का हस्तिनापुर में, दो का कांपिल्यपुर में तथा दो का साकेत नगर में हुआ।

सबके पिता का नाम पद्म तथा माता का नाम विजया था। सभी ने भगवान् पार्श्वनाथ से प्रव्रज्या स्वीकार की। वे सभी शक्रेन्द्र की अग्रमहीषियाँ बनीं। इन सभी की स्थिति सात पल्योपम बतलाई गई है।

सभी महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेंगी, समस्त दुःखों का अन्त करेंगी।

इस प्रकार नवम वर्ग का समापन होता है।

॥ नवम वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशम वर्ग

सूत्र-१

दसमस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! जाव अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-

कण्हा य कण्हराई रामा तह रामरक्खिया वसूया।

वसुगुत्ता वसुमित्ता वसुंधरा चेव ईसाणे॥१॥

भावार्थ - दशम वर्ग का उपोद्घात पूर्ववत् कथनीय है।

आर्य जंबू की जिज्ञासा का समाधान करते हुए, श्री सुधर्मा स्वामी बोले कि - हे जंबू! यावत् दशम वर्ग के आठ अध्ययन बतलाए गए हैं, वे इस प्रकार हैं -

१. कृष्णा	२. कृष्णराजि	३. रामा	४. रामरक्षिता
५. वसु	६. वसुगुप्ता	७. वसुमित्रा	८. वसुंधरा।

ये ईशानेन्द्र की आठ प्रमुख देवियाँ हैं।

प्रथम अध्ययन

सूत्र-२

पढमज्झयणस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए।

भावार्थ - प्रथम अध्ययन का उत्क्षेप पूर्वानुरूप, यथावत् कथनीय है।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा कि - हे जंबू! उस काल, उस समय राजगृह नगर में भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ यावत् दर्शन वंदन हेतु उनकी सेवामें परिषद् उपस्थित हुई, धर्मोपदेश श्रवण कर पर्युपासनारत हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस काल, उस समय ईशान कल्प में, कृष्णावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में कृष्ण नामक सिंहासन पर कृष्णा देवी समासीन थी। शेष वर्णन कालीदेवी की तरह ग्राह्य है।

शेष अध्ययन

सूत्र-३

एवं अट्ठवि अज्झयणा कालीगमएणं णेयव्वा णवरं पुव्वभवो वाणारसीए णयरीए दोजणीओ रायगिहे णयरे दोजणीओ सावत्थीए णयरीए दोजणीओ कोसंबीए णयरीए दोजणीओ रामे पिया धम्मा माया सव्वाओ वि पासस्स अरहओ अंतिए पव्वइयाओ पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए ईसाणस्स अग्गमहिसीओ ठिई णवपलिओवमाइं महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति बुज्झिहिंति मुच्चिहिंति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिंति।

एवं खलु जंबू! णिक्खेवओ दसमवग्गस्स।

दसमो वग्गो समत्तो।

भावार्थ - इसी प्रकार आठों अध्ययन काली देवी के वृत्तांतानुरूप ज्ञातव्य हैं।

उनके पूर्वभव के वृत्तांत के संदर्भ में यह विशेष बात है कि - उनमें से दो का जन्म वाराणसी नगरी में, दो का राजगृह नगर में, दो का श्रावस्ती नगरी में तथा दो का कौशाम्बी में हुआ।

इन सबके पितृ का नाम राम तथा माता का नाम धर्मा था। सभी ने तीर्थंकर पार्श्व के पास प्रव्रज्या स्वीकार की।

प्रभु पार्श्व ने आर्या पुष्पचूला को इन्हें शिष्या के रूप में सौंप दिया। साधनापूर्वक देह-त्याग कर वे ईशानेन्द्र की प्रधान देवियों के रूप में स्थित हुईं। इनकी स्थिति नौ पल्योपम बतलाई गई है।

महाविदेह वर्ष (क्षेत्र) में ये सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगी, सब दुःखों का अंत करेंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे जंबू! इस प्रकार यह दसवें वर्ग का निक्षेप है।

दसवां वर्ग परिसमाप्त होता है।

॥ दसवां वर्ग समाप्त॥

सूत्र-४

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसोत्तमेणं (पुरिससीहेणं) जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते।

धम्मकहा सुयक्खंधो समत्तो।

दसहिं वग्गेहिं णायधम्मकहाओ समत्ताओ। ॥ बीओ सुयक्खंधो समत्ता॥

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा कि - हे जंबू! आदिकर, तीर्थंकर, स्वयं-संबुद्ध, पुरुषोत्तम यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने 'धर्मकथा' नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध का यह अर्थ, विवेचन एवं विस्तार कहा है।

धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध दस वर्गों में समाप्त हुआ।

इस प्रकार ज्ञातृ धर्मकथा नामक छठा अंग सूत्र परिसमाप्त होता है।

॥ दूसरा श्रुत स्कन्ध समाप्त॥

॥ इति ज्ञाताधर्मकथांग समाप्तम्॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अ० भा० सुधर्म जैन सं० रक्षक संघ, जोधपुर आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	२५-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
२.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१, २	८०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं, तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org